# MAGO-108

## समुद्र विज्ञान

**उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन**
**मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

MAGO- 108 समुद्र विज्ञान

**विषय-सूची**


| | | पृष्ठ क्रमांक |
|---|---|---|
| इकाई-1 | समुद्र विज्ञान, परिभाषा, विषय-क्षे | 3-21 |
| इकाई-2 | समुद्र विज्ञान की शाखाएँ तथा समुद्र विज्ञान से सम्बन्धित अन्य विषय | 22-34 |
| इकाई-3 | महासागरों के नितल का उच्चावच | 35-55 |
| इकाई-4 | प्रशांत महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल का उच्चावच, प्रशांत महासागर के द्वीप | 56-66 |
| इकाई-5 | हिन्द महासागर- आकार एवं विस्तार, हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच तटवर्ती समुद्र | 67-79 |
| इकाई-6 | अटलांटिक महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल के उच्चावच, अटलांटिक महासागर के द्वीप | 80-91 |
| इकाई-7 | महासागरीय जल का संघटन तथा लवणता का वितरण | 92-101 |
| इकाई-8 | लवणता के नियंत्रक कारक, महासागरीय जल की लवणता का उर्ध्वाधर वितरण | 102-110 |
| इकाई-9 | लवणता का प्रादेशिक वितरण: प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिन्द महासागर | 111-118 |
| इकाई-10 | महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति तथा धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारक | 119-144 |
| इकाई-11 | विभिन्न महासागरों की प्रमुख जलधाराएँ | 145-176 |
| इकाई-12 | ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के कारण तथा विशेषताएं | 177-185 |
| इकाई-13 | ज्वार-भाटा के प्रकार एवं प्रभाव | 186-195 |
| इकाई-14 | ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के सिद्धान्त तथा ज्वार-भाटा से ऊर्जा उत्पादन | 196-210 |
| इकाई-15 | प्रवाल भित्तियों के निर्माण के लिए निर्माण की आवश्यक दशाएं, प्रवाल के प्रकार, प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांत, प्रवाल-विरंजन | 211-230 |
| इकाई-16 | समुद्री संसाधन, सागरीय ऊर्जा संसाधन, समुद्री प्रदूषण के स्त्रोत | 231-259 |

# उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज


**परामर्श समिति**

| | |
|---|---|
| **प्रो0 सीमा सिंह** | कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| **विनय कुमार** | कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |

**पाठ्यक्रम निर्माण समिति ; (अध्ययन बोर्ड)**

| | |
|---|---|
| **प्रो0 संतोषा कुमार** | आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| **डॉ0 संजय कुमार सिंह** | सह–आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| **डॉ0 अभिषेक सिंह** | सहा0 आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| **प्रो0 एन.के. राना** | आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी |
| **प्रो0 ए0 आर0 सिद्दीकी** | आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| **प्रो0 अरूण कुमार सिंह** | आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी |



**लेखक**

**डॉ0 राम भूषण तिवारी** — सह– आचार्य, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक

**सम्पादन**

**डॉ0 संजय कुमार सिंह** — सह–आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**समन्वयक**

**डॉ0 संजय कुमार सिंह** — सह – आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**सह -समन्वयक**

**डॉ0 अभिषेक सिंह** — सहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज



**मुद्रित वर्ष – 2023**



**© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज**



**ISBN No. – 978-81-19530-00-7**



सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उप्र राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।


**नोट :** पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।


प्रकाशन– विनय कुमार, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2023।

मुद्रक : सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा0लि0, लोढ़ा सुप्रिमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई



CENTOS-008

# इकाई 1

# समुद्र विज्ञान, परिभाषा, विषय क्षेत्र

## इकाई की रूपरेखा


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1.0 | | | प्रस्तावना |
| 1.1 | | | उद्देश्य |
| 1.2. | | | महासागरों का परिचय |
| | 1.2.1 | | पृथ्वी पर कितने महासागर मौजूद हैं? |
| | | 1.2.1.1 | प्रशांत महासागर |
| | | 1.2.1.2 | अटलांटिक महासागर |
| | | 1.2.1.3 | हिंद महासागर |
| | | 1.2.1.4 | आर्कटिक महासागर |
| 1.3 | | | महासागरों का महत्व |
| 1.4 | | | समुद्र विज्ञान की परिभाषा |
| 1.5 | | | समुद्र विज्ञान के विषय क्षेत्र |
| 1.6 | | | समुद्र विज्ञान का विकास |
| | 1.6.1 | | प्राचीन काल |
| | 1.6.2 | | मध्य युग या अंध युग |
| | 1.6.3 | | आधुनिक युग या खोज या अन्वेषण का युग |
| | | 1.6.3.1 | महासागरो के वैज्ञानिक अन्वेषण का काल |
| | | 1.6.3.2 | एडवर्ड फ़ोर्ब्स का काल |
| | | 1.6.3.3 | चैलेंजर अभियान काल (1872 - 76) |
| | | 1.6.3.4 | चैलेंजर उपरांत काल |
| | | 1.6.3.5 | बीसवीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास |
| 1.7 | | | सारांश |
| | | 1.6.3.6 | 21वी सदी में समुद्र विज्ञान में शोध एवं अध्ययन |
| | | | अभ्यास प्रश्न |
| | | | सन्दर्भ ग्रन्थ |

# इकाई 1

# समुद्र विज्ञान, परिभाषा, विषय क्षेत्र

---

## 1.0 प्रस्तावना

महासागरों का अस्तित्व पृथ्वी की सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे प्रमुख विशेषता है। वे हमारे ग्रह की सबसे महत्त्वपूर्ण पहचान हैं जिनके कारण हमारा ग्रह अंतरिक्ष से एक सुंदर नीला सा ग्लोब दिखाई पड़ता है। । पृथ्वी की सतह पर पानी की प्रचुरता हमारे ग्रह की एक विशिष्ट विशेषता है जिसकी सतह का 70.8% हिस्सा महासागरों से ढका हुआ है। अभी तक प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर हमारे सौर मंडल के सभी ग्रहों और चंद्रमाओं में, पृथ्वी ही एकमात्र ऐसी है जिसकी सतह पर प्रचुर मात्रा में जल एवं महासागर हैं। सौर मंडल में किसी अन्य पिंड में जल की उपलब्धता का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। जल की उपस्थिति के कारण पृथ्वी ग्रह सौर मंडल में अद्वितीय है। महासागर पृथ्वी पर जल के सबसे बड़े भंडार हैं। आइए हम जलीय संसार की कुछ अनूठी भौगोलिक विशेषताओं से परिचय के लिए महासागरों का अध्ययन शुरू करें।

समुद्र विज्ञान समुद्रो के अध्ययन का क्रमबद्ध विज्ञान है। इसके अंतर्गत महासागरो एवं सागरों की भौतिक एवं रासायनिक अवस्था, वहां के जैव जगत के विकास की विविधता का बहु आयामी स्वरुप, जल के घुलनशील एवम अघुलनशील तत्वों एवं उनके जमाव, महासागरीय नितल एवं यहाँ की त्रिस्तरीय गतियों का सकारण अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समुद्र विज्ञान में जल मंडल के सभी पहलुओ की विस्तृत एवं सकारण व्याख्या की जाती है।

विज्ञान की इस विशेष शाखा को समुद्र विज्ञान कहा गया है जिसके अंतर्गत महा सागरीय जल की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं, उसकी गहराई, तापमान, लवणता, विभिन्न प्रकार की गतियों, महा सागरीय बेसिनों के नितल एवं जल में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों तथा जीवों का अध्ययन किया जाता है। वस्तुतः इस विज्ञान का विकास भौतिक भूगोल की एक विशेष शाखा के रूप में हुआ है, जिसका मूल उद्देश्य जल मंडल का वैज्ञानिक अध्ययन करना है ।

## 1.1 उद्देश्य

प्रथम इकाई "समुद्र विज्ञान, परिभाषा, विषय क्षेत्र" के अध्ययन के उपरांत आप:

- महासागरों से सम्बंधित सामान्य तथ्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- मानव जीवन में महासागरों के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- समुद्र विज्ञान को परिभाषित कर सकेंगे।
- समुद्र विज्ञान के विषय क्षेत्र का वर्णन कर सकेंगे।
- समुद्र विज्ञान के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

## 1.2. महासागरों का परिचय

### 1.2.1 पृथ्वी पर कितने महासागर मौजूद हैं ?

महासागर विशालता के वर्णन हेतु एक सामान्य रूपक हैं। जब भी कोई विश्व के किसी मानचित्र का अवलोकन करता है, तो स्वत: पृथ्वी पर महासागरों की प्रभावशाली उपस्थति उसका ध्यान आकर्षित करती है। उन लोगों के लिए जिन्होंने किसी जलपोत से महासागरों के पार यात्रा की है अथवा हवाई जहाज से भी किसी एक भी महासागर के पार उड़ान भरी है, एक चीज जो उन्हें तुरंत प्रभावित करती है वह यह है कि महासागर बहुत बड़े हैं। और यह भी,कि सभी महासागर आपस में जुड़े हुए हैं और समुद्री जल का एक निरंतर निकाय बनाते हैं, यही कारण है कि महासागरों को आमतौर पर "विश्व महासागर" (एकवचन, बहुवचन नहीं) के रूप में जाना जाता है। फिर भी यह विद्यार्थियों के मन में यह प्रश्न स्वत: उत्पन्न होता है कि वास्तव में महासागर कितने हैं ? इस सन्दर्भ में सात समुन्दर पार एक बहुचर्चित एवं विश्वव्यापी मुहावरा है जिसकी चर्चा भी आगे की जाएगी।

इस तथ्य के बावजूद कि महासागर पृथ्वी पर जल का अटूट विस्तार है अध्ययन की सुविधा हेतु महासागरों के आकार, अवस्थिति एवं महाद्वीपों की स्थिति के आधार पर 'विश्व महासागर' को चार प्रमुख महासागरों और एक अतिरिक्त महासागर में विभाजित किया जा सकता है। इस तरह पृथ्वी पर कुल पांच महासागरों का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है तथा विषुवत रेखा के सन्दर्भ में अटलांटिक तथा प्रशांत महासागर को उत्तर तथा दक्षिण दो भागों में बांटा जा सकता है (चित्र 1.1)।

**चित्र-1.1 विश्व के प्रमुख महासागर**

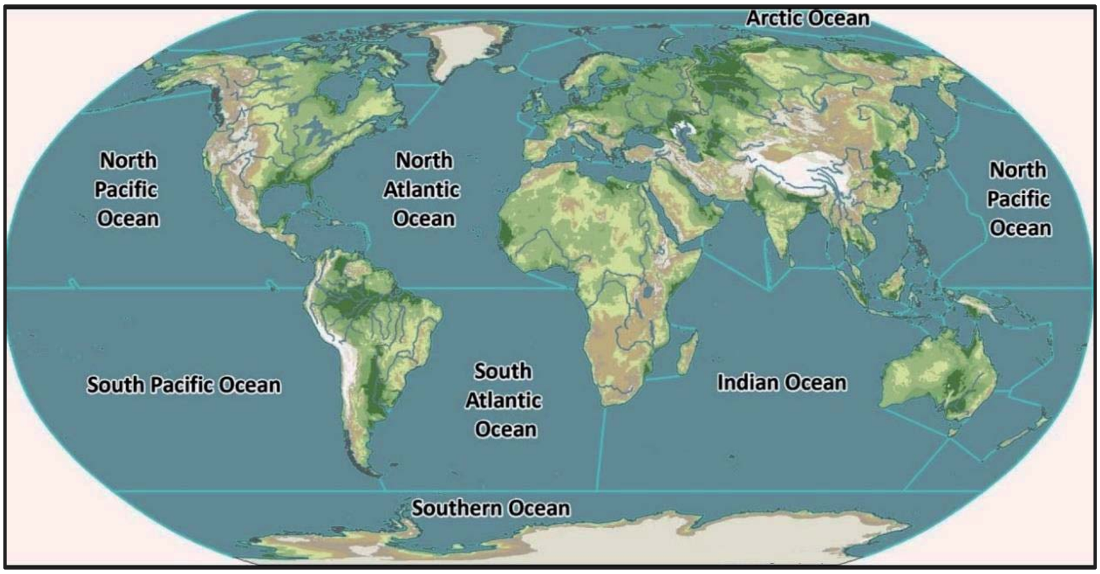


स्रोत: https://www.surfertoday.com

### 1.2.1.1 प्रशांत महासागर

प्रशांत महासागर का नामकरण 1520 में खोजकर्ता फर्डिनेंड मैगलन द्वारा रखा गया था। प्रशांत महासागर दुनिया का सबसे बड़ा महासागर है, जो पृथ्वी पर समुद्र की सतह के आधे से अधिक क्षेत्र पर विस्तृत है। प्रशांत महासागर, पृथ्वी ग्रह की सबसे बड़ी भौगोलिक इकाई है, जो पृथ्वी की संपूर्ण सतह के एक तिहाई से अधिक भाग में फैली हुई है। प्रशांत महासागर का क्षेत्रफल सभी महाद्वीपों के संयुक्त क्षेत्रफल से भी अधिक है ।

प्रशांत महासागर दुनिया का सबसे गहरा महासागर भी है जिसकी 14000 फीट तथा अधिकतम गहराई 35000 फीट है। इसमें अनेक गहरी समुद्री खाइयाँ कई छोटे उष्णकटिबंधीय द्वीप भी हैं।

### 1.2.1.2 अटलांटिक महासागर

अटलांटिक महासागर का नाम एटलस के नाम पर रखा गया था, जो ग्रीक पौराणिक कथाओं में टाइटन्स में से एक था। अटलांटिक महासागर का आकार प्रशांत महासागर के आकार का लगभग आधा है। इसकी गहराई भी प्रशांत महासागर की तुलना में कम है। यह पुरानी दुनिया (यूरोप, एशिया और

अफ्रीका) को नई दुनिया (उत्तर और दक्षिण अमेरिका) से अलग करता है । विश्व व्यापार एवं उपनिवेशवाद के प्रसार में इस महासागर की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

### 1.2.1.3 हिंद महासागर

हिंद महासागर का नाम भारत एवं भारतीय उपमहाद्वीप से निकटता के लिए रखा गया था। हिंद महासागर अटलांटिक महासागर से थोड़ा छोटा है और इनकी औसत गहराई लगभग समान है। हिंद महासागर का ज्यादातर विस्तार दक्षिणी गोलार्ध में है।

### 1.2.1.4 आर्कटिक महासागर

आर्कटिक महासागर का नाम आर्कटिक क्षेत्र में इसके स्थान के नाम पर रखा गया था । आर्कटिक महासागर प्रशांत महासागर के आकार का लगभग 7% है और बाकी महासागरों की तुलना में केवल एक-चौथाई से थोड़ा ही अधिक बड़ा है। इसकी सतह पर समुद्री बर्फ की कुछ मीटर मोटी एक स्थायी परत पाई जाती है तथा इसकी औसत गहराई भी कम है।

### 1.2.1.5 दक्षिणी महासागर या अंटार्कटिक महासागर

समुद्र विज्ञानी दक्षिणी गोलार्ध में अंटार्कटिका महाद्वीप के पास एक अतिरिक्त महासागर की पहचान करते हैं। अंटार्कटिका के पास अन्य तीन प्रमुख महासागरों के जल के मिलने से परिभाषित अंटार्कटिक अभिसरण महागरीय क्षेत्र को दक्षिणी महासागर या अंटार्कटिक महासागर के नाम से जाना जाता है। वास्तव में प्रशांत, अटलांटिक और हिंद महासागरों के लगभग 50 डिग्री दक्षिण अक्षांश के दक्षिण के हिस्से को ही दक्षिणी महासागर या अंटार्कटिक महासागर कहा जाता है। इसीलिए बहुत से समुद्र विज्ञानी इसे स्वतंत्र महासागर की संज्ञा देने में संकोच करते हैं। हालाँकि पाँचवे महासागर के रूप में व्यापक स्वीकृति प्राप्त है। इस महासागर का नाम दक्षिणी गोलार्ध में इसके अवस्थितिकी के कारण रखा गया है ।

## 1.3 महासागरों का महत्व

पृथ्वी के महासागरों का हमारे ग्रह पर गहरा प्रभाव पड़ा है और इनका हमारे ग्रह को महत्वपूर्ण तरीकों से आकार देना जारी है । महासागर सभी जीवन-रूपों के लिए आवश्यक हैं और पृथ्वी पर जीवन के विकास के लिए बड़े पैमाने पर जिम्मेदार हैं । महासागर एक स्थिर वातावरण प्रदान करते हैं जिसमें जीवन अरबों वर्षों में विकसित हो सकता है । आज, महासागरों में सूक्ष्म जीवाणुओं और शैवाल से लेकर आज के सबसे बड़े जीवन-रूप (ब्लू व्हेल) तक, ग्रह पर जीवित चीजों की सबसे बड़ी संख्या है । दिलचस्प

बात यह है कि पानी पृथ्वी पर लगभग हर जीवन-रूप का प्रमुख घटक है, और हमारे अपने शरीर के तरल पदार्थ का रसायन समुद्री जल के रसायन विज्ञान के समान है ।

महासागर पूरे विश्व में जलवायु और मौसम को प्रभावित करते हैं - यहां तक कि किसी भी महासागर से दूर महाद्वीपीय क्षेत्रों में - धाराओं और ताप/शीतलन तंत्र के एक जटिल पैटर्न के माध्यम से, जिनमें से कुछ वैज्ञानिक अभी समझने लगे हैं। महासागर भी हमारे ग्रह के "फेफड़े" हैं, जो कार्बन डाइऑक्साइड गैस को वायुमंडल से बाहर निकालते हैं और इसे ऑक्सीजन गैस से बदलते हैं। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि मनुष्य जितनी सांस लेता है उसका 70% महासागरों से आपूर्ति करता है।

महासागर निर्धारित करते हैं कि हमारे महाद्वीप कहाँ समाप्त होते हैं और इस प्रकार उन्होंने राजनीतिक सीमाओं और मानव इतिहास को आकार दिया है। महासागर कई विशेषताओं को छुपाते हैं; वास्तव में, पृथ्वी की अधिकांश भौगोलिक विशेषताएं समुद्र तल पर हैं। एक आश्चर्यजनक तथ्य यह भी है कि कुछ दशक पूर्व तक मानव जाति का ज्ञान चंद्रमा की सतह के बारे में महासागरों के तल की तुलना में अधिक था। सौभाग्य से, पिछले कई दशकों में महासागरों बारे में हमारा ज्ञान नाटकीय रूप से बढ़ा है ।

महासागरों में भी कई रहस्य खोजे जाने की प्रतीक्षा में हैं, और महासागरों के बारे में लगभग हर दिन नई वैज्ञानिक खोजें की जाती हैं। महासागर भोजन, खनिज और ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत हैं जो काफी हद तक अप्रयुक्त रहते हैं। दुनिया की आधी से अधिक आबादी महासागरों के पास के तटीय क्षेत्रों में रहती है, जो हल्की जलवायु, परिवहन का एक सस्ता रूप, खाद्य संसाधनों से निकटता और विशाल मनोरंजन के अवसरों का लाभ उठाती है। दुर्भाग्य से, महासागर आधुनिक समाज के कचरे का डंपिंग ग्राउंड भी हैं। वास्तव में, महासागर वर्तमान में प्रदूषण, अत्यधिक मछली पकड़ने, आक्रामक प्रजातियों और जलवायु परिवर्तन के कारण अन्य चीजों के कारण खतरनाक परिवर्तन दिखा रहे हैं। ये सभी और कई अन्य विषय इस पुस्तक में समाहित हैं ।

### 1.4 समुद्र विज्ञान की परिभाषा

समुद्र विज्ञान समुद्र और उसके भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों के साथ-साथ समुद्र और वातावरण, समुद्र तल और तटीय क्षेत्रों के बीच की बातचीत का वैज्ञानिक अध्ययन है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रख कर विभिन्न वैज्ञानिकों ने समुद्र विज्ञान को अलग अलग ढंग से परिभाषित किया है।

फ्रांसीसी समुद्र विज्ञानी **जैक्स कॉस्ट्यू** ने कहा कि "समुद्र विज्ञान" एक ऐसा विज्ञान है जो सभी बुनियादी विज्ञानों को एक साथ लाता है और उन्हें दुनिया के महासागरों के अध्ययन में लागू करता है।"

अमेरिकी समुद्र  जीवविज्ञानी और खोजकर्ता **सिल्विया अर्ल,** के अनुसार समुद्र विज्ञान को "भौतिकी और रसायन विज्ञान से लेकर भूविज्ञान और जीव विज्ञान तक, समुद्र में सब कुछ का विज्ञान" के रूप में परिभाषित करते हैं।

अमेरिकी समुद्र विज्ञानी **रॉबर्ट बलार्ड,** ने समुद्र विज्ञान का वर्णन "समुद्र में होने वाली भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं का अध्ययन और समुद्र पर्यावरण, भूमि और मानव गतिविधियों के परस्पर संवाद" के रूप में करते हैं।

**ओ. वी. फ्रीमैन** के अनुसार, समुद्र विज्ञान का सम्बन्ध मौसम विज्ञान के ही समान भौगोलिक पृष्ठभूमि से है। इसका सम्बन्ध पृथ्वी के सर्वाधिक गतिशील भाग जल मंडल से है । इसके अंतर्गत ज्वार भाटा, धाराओं, महासागरीय जल के भौतिक गुण-धर्मो, समुद्र के तटों तथा महासागरों के नितल के उच्चावच, समुद्रों के जल में पाए जाने वाले जीवों तथा महासागरों उनके प्रादेशिक वितरण आदि का अध्ययन किया जाता है|

**मार्मर ( H. A. Marmer)** के अनुसार, समुद्र विज्ञान मुख्य रूप से सागरीय बेसिनो के रूपों एवं उनकी प्रकृति तथा इनके जल के गुणों एवं उनकी गतियों का अध्ययन करता है।

**सविन्द्र सिंह** के अनुसार, समुद्र विज्ञान एक विज्ञान है जिसके अंतर्गत सागरीय बेसिनो एवं उनके उच्चावचों की विशेषताओं एवं उत्पत्ति, सागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक गुणों (तापमान, लवणता, एवं घनत्व), सागरीय गतियों (ज्वार, सागरीय तरंग, महासागरीय धाराएं, ज्वारीय तरंग, सुनामी आदि), सागरीय अवसादों तथा निक्षेपों, सागरीय संसाधनों, तटीय आवासों (habitats), सागरीय जीवों तथा जैविक उत्पादकता, एवं मानव तथा सागरीय पर्यावरण के मध्य संबंधो का अध्ययन किया जाता है।
कुल मिलाकर, समुद्र विज्ञान एक बहु-विषयक क्षेत्र है जिसमें कई अलग-अलग वैज्ञानिक विषय शामिल हैं, और इसका अध्ययन दुनिया के महासागरों और हमारे ग्रह पर उनके प्रभाव को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

## 1.5 समुद्र विज्ञान के विषय क्षेत्र

सामान्यतया जलमंडल के अध्ययन को समुद्र विज्ञान या महासागरों का भूगोल कहते हैं, उपर्युक्त परिभाषाओं से समुद्र विज्ञान के विषय क्षेत्र का अंदाजा लगाया जा सकता है। समुद्र विज्ञान का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है, मुख्यतः समुद्र विज्ञान के अंतर्गत सागरीय भौमिकी, सागरीय भू आकारिकी, भौतिक समुद्र विज्ञान, सागरीय जल की रासायानिक विशेषताएं, तथा जैव समुद्र विज्ञान का अध्ययन आता है ।

महासागरों की भौमिकीय तथा भू आकारिकी के सन्दर्भ में महासागरीय बेसिनो की उत्पत्ति ( महाद्वीपीय प्रवाह, प्लेट टेक्टोनिक्स के आधार पर सागर नितल प्रसारण), सागरीय अवसादों एवं निक्षेपों की उत्पत्ति एवं विशेषताएं तटीय प्रक्रम एवं तटीय स्थलरूपों आदि का अध्ययन सम्मिलित है ।

समुद्र विज्ञान के भौतिक एवं रासायनिक पक्षों के अंतर्गत सागरीय जल की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएं (जैसे तापमान, दाब, घनत्व, लवणता, संपीडनशीलता, श्यानता, जलराशि एवं उनका वितरण) महासागरीय जल का प्रवाह यानि सागरीय तरंग, धाराएं, ज्वार, सुनामी, ज्वारीय एवं तूफ़ान तरंगो का अध्ययन किया जाता है।

समुद्र विज्ञान के जैविक पक्ष के सन्दर्भ में सागरीय जीवों की उत्पत्ति, उनकी विशेषताएं, उनका वितरण,तटीय आवासों तथा जैव कटिबंधो, महा सागरीय पारिस्थिकी उसकी उत्पादकता आदि का अध्ययन किया जाता है।

समुद्र विज्ञान के अंतर्गत सागरीय मौसम विज्ञान का अध्ययन भी आजकल प्रचालन में है जिसमे महासागरीय जल पर वायुमंडलीय दशाओं तथा वायुमंडल- महासागरीय अंतर्क्रियाओं अध्ययन किया जाता है।

मानवीय आर्थिक क्रिया कलापों यथा सागरीय संसाधनों के उपयोग एवं दोहन ने सागरीय पर्यावरण को भारी मात्रा में प्रभावित किया गया है। मानव द्वारा सागरीय पर्यावरण के ऊपर मानवीय क्रियाकलापों एवं उसके प्रभाव के महत्व का अध्ययन भी समुद्र विज्ञान के विषय क्षेत्र में शामिल कर लिया गया है।

## 1.6 समुद्र विज्ञान का विकास

समुद्र विज्ञान का विकास, अन्वेषण, उपनिवेशीकरण, व्यापार, युद्ध और वैज्ञानिक खोज के इतिहास से गहराई से जुड़ा हुआ है। समुद्र विज्ञान के विकास के क्रम को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है-

1. प्राचीन काल या प्रारंभिक काल

2. मध्य युग या अंध युग
3. आधुनिक युग या खोज या अन्वेषण का युग

### 1.6.1 प्राचीन काल

समुद्र विज्ञान के विकास के प्रारंभिक काल को व्यक्तिगत उपागम की अवस्था भी कहा जाता है क्यों की इसमें आरंभिक नाविकों के व्यक्तिगत प्रयासों को भी शामिल किया जाता है । इस काल में नाविकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों तथा सैलानियों के समुद्री यात्राओ सम्बन्धी विवरणों तथा रिपोर्टो से समुद्र विज्ञान का विकास होता रहा है । इस काल की समयावधि 4000 ईसा पूर्व (B.C.) से दूसरी सदी (A. D.) तक है, इसे 3भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. **आरंभिक काल (EARLY PERIOD)** : इस काल का विस्तार 3500 वर्षो (4000 ई. पू. से 500 ई. पू.) का है, इस काल में एकल नाविकों ने प्रशांत महासागर और रूम सागर (भूमध्य सागर) के कई हिस्सों में नौसंचालन किया। इस काल में जलयान बनाने और नौसंचालन करने सम्बंधित मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं :
    - मिश्र वासियों ने 4000 ई. पू. में नौकायन एवं जहाजों की निर्माण के कला विकसित कर ली थी तथा रूम सागर के तटीय क्षेत्रों में नौकायन शुरू कर दिया था जिसका प्रमाण हमें उस समय के प्राप्त साक्ष्यो में मिलता है ।
    - माना जाता है की प्रशांत महासागर में उपस्थित द्वीपों के निवासी वहां के मूल निवासी न होकर किसी अन्य जगह से प्रवास कर के आये थे । अगर हम अफ्रीका में मानव के उद्गम तथा वहाँ से सम्पूर्ण विश्व में प्रसरण की परिकल्पना को सत्य माने तो ऐसा बिना कुशल नौसंचालन के संभव नहीं है|
    - माना जाता है, पॉलिनेशियन लगभग 2000 ई. पू. से 500 ई. पू. तक प्रशांत महासागर के पश्चिमी तट से न्यू गिनी, फिजी, समोआ और हवाई जैसे द्वीपों का उपनिवेश करने के लिए चले गए थे । पोलिनेशिया के लोगों ने खगोल विज्ञान (तारों और ग्रहों की स्थिति) और समुद्र की धाराओं के अपने ज्ञान का उपयोग करके खुले समुद्र में नौकायन किया । उन्होंने इन आंकड़ों का उपयोग पहले समुद्र संबंधी मानचित्र बनाने के लिए किया ।

2. **मापन का काल:** इस काल का विस्तार 500 ई. पू. से लेकर लगभग 25 ई. पू. तक रहा है, इस काल में समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में निम्न महत्वपूर्ण उपलब्धियां रही हैं।

- संभवतः पाइथस यूनान का पहला नाविक एवं अनुसन्धानकर्ता था जिसने चौथी सदी ई. पू. में इंग्लैंड तक नौपरिसंचालन किया तथा इंग्लैंड की तट रेखा की लम्बाई की नाप की थी। इसके बाद उसने 325 ई. पू. में आइसलैंड तक की यात्रा की । पाइथस ने सागरीय ज्वार का भी अध्ययन किया था ।
- हेरोडोटस ने 450 ई. पू. में रूम सागर का मानचित्र बनाया जिसके अनुसार रूम सागर 3 महाद्वीपों अर्थात यूरोपा (यूरोप ), एशिया तथा लीबिया (अफ्रीका) से घिरा हुआ है।
- इरैटोस्थनीज (276-192 ई. पू.) यूनानी विद्वान था जिसने महासागरों सहित पूरी पृथ्वी की परिधि का लगभग सही अंदाज़ा लगाया था।
- स्ट्रैबो (54ई. पू.- 25 ई. पू.) ने स्थल एवं सागरों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया था।

3. **महासागरों के मानचित्रण का आरंभिक काल:** इसकी कालावधि प्रथम तथा द्वितीय ई. सदी तक 200 वर्षों की रही है । इस काल में प्रमुख योगदान निम्न लिखित हैं:

- रोमन चिन्तक सेनेका (54 ई. पू.-30 ई. पू.) ने भूमंडलीय जलीय चक्र के बारे में व्याख्या की।
- यूनान के विद्वान टालमी ने 150 ई. में समस्त रोम साम्राज्य का मानचित्र निर्माण किया जिसमे इन्होने सभी महासागरों को सागरों के रूप में दिखाया था।
- पोसीडोनियम ने सारडीनिया के पास 1000 फैदम तक सागरीय गहराई का मापन किया था।

### 1.6.2 मध्य काल या अंध युग

इस युग को यूरोप में अंध युग के नाम से जाना जाता है, जिसका मुख्य कारण यह था की इस कालावधि में अन्य विज्ञानों की तरह समुद्र विज्ञान के विकास में कोई खास योगदान नहीं था।

इस कालावधि का विस्तार दूसरी सदी ई. के अंत से 14वीं सदी ई. तक रहा है। इस काल में समुद्र विज्ञान के विकास में निम्न योगदान उल्लेखनीय है :

- इस काल में यूरोप के लोगों ने कुछ कार्य किया जिसमे बेदे (673 ई. – 735 ई.) ने ज्वारीय प्रक्रम का अध्ययन करते हुए बताया की ज्वार चन्द्रमा द्वारा नियंत्रित होता है जिसे चन्द्र नियंत्रण कहते हैं ।
- स्कैन्डनेविया के निवासी विकिंग्स ने उत्तरी अटलांटिक महासागर में नौसंचालन किया था तथा ये आइसलैंड, दक्षिणी ग्रीनलैंड तथा बैफिन द्वीप तक समुद्री यात्रायें की तथा आइसलैंड में आवासित हुए।

### 1.6.3 आधुनिक युग या खोज या अन्वेषण का युग

समुद्र विज्ञान के विकास के इतिहास में 15 वीं एवं 16 वीं सदी को पुनर्जागरण काल या खोज या अन्वेषण का महाकाल कहते हैं । क्योंकि इन 200 वर्षों में नई खोजों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किये गए। इस पुनर्जागरण काल में खोज एवं अन्वेषण के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है:

- पुर्तगाल एवं स्पेन के नौसंचालकों ने नए क्षेत्रों की खोज की यथा अमेरिका की खोज उत्तमाशा अंतरीप (दक्षिण अफ्रीका का दक्षिणी छोर) से होकर भारत पूर्वी द्वीप समूह आदि के लिए नए मार्ग की खोज इत्यादि ।
- लियोनार्डो द विंसी (1452 ई.- 1519 ई.) ने महासागरीय धाराओं तथा तरंगों का अध्ययन किया तथा उनके विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया उन्होंने बताया कि सागर तल में भी स्थल की तरह उच्चावच होता है।
- कोलंबस ने उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप से यूरोप को परिचित कराया । उल्लेखनीय है कि बाक़ी विश्व को उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप का पता नहीं था परंतु कोलंबस संयोगवश पूर्वी द्वीप समूह की तलाश में संयोगवश पश्चिमी द्वीप समूह पहुंच गया इस प्रकार भारत न पहुंचकर उसने उत्तरी अमेरिका तथा कैरेबियन सागर के द्वीपों की खोज कर डाली ।

- समुंद्र विज्ञान के विकास के इस क्रम में प्रिंस हेनरी द नेविगेटर, जुआन पाउन्स डी लिओन, वास्को नुनेज डी बलबोआ, पीटर मेटर, फर्डिनांड मैगेलन, सेबास्टियन डेल कानो, जेराडस मर्केटर आदि ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

### 1.6.3.1 महासागरो के वैज्ञानिक अन्वेषण का काल

समुद्र विज्ञान के विकास के इतिहास में 17 से 18 वीं शताब्दी तक के 200 वर्षों के काल को महासागरों के वैज्ञानिक अन्वेषण का महाकाल कहा जाता है, इस कालखंड में सागरों एवं महासागरों का वैज्ञानिक एवं प्राविधिक आधारों पर अध्ययन प्रारंभ हुआ तथा महासागरीय गहराई के मापन एवं मानचित्रण महासागरीय लवणता के चित्रण एवं वितरण में विषमता सागरीय जल के दाब महासागरीय धाराओं तथा ज्वार आदि से संबंधित अध्ययन किए गए। इस समयावधि में महासागरीय अध्ययन के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य किये गये :

- रोबोट बॉयले ने सन 1674 में 'ऑब्जरवेशन एंड एक्सपेरिमेंट आन द साल्टीनेस ऑफ़ द सी' नमक पुस्तक प्रकाशित की जिसमे उन्होंने महासागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक गुणों यथा महासागरीय लवणता तापमान दबाव तथा घनत्व का अध्ययन करने के बाद इन विचरो में विभिन्न गहराई मंडलों में संबंधों के अध्ययन का प्रयास किया तथा इस अध्ययन के परिणाम को दर्शाया।
- इसी क्रम में आइजक न्यूटन ने महासागरो में ज्वार की उत्पत्ति से सम्बंधित संतुलन सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
- लुइगी मारसिग्ली ने समुद्र विज्ञान पर पहली बृहद पुस्तक का संकलन किया तथा उसे 'histoir physique de la mer' नाम से सन 1725 में प्रकाशित किया।
- बेंजामिन फ्रैंकलीन ने गल्फस्ट्रीम के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के पश्चात इसके पथ प्रथम समुद्र चार्ट 1769 -70 में प्रस्तुत किया।
- कैप्टन जेम्स कुक एक अंग्रेजी नाविक थे, जिन्होंने अपनी समुद्री यात्रा तीन अवस्थाओं में संपन्न की, इन यात्राओं से प्राप्त जानकारी के आधार पर समुद्र विज्ञान के विकास के इतिहास में दक्षिणी

प्रशांत महासागर का अन्वेषण, महासागर की भौतिक प्रकृति, दोनों गोलार्द्धों के ध्रुवीय महासागरों का अन्वेषण, विश्व मानचित्र का निर्माण, आदि योगदान दिया।

## 19वीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास

इस काल खंड में समुद्र विज्ञान का विकास तीव्र गति से हुआ, इस अवधि में कई समुद्री अभियान किये गए जिनका उद्देश्य सागरों तथा महासागरो के रहस्यों को उजागर करना था । इस काल को निम्न तीन भागो में विभाजित किया जाता है:

- एडवर्ड फ़ोर्ब्स का काल (1815- 1854 ई.)
- चैलेंजर खोज अभियान काल
- चैलेंजर उपरांत काल

**1.6.3.2 एडवर्ड फ़ोर्ब्स का काल**: इस काल के वैज्ञानिको का समुद्र विज्ञान के विकास में निम्न लिखित योगदान रहा है:

- **सर जॉन रॉस**- इन्होने सन 1817- 1818 ई में आर्कटिक सागर एवं बैफिन द्वीप का अध्ययन किया तथा साउंडिंग विधि से सागर नितल का मापन किया तथा 2000 मीटर तक सागरीय जीवों का अध्ययन किया।
- **चार्ल्स डार्विन** ने विभिन्न अवस्थाओं तथा पर्यावरण में प्रवाल भित्तियों का अध्ययन किया तथा उनकी उत्पत्ति से संबंधित अपने सिद्धांत ‘प्रवाल भित्तियों का अवतलन’ का सन 1837 में प्रतिपादन किया उन्होंने अपने सिद्धांत को 1842 में संशोधित किया। इनके अन्य महत्वपूर्ण योगदान में बीगल अभियान उल्लेखनीय है।
- **सर जेम्स क्लार्क रॉस (1800-1862):** रॉस एक ब्रिटिश नौसेना अधिकारी थे जिन्होंने समुद्री जीव विज्ञान और भूविज्ञान के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने आर्कटिक और अंटार्कटिक क्षेत्रों में अभियानों का नेतृत्व किया और रॉस सागर की खोज की, जिसका नाम

उनके नाम पर रखा गया है। उन्होंने इन क्षेत्रों के भूविज्ञान और समुद्री जीवन के बारे में भी महत्वपूर्ण अवलोकन किए।

- **सर एडवर्ड फॉर्ब्स** मुख्यतः सागर वनस्पति शास्त्री थे जिन्होंने सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन, हेब्राइड्स, तथा रूम सागर में 230 फैदम की गहराई तक सागरीय स्तनधारी जंतुओं का अध्ययन किया तथा इन्होंने अटलांटिक महासागर के कुछ भागों के सागरीय नितल के उच्चावचों का भी अध्ययन किया था| इन्होंने एजियन सागर में सागरीय जीवों का वितरण तथा सागरीय जीवों के विश्व वितरण का मानचित्र का निर्माण किया।
- **एम. एफ. मरे** का योगदान मुख्यतः महासागरीय धाराओं, सागरीय सतह पर वायु तथा सागरीय मौसम सम्बन्धी दशाओं के आकड़ो के संकलन एवं विश्लेषण से सम्बंधित था जिसे इन्होने द फिजिकल जियोग्राफी ऑफ़ द सी नामक पुस्तक में सन 1855 में प्रकाशित किया।
- **चार्ल्स वीविले थॉमसन** ने अपना समुद्री अभियन सन 1868 से 1870 तक संपन्न किया जिसमें उन्होंने विभिन्न गहराइयों पर सागरीय जल के तापमान के आंकड़ों का संग्रहण किया तथा इन्होंने अधिक गहराई पर सागरीय जीवो का भी पता लगाया।

### 1.6.3.3 चैलेंजर अभियान काल (1872 - 76)

चार्ल्स वीविले थॉमसन के नेतृत्व में 1872 में चैलेंजर अभियान की शुरुआत की गयी । जहां तक महासागरों के जैविक एवं अजैविक के खोज तथा अध्ययन का संबंध है यह अभियान सबसे सफलतम समुद्रिक अभियानों में से एक है । इसके मुख्यतः निम्नांकित उद्देश्य थे :

- विशाल महासागरीय बेसिनों में गहरे सागरों की भौतिक दशाओं का पता लगाना।
- महासागरों में प्रत्येक स्तर पर समुद्री जल के रासायनिक संघटन का विश्लेषण करना।
- महासागरों के नितल पर एकत्रित निक्षेपों के भौतिक-रासायनिक गुणधर्मों एवं उनकी उत्पत्ति का परीक्षण करना।
- महासागरों की विभिन्न गहराइयों में तथा उनके नितल पर जैव पदार्थों के वितरण की खोज करना।

#### 1.6.3.4 चैलेंजर उपरांत काल

चैलेंजर अभियान के उपरांत भी सागर के खोजी कार्यों में आयी तेज़ी बरक़रार रही । इस समयावधि में कई वैज्ञानिको जैसे लुई अगासीज (1877- 1888 ई.), जान मरे, तथा नानसेन आदि ने समुद्र विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया जो की निम्न लिखित है :

- **अलेक्जेंडर अगासिज़** (1835-1910): अगासिज़ एक स्विस-अमेरिकी समुद्री जीवविज्ञानी और समुद्र विज्ञानी थे जिन्होंने प्रवाल भित्तियों और समुद्री जीवन पर शोध किया था। उन्होंने समुद्र के संचलन और समुद्र तल के भूविज्ञान के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। अगासीज ने फ्लोरिडा मित्ति तथा केस (keys) का विधिवत अध्ययन किया, इन्होने फ्लोरिडा से लेकर सन फ्रांसिस्को तक समुद्र के विभिन्न तत्वों का अध्ययन किया।
- जान मरे ने आधुनिक समुद्र विज्ञान की आधारशिला रखी, टाइटन अभियान (1882) तथा चैलेंजर अभियान में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा । इन अभियानों के दौरान प्राप्त आकड़ो और नमूनों के आधार पर इन्होने अन्तः सागरीय कटक की खोज की, प्लैंकटन का अध्ययन किया, सागरीय नितल पर निक्षेपों का अध्ययन किया, प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति एवं रचना पर भी प्रकाश डाला तथा अटलांतिक महासागर की गर्तों का मानचित्रण किया।
- **फ्रिड्टजॉफ नानसेन** (1861-1930): नानसेन एक नॉर्वेजियन खोजकर्ता, वैज्ञानिक और राजनयिक थे जिन्होंने समुद्री धाराओं और ध्रुवीय क्षेत्रों के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने आर्कटिक बर्फ के बहाव का अध्ययन करने के लिए एक विशेष फ्रैम के जहाज को डिजाइन किया और 1893-1896 में उत्तरी ध्रुव पर एक अभियान का नेतृत्व किया। नानसेन ने एक विशेष प्रकार के बोतल का निर्माण किया जिससे विभिन्न स्तरों पर लिये गए समुद्री जल की लवणता एवं तापमान का शुद्धता के साथ मापन किया जाना सम्भव हो सका । इनकी आर्कटिक सागर की यात्रा विशेष उल्लेखनीय है जिसके फलस्वरूप इस सागर के विषय में पहली बार कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी।
- ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त अभियानों के अतिरिक्त विभिन्न देशों के द्वारा खोज यात्रायें संचालित की गई। सन् 1868-70 की अवधि में लाइटनिंग तथा पारक्यूपाइन (Lightning and Porcupine)

नामक जहाजों में ब्रिटिश अभियान दलों ने गहरे समुद्रों के जल की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषताओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये । इसी कालावधि में जर्मन अभियान दल 'गजेल' (Gazelle) नामक जहाज के साथ इन्हीं कार्यों में संलग्न रहा । इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय बात यह रही कि इन अभियानों, विशेषरूप से चैलेन्जर अभियान के अनुसन्धान कार्यों के पश्चात् लगभग पचास वर्षों तक किसी अन्य अभियान दल का गठन नहीं किया गया।

- एलेक्जेंडर अगाजीस ने 'Blake' तथा 'Albatross' अभियान में लगभग 3 वर्षों की समयावधि में 160000 किमी लम्बे सागरीय तटो का सर्वेक्षण किया तथा गल्फ स्ट्रीम की अवस्थिति का निर्धारण किया, इसी दौरान इन्होने ग्रेट बैरियर रीफ का अध्ययन किया, तथा बहामा, बरमूडा तथा फ्लोरिडा के पास प्रवाल भित्तिओं का अध्ययन किया।

### 1.6.3.5 बीसवीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास

औद्योगिक विकास के साथ आधुनिकतम जलपोतों (Vessels), उपकरणों तथा प्रयोगशालाओं से समृद्ध एवं राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर आपसी सहयोग के साथ 20वी शताब्दी के शुरुआत से ही आधुनिक समुद्र विज्ञान में शोध कार्य की भी शुरुआत होती है। 20वीं शताब्दी में समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुए, कई नई खोजों और प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण दुनिया के महासागरों की अधिक समझ पैदा हुई। 20वीं शताब्दी के दौरान समुद्र विज्ञान के कुछ प्रमुख विकास इस प्रकार हैं:

- समुद्रों से सम्बंधित आकड़ा समूह को प्राप्त करने के लिए अत्याधुनिक उपकरणों तथा विधियों का उपयोग हुआ । प्रौद्योगिकी में प्रगति सोनार और उपग्रह इमेजिंग जैसी नई तकनीकों के विकास ने समुद्र के अध्ययन में क्रांति ला दी है। सोनार ने वैज्ञानिकों को समुद्र तल का नक्शा बनाने और पानी के नीचे की वस्तुओं की गति का अध्ययन करने की अनुमति दी, जबकि उपग्रह इमेजिंग ने अंतरिक्ष से समुद्र की धाराओं और तापमान में बदलाव का अध्ययन करना संभव बना दिया।
- इस समयावधि में विभिन्न अनुसंधानों द्वारा महासागरीय नितल के उच्चावचों का निर्धारण किया गया, तथा महासागरीय जल की लवणता, तापमान तथा घुली आक्सीजन का मापन भी किया गया।

- आधुनिकतम प्रोद्योगिकी, विधियों तथा उपयुक्त उपकरणों के उपयोग के साथ महासागरों का विस्तृत सर्वेक्षण इस काल की विशेषता रही है।
- सरकारी एजेंसियों द्वारा आर्थिक सहायता, सागरीय शोध को बढ़ावा देने के लिए सागरीय संस्थाओ तथा संस्थानों की स्थापना, तथा सागरीय शोधो में अंतरराष्ट्रीय योजनाओं तथा बहुराष्ट्रीय संगठनो एवं सहयोग की शुरुआत हुई।
- जैविक समुद्र विज्ञान का जन्म: 20वीं सदी की शुरुआत में, वैज्ञानिकों ने समुद्री जीवन और समुद्र की पारिस्थितिकी के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करना शुरू किया। इससे जैविक समुद्र विज्ञान का जन्म हुआ, जो तब से समुद्र विज्ञान में अध्ययन का एक प्रमुख क्षेत्र बन गया है।
- चैलेंजर II अभियान: 1950 के दशक में, ब्रिटिश रॉयल सोसाइटी ने चैलेंजर II अभियान शुरू किया, जो 19वीं शताब्दी के चैलेंजर अभियान के बाद से समुद्र का पहला वैश्विक वैज्ञानिक सर्वेक्षण था। इस अभियान ने समुद्र की धाराओं, तापमान और लवणता पर डेटा का खजाना तैयार किया और आधुनिक समुद्र विज्ञान की नींव रखने में मदद की।
- प्लेट टेक्टोनिक्स थ्योरी: 1960 के दशक में वैज्ञानिकों ने प्लेट टेक्टोनिक्स के सिद्धांत को विकसित किया, जो पृथ्वी की प्लेटों की गति और समुद्री खाइयों और ज्वालामुखीय द्वीपों के निर्माण की व्याख्या करता है। इस सिद्धांत का समुद्र विज्ञान के अध्ययन पर एक बड़ा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि इससे समुद्र तल को आकार देने वाली भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करने में मदद मिली है।
- जलवायु परिवर्तन अनुसंधान: हाल के दशकों में, समुद्र विज्ञानियों ने दुनिया के महासागरों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित किया है। इस शोध से समुद्र के बढ़ते स्तर, समुद्र के अम्लीकरण और अन्य पर्यावरणीय परिवर्तनों का समुद्री पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव का पता चला है और इससे पृथ्वी की जलवायु को विनियमित करने में महासागर की भूमिका की अधिक समझ पैदा हुई है।

कुल मिलाकर, 20वीं सदी में समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ, क्योंकि नई तकनीकों और शोध तकनीकों ने वैज्ञानिकों को दुनिया के महासागरों और पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र के लिए उनके महत्व की अधिक समझ हासिल करने की अनुमति दी।

### 1.6.3.6 21वी सदी में समुद्र विज्ञान में शोध एवं अध्ययन

महासागरो का आर्थिक एवं राजनितिक महत्व बढ़ने के साथ साथ वर्तमान में समुद्र विज्ञान का अध्ययन भी अधिक महत्वपूर्ण हो चला है, साथ ही व्यवहारिक समुद्र विज्ञान के अध्ययन की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा है।

वर्तमान समय में समुद्र विज्ञान में सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र एवम सागरीय पारिस्थितिकी अध्ययन का मुख्य बिंदु है, आधुनिक तकनीकी, बहअंतर्विषयक अध्ययन उपागम तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से समुद्र विज्ञान के विकास में 21वी सदी बहुत ही महत्वपूर्ण दिखलाई पड रही है।

वर्तमान सदी में हुई कुछ भयावह घटनायें जैसे सागरीय जल स्तर में वृद्धि, एलनीनो परिघटना, प्रवाल विरंजन इत्यादि ने सागरीय शोध एवं अनुसंधान को बहुत सार्थक बनाया है, जिसमे जलवायु परिवर्तन की निगरानी के लिए महासागर- वायुमंडल अंतर्क्रिया का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है।

### सारांश

समुद्र पृथ्वी की विशालतम भौतिक इकाई हैं। अपनी आश्चर्यजनक विशालता के कारण समुद्र हमेशा से मानव जाति के लिए आकर्षण का केद्र रहे हैं। सागरों के प्रति एक आकषर्ण ने समुद्र विज्ञान को जन्म दिया जो समय के साथ विकसित और समृद्ध होता रहा। तथा बीसवीं एवं इक्कसवीं सदी में तकनीकी के विकास के साथ साथ एक वैविध्यपूर्ण विषय के रूप में सामने आया।

### अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1: विश्व के प्रमुख महासागरों का वर्णन कीजिये तथा उनकी अवस्थितिकी को मानचित्र में प्रदर्शित कीजिये।

प्रश्न 2: मानव जीवन में महासागरों के महत्व का उल्लेख कीजिये |

प्रश्न 3: समुद्र विज्ञान की परिभाषा तथा इसके विषय क्षेत्र का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 4: समुद्र विज्ञान के विकास का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 5: समझाइये कि किस प्रकार समुद्र विज्ञान एक विषय के रूप में शनै-शनै वर्णनात्मक से विश्लेषणात्मक विषय के रूप में परिवर्तित हो गया|

## सन्दर्भ ग्रन्थ


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.
- मार्क डेनी (2008). हाउ द ओशन वर्क: एन इंट्रोडक्टरी ओशनोग्राफी, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.


## इन्टरनेट स्त्रोत


1. https://divediscover.whoi.edu/history-of-oceanography/ (12/03/2023 को रिट्रीव किया गया)
2. https://education.nationalgeographic.org/resource/oceanography/ (12/03/2023 को रिट्रीव किया गया)

# इकाई 2

# समुद्र विज्ञान की शाखाएँ तथा समुद्र विज्ञान से सम्बन्धित अन्य विषय

## इकाई की रूपरेखा


2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 समुद्र विज्ञान की शाखाएं

2.2.1 भौतिक समुद्र विज्ञान

2.2.2 भू-आकृतिक समुद्र विज्ञान

2.2.3 भौमिकीय समुद्र विज्ञान

2.2.4 रासायनिक समुद्र विज्ञान

2.2.5 जैव समुद्र विज्ञान

2.2.6 समुद्री मौसम विज्ञान

2.2.7 पर्यावरण समुद्र विज्ञान

2.2.8 अनुप्रयुक्त समुद्र विज्ञान

2.3 समुद्र विज्ञान तथा उस से सम्बंधित अन्य विषय

2.4 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 2

# समुद्र विज्ञान की शाखाएँ तथा समुद्र विज्ञान से सम्बन्धित अन्य विषय

## 2.0 प्रस्तावना

समुद्र विज्ञान, महासागरों के अध्ययन के लिए रसायन विज्ञान, भूविज्ञान, मौसम विज्ञान, जीव विज्ञान और विज्ञान की अन्य शाखाओं से विषय सामग्री ग्रहण करता है। साथ ही साथ मानव जीवन से संदर्भित मुद्दों जैसे जलवायु परिवर्तन, समुद्री प्रदूषण और अन्य कारक जो समुद्री जीवन को खतरे में डाल रहे हैं उनका भी अध्ययन करता है।

## 2.1 उद्देश्य

अद्वितीय इकाई "समुद्र विज्ञान की शाखाएँ तथा समुद्र विज्ञान से सम्बन्धित अन्य विषय" अध्ययन के उपरांत आप:

1. समुद्र विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का वर्णन कर सकेंगे।
2. समुद्र विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की विषय सामग्री को समझ सकेंगे।
3. समुद्र विज्ञान की अंतर्विषयक तथा बहुविषयक प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे।

## 2.2 समुद्र विज्ञान की शाखाएं

जिस प्रकार से हम भूगोल को मुख्यतः दो शाखाओं क्रमशः भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल में विभाजित करते है उसी प्रकार समुद्र विज्ञान को भी सामान्यतः दो शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है प्रथम भौतिक समुद्र विज्ञान तथा द्वितीय सागरीय जीव विज्ञान। समुद्र विज्ञान की परिभाषाओं तथा समुद्र की अनेकानेक विशेषताओं तथा उसको प्रभावित करने वाले अन्य तथ्यों को ध्यान में रखते हुए समुद्र विज्ञान को कई उपशाखाओ में विभाजित किया जाता है। इन उपशाखाओं का विकास स्वतंत्र विषयों के रूप में हुआ है और ये सभी समुद्रों का अध्ययन भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से करती हैं। किन्तु इन

सभी विषयों का स्वतंत्र अस्तित्व होते हुए भी इनमें अत्यन्त घनिष्ठ एवं जटिल अन्तर्सम्बन्ध पाया जाता है। समुद्र विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

### 2.2.1 भौतिक समुद्र विज्ञान (Physical Oceanography)

भौतिक समुद्र विज्ञान दुनिया के महासागरों और समुद्रों की भौतिक प्रक्रियाओं और गुणों का अध्ययन है, जिसमें तापमान, लवणता, घनत्व, धाराएं, लहरें, ज्वार और परिसंचरण शामिल हैं। यह समुद्र विज्ञान का एक उपक्षेत्र है जो समुद्र के भौतिक व्यवहार और वातावरण, भूमि और बर्फ के साथ इसकी बातचीत से संबंधित है।

समुद्र विज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत समुद्री  पर्यावरण का अध्ययन किया जाता है जिसमें समुद्री बेसिनों की संरचना एवं समुद्री जल की विभिन्न गतियों जैसे, धारायें, तरंगें तथा ज्वार-भाटा आदि सम्मिलित हैं। भौतिक समुद्र विज्ञान समुद्री जल की विशेषताओं, जैसे तापमान, लवणता घनत्व तथा जलराशियों (water masses) आदि का अध्ययन करता है। इसके अलावा समुद्र विज्ञान की इस शाखा में महासागरों के नितल के उच्चावच, विविध प्रकार के अन्तःसमुद्री निक्षेप, सतह के नीचे जल संचार प्रणाली, जल की पारदर्शकता तथा प्रकाश का उस पर पड़ने वाला प्रभाव आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। भौतिक समुद्र विज्ञान वायुमण्डल की निचली परतों तथा महासागरों की सतह के मध्य होने वाले उर्जा तथा अन्य तथ्यों के आदान-प्रदान एवं अन्तर्क्रियाओं (interactions) का विशेष अध्ययन करता है।  महासागरीय जल के अवस्रवण (sinking) तथा उत्स्रवण (upwelling) का महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है, अतः भौतिक समुद्र विज्ञान इन का भी अध्ययन करता है।

समुद्र के भौतिक गुणों को समझना कई कारणों से महत्वपूर्ण है, जैसे मौसम के पैटर्न की भविष्यवाणी करना, जलवायु परिवर्तन का अध्ययन करना और समुद्री संसाधनों का प्रबंधन करना। समुद्री जीव विज्ञान और पारिस्थितिकी के अध्ययन में भौतिक समुद्र विज्ञान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि समुद्र के भौतिक वातावरण का वहां रहने वाले जीवों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

भौतिक समुद्र विज्ञानी समुद्र का अध्ययन करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणों और तकनीकों का उपयोग करते हैं, जिनमें उपग्रह, जहाज, बोया और कंप्यूटर मॉडल शामिल हैं। वे अध्ययन करते हैं कि

महासागर कैसे चलता है और फैलता है, लहरें और ज्वार कैसे उत्पन्न होते हैं, और गर्मी और पोषक तत्वों को पूरे महासागर में कैसे पहुँचाया जाता है।

### 2.2.2 भुआकृतिक समुद्र विज्ञान ( Geomorphological Oceanography):

भुआकृतिक समुद्र विज्ञान के अंतर्गत अनाच्छादन (Denudation) के तटीय ( सागरीय ) प्रक्रमों की क्रियाविधि तथा उनसे उत्पन्न स्थल रूपों ( जैसे सागरीय क्लिफ, तरंग घर्षित प्लेटफोर्म, सागरीय कन्दरा, स्केरी, स्टैक, तरंग निक्षेपित वेदिका, सागरीय पुलिन- beaches आदि ) का अध्ययन किया जाता है। ये स्थलरुप सागरीय जीवो को आदर्श निवास प्रदान करते हैं।

### 2.2.3 भौमिकीय समुद्र विज्ञान (Geological Oceanography)

भू-आकृतिक समुद्र विज्ञान समुद्र विज्ञान का एक उपक्षेत्र है जो समुद्र तल की भौतिक विशेषताओं और प्रक्रियाओं के अध्ययन पर केंद्रित है। इसमें समुद्री तल के आकार, स्थलाकृति और संरचना के अध्ययन के साथ-साथ इसे आकार देने वाली प्रक्रियाएं शामिल हैं, जैसे विवर्तनिक गतिविधि, अपरदन और अवसादन। भौमिकीय समुद्र विज्ञान के अंतर्गत मुख्य रूप से सागर नितल की विशेषताओं, उसकी आकृतियों तथा उनके निर्माण, महासागरीय द्रोणियों की उत्पत्ति, प्लेट संचलन, तथा सागरीय तली का प्रसार, सागरीय अवसाद एवम् निक्षेप आदि का अध्ययन किया जाता है। प्रवाल भित्तियां, महासागरों के द्वीपों का निर्माण, नितल के नीचे ऊष्मा - प्रवाह, भूकम्प तथा चुम्बकत्व आदि गूढ़ विषयों का इस शाखा के अन्तर्गत भूवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।

भू-आकृति विज्ञान समुद्र विज्ञान के मुख्य लक्ष्यों में से एक समुद्र तल के भूवैज्ञानिक इतिहास को समझना है और यह समझना है कि समय के साथ यह कैसे बदल गया है। यह पृथ्वी की पपड़ी के विकास और इसे आकार देने वाली प्रक्रियाओं में अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है। यह हमें समुद्री जीवन के वितरण और पानी के नीचे के पहाड़ों, घाटियों और ज्वालामुखियों जैसी महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक विशेषताओं के निर्माण को समझने में भी मदद कर सकता है।

### 2.2.4 रासायनिक समुद्र विज्ञान (Chemical Oceanography)

सागरीय जल के रासायनिक संघटन एवं रासायनिक विशेषताओं के अध्ययन को रासायनिक समुद्र विज्ञान कहते हैं। रासायनिक समुद्र विज्ञान समुद्री जल की रासायनिक संरचना और इसके गुणों को नियंत्रित करने वाली प्रक्रियाओं का अध्ययन है। इसमें समुद्र में तत्वों और यौगिकों के वितरण और चक्रण का अध्ययन शामिल है, जैसे पोषक तत्व, लवण, ट्रेस तत्व और कार्बनिक पदार्थ। समुद्र के जल में विभिन्न प्रकार के लवण तथा अन्य रासायनिक पदार्थ घोल रूप में विद्यमान रहते हैं जिनका प्रभाव उसकी विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं तथा जैव चक्रों (biological cycles) पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक रासायनिक कारक (chemical factors) होते हैं जो महासागरों की जैविक, भूवैज्ञानिक तथा भौतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। अतः आधुनिक समुद्र विज्ञान में समुद्री जल के रासायनिक विश्लेषण का विशेष महत्व है। वस्तुतः समुद्री जल के रासायनिक संघटन पर ही पोषण - चक्र ( nutrient cycle) निर्भर करता है और इसका सम्बन्ध महासागरों के विशाल जैव-जगत से है। इसके अतिरिक्त जल के तापमान, लवणता, घनत्व आदि का घनिष्ठ सम्बन्ध महासागरीय जल की परिसंचरण प्रणाली से है। महासागरीय जल का प्रदूषण महासागरीय जीवों के लिये खतरनाक है। रेडियोसक्रिय कचरे का निस्तारण तथा पेट्रोरसायनों से समुद्री पर्यावरण के प्रदूषण जैसी समस्याओं का यह शाखा समाधान ढूंढती है। समुद्र के बारे में हमारी समझ और पृथ्वी प्रणाली के लिए इसके महत्व को आगे बढ़ाने के साथ-साथ समुद्री संसाधनों के स्थायी प्रबंधन के लिए रणनीतियों को सूचित करने में रासायनिक समुद्र विज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### 2.2.5 जैव समुद्र विज्ञान (Biological Oceanography)

जैविक समुद्र विज्ञान समुद्री विज्ञान की एक शाखा है जो जीवित जीवों के अध्ययन और समुद्री पारिस्थितिक तंत्र के भीतर उनकी बातचीत पर केंद्रित है। यह समुद्री जीवन के वितरण, उनकी बहुलता और विविधता के साथ-साथ उनके अस्तित्व और व्यवहार को प्रभावित करने वाले भौतिक और रासायनिक कारकों को समझने के लिए जीव विज्ञान (Biology), पारिस्थितिकी (Ecology) और समुद्र विज्ञान (Oceanography) के सिद्धांतों को जोड़ता है।

महासागरों का सम्पूर्ण जैव-चक्र उसके जल के सम्पूर्ण भौतिक-रासायनिक गुण-धर्मों के द्वारा संचालित होता है। समुद्र विज्ञान की यह शाखा महासागरों में पाये जाने वाले उन सभी पादपों एवं जीवों का

अध्ययन करती है जो उनकी विभिन्न गहराइयों में निवास करते हैं। समुद्री जीवों पर उनकी पर्यावरणीय दशाओं में होने वाले थोड़े से परिवर्तन का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। इनमें समुद्री जल की लवणता की मात्रा में होने वाला परिवर्तन सर्वाधिक प्रभावकारी होता है। महासागरों में पाये जाने वाले कुछ ऐसे भी जीव हैं जो समुद्री जल के संघटन में परिवर्तन ला देते हैं। प्लवकों तथा मछलियों की प्रकृति तथा उनकी पारिस्थितिकी का जैव समुद्र विज्ञान में विशेष अध्ययन किया जाता है। महासागरों को विश्व की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये भावी भोजन - भंडार के रूप में देखा जाने लगा है। अतः जैव समुद्र विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है।

जैविक समुद्र विज्ञानी समुद्री जीवों की एक विस्तृत श्रृंखला का अध्ययन करते हैं जिसमे सूक्ष्म प्लवक से लेकर बड़े समुद्री स्तनधारियों तक का अध्ययन शामिल है। साथ ही साथ वे और विभिन्न समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों जैसे प्रवाल भित्तियों एवं गहन सागरीय नितल के पर्यावरण का भी अध्ययन करते हैं। मानव जन्य परिवर्तनों का समुद्री जीवों पर प्रभाव भी उनके अध्ययन का विषय क्षेत्र है।

जैविक समुद्र विज्ञान के कुछ प्रमुख अनुसंधान क्षेत्र निम्नानुसार हैं:

**समुद्री पारिस्थितिकी:** विभिन्न प्रजातियों और उनके पर्यावरण के बीच के संचार को समझना कि वे समुद्री पारिस्थितिक तंत्र के निर्माण में किस प्रकार योगदान करते हैं।

**फाइटोप्लांकटन पारिस्थितिकी:** फाइटोप्लांकटन पारिस्थितिकी, सागरीय जैविक समुदायों की गतिशीलता और वैश्विक कार्बन चक्र में उनकी भूमिका का अध्ययन करता है।

**ज़ूप्लांकटन पारिस्थितिकी**: जूप्लांकटन पारिस्थितिकी में समुद्री प्रजातियों के वितरण और व्यवहार की जांच करना, तथा समुद्री खाद्य तंत्र में उनकी भूमिका का वर्णन शामिल हैं।

**समुद्री जैवभूरसायन:** इसके विषय क्षेत्र में समुद्र में रासायनिक चक्रों की जांच करना और वे जैविक प्रक्रियाओंकोकैसे प्रभावित करते हैं का अध्ययन शामिल है।

**समुद्री संरक्षण:** समुद्री पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता की रक्षा और संरक्षण के लिए रणनीति विकसित करना।

जैविक समुद्र विज्ञान अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि समुद्र, पृथ्वी की जलवायु को विनियमित करने और हमारे ग्रह पर जीवन का समर्थन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समुद्र में होने वाली जैविक प्रक्रियाओं और अंतःक्रियाओं को समझकर, हम भावी पीढ़ियों के लिए अपने समुद्री संसाधनों का बेहतर प्रबंधन और सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

### 2.2.6 समुद्री मौसम विज्ञान (Marine Meteorology)

समुद्र विज्ञान तथा मौसम विज्ञान में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि समुद्री मौसम विज्ञान का एक स्वतंत्र विषय के रूप में विकास हुआ। महासागरों और वायुमण्डल के मध्य होने वाली अन्तर्क्रियाओं से दोनों ही प्रभावित होते हैं। महासागरों के ऊपर वायुमण्डलीय दाब, तापमान तथा वायुमण्डलीय परिसंचरण आदि का निश्चित प्रभाव पड़ता है। समुद्री मौसम विज्ञान वायुमण्डल एवं महासागरों के अन्तरापृष्ठ (interface) पर ऊष्मा के आदान-प्रदान, वायु दाब तथा पवन प्रणालियों के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करता है। वास्तव में मौसम तथा जलवायु के तत्वों का महासागरों पर अनिवार्य रूप से बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। किसी प्रदेश की जलवायु पर महासागरों के प्रभाव से सभी भलीभांति परिचित हैं। इस प्रकार जलवायु शास्त्र और समुद्र विज्ञान में भी निकट का सम्बन्ध है। समुद्र विज्ञान की यह शाखा समुद्रों पर तापमान एवं वायुदाब के वितरण तथा उस पर चलने वाले पवनों का अध्ययन करता है जिससे महासागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक गुणधर्मों का निर्धारण होता है तथा महासागरों में जीव जगत का निर्माण होता है।

समुद्री मौसम विज्ञान का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि मौसम और समुद्र की स्थिति मानव जीवन और पर्यावरण के कई पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है। उदाहरण के लिए, समुद्री मौसम विज्ञानी मौसम के पैटर्न और महासागरीय धाराओं की भविष्यवाणी करने में मदद करते हैं, जो शिपिंग, मछली पकड़ने और अपतटीय तेल ड्रिलिंग कार्यों को प्रभावित कर सकते हैं। वे चरम मौसमी घटनाओं, जैसे तूफान और सूनामी की भविष्यवाणी करने और इन घटनाओं के लिए प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पूर्वानुमान के अलावा, समुद्री मौसम विज्ञानी महासागरों में जलवायु परिवर्तन के दीर्घकालिक रुझानों और पैटर्न का भी अध्ययन करते हैं। वे समुद्र के तापमान, लवणता और परिसंचरण के साथ-साथ इन

कारकों को प्रभावित करने वाली वायुमंडलीय स्थितियों की निगरानी करते हैं। इस जानकारी का उपयोग समुद्री पारिस्थितिक तंत्र पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने और इसके प्रभावों को कम करने की रणनीति विकसित करने के लिए किया जाता है।

समुद्री मौसम विज्ञान, मौसम विज्ञान की एक विशेष शाखा है जो महासागरों और तटीय क्षेत्रों के मौसम और जलवायु पर केंद्रित है । समुद्री मौसम विज्ञानी वायुमंडल-महासागर प्रणाली का अध्ययन करने के लिए विभिन्न उपकरणों और तकनीकों का उपयोग करते हैं, जिनमें कंप्यूटर मॉडल, उपग्रह डेटा, बोया, जहाज और विमान शामिल हैं ।

### 2.2.7 पर्यावरण समुद्र विज्ञान (Environmental Oceanography)

पर्यावरण समुद्र विज्ञान समुद्र विज्ञान का एक उपक्षेत्र है जो समुद्र और पर्यावरण के बीच की अंत:क्रिया के अध्ययन पर केंद्रित है। इसमें समुद्र में होने वाली भौतिक, रासायनिक, जैविक और भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और पर्यावरण पर उनके प्रभाव से संबंधित कई विषयों को शामिल किया गया है।

पर्यावरण समुद्र विज्ञान के अंतर्गत मनुष्य एवं सागरीय पर्यावरण के बीच अंतर्क्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न सागरीय प्रदूषण तथा उनके निवारण के उपायों का अध्ययन किया जाता है । विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों को लेकर मनुष्य की सागरों में उपस्थिति दिनोदिन बढती जा रही है, जिसके कारण अनेक प्रकार की पर्यावरण सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो रही है सागरीय संसाधनों के विदोहन के लिए विभिन्न राष्ट्रों, व्यापारिक संगठनों, एवम् व्यक्तियों में होड़ लगी है जिस कारण सागरीय पारिस्थितिकीय असंतुलन हो रहा है । स्पष्ट है कि वर्तमान समय में पर्यावरण समुद्र भूगोल का महत्त्व बढ़ता जा रहा है ।

पर्यावरणीय समुद्र विज्ञान भी समुद्री संसाधनों के प्रबंधन और संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समुद्री प्रजातियों के वितरण और प्रचुरता के साथ-साथ उनके अस्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करके, पर्यावरण समुद्र विज्ञानी स्थायी मछली पकड़ने और जलीय कृषि प्रथाओं के लिए रणनीति विकसित कर सकते हैं ।

### 2.2.8 अनुप्रयुक्त समुद्र विज्ञान (Applied Oceanography)

अनुप्रयुक्त समुद्र विज्ञान मुख्यतया समुद्र विज्ञान के सैद्धांतिक ज्ञान का उपयोग करके वास्तविक जीवन की समस्याओं के हल से सम्बद्ध है। इसमें महासागर इंजीनियरिंग, समुद्री संसाधन प्रबंधन, तटीय क्षेत्र प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में वास्तविक दुनिया की समस्याओं का समाधान करने के लिए समुद्र संबंधी ज्ञान, उपकरण और तकनीकों का अनुप्रयोग शामिल है।

अनुप्रयुक्त समुद्र विज्ञान को भौतिक समुद्र विज्ञान, जैविक समुद्र विज्ञान, रासायनिक समुद्र विज्ञान, भूवैज्ञानिक समुद्र विज्ञान और महासागर इंजीनियरिंग सहित कई उपक्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक उपक्षेत्र के अपने उपकरण और तकनीकें हैं जिनका उपयोग समुद्र में मानव गतिविधियों से संबंधित विशिष्ट समस्याओं को हल करने के लिए किया जा सकता है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अप्रत्याशित विकास के फलस्वरूप समुद्र विज्ञान में नये आयाम जुड़ते जा रहे हैं। भू-राजनीतिक एवं सामरिक दृष्टि से महासागरों का महत्व आज बहुत बढ़ गया है। आर्थिक दृष्टि से महासागरों का नये सिरे से पुनर्मूल्यांकन किया जाने लगा है। जैसा कि हमें ज्ञात है, स्थल खण्डों के खनिज भण्डारों का भरपूर दोहन हो चुका है। कोयला तथा खनिज तेल के विशाल भण्डार लगभग समाप्तप्राय हैं। उनकी संचित राशि का क्रमशः क्षय होता जा रहा है। अन्यान्य खनिज भण्डारों में होने वाली कमी आज चिन्ता का विषय है। इसी प्रकार विश्व की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या हेतु पोषण की समस्या विकट से विकटतर होती जा रही है। ऐसी विषम परिस्थिति में मानवमात्र के लिए महासागर ही आशा के एकमात्र केन्द्र हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार महासागरों से सभी प्रकार के खनिजों को प्राप्त किया जा सकता है। इनसे प्रोटीन की अपेक्षित मात्रा उपलब्ध की जा सकती है। ज्वारीय तरंगों से जलविद्युत् उत्पादन की विशाल सम्भावनायें पायी जाती हैं। कम्प्यूटर तथा कृत्रिम उपग्रहों के प्रयोग ने समुद्र विज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये हैं। आशा है कि निकट भविष्य में महासागरों से अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुयें प्राप्त की जा सकेंगी।

## 2.3 समुद्र विज्ञान तथा उस से सम्बंधित अन्य विषय (Oceanography and other related subjects)

समुद्र विज्ञान में शामिल कुछ विषयों में समुद्र की धाराएं, लहरें, ज्वार, समुद्र का स्तर, समुद्री पारिस्थितिकी, समुद्री जीव विज्ञान, समुद्री भूविज्ञान और समुद्री रसायन शामिल हैं। महासागर और वातावरण, भूमि और जीवमंडल के साथ इसकी बातचीत का अध्ययन करने के लिए समुद्र विज्ञानी उपकरणों और तकनीकों की एक श्रृंखला का उपयोग करते हैं, जैसे कि उपग्रह, प्लव, जहाज और पानी के नीचे के रोबोट।

समुद्र विज्ञान अध्ययन का एक अंतःविषयक क्षेत्र है जिसमें महासागरों की जटिल और गतिशील प्रकृति को समझने के लिए विभिन्न वैज्ञानिक विषयों से ज्ञान का अनुप्रयोग शामिल है । समुद्र विज्ञान का कई अन्य विज्ञानों से घनिष्ट सम्बन्ध है । भूविज्ञान, मौसम विज्ञान, जीव विज्ञान, भू-भौतिकी, भौतिक शास्त्र, जलवायु विज्ञान तथा द्रवगति विज्ञान आदि वैज्ञानिक विषयों की उपलब्धियों से समुद्र विज्ञान पोषित होता है। दूसरी ओर समुद्र विज्ञान से उपलब्ध ज्ञान उपर्युक्त विषयों के लिये सहायक सिद्ध होता है । समुद्र विज्ञानं से सम्बंधित कुछ विषयों की चर्चा यहाँ की जा रही है ।

- **भूविज्ञान** पृथ्वी के संघटन, संरचना एवं उसकी उत्पत्ति के इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन है । इसकी दो प्रमुख शाखायें हैं: (i) गत्यात्मक भूविज्ञान तथा (ii) ऐतिहासिक भूविज्ञान । महासागरों की बेसिनों के संघटन, संरचना एवं उनकी उत्पत्ति के अध्ययन के लिये भूवैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकों से सहायता ली जाती है।
- **भौतिकी:** समुद्र विज्ञान भौतिक विज्ञान से निकटता से संबंधित है क्योंकि यह महासागरों के भौतिक गुणों और प्रक्रियाओं से संबंधित है। भौतिक समुद्र विज्ञानी समुद्र का अध्ययन करने के लिए भौतिकी के सिद्धांतों का उपयोग करते हैं, जैसे कि गति के नियम, द्रव गतिकी और ऊष्मप्रवैगिकी। उदाहरण के लिए, भौतिक समुद्र विज्ञानी समुद्र की धाराओं और लहरों का अध्ययन करते हैं, जो हवा, गुरुत्वाकर्षण और पृथ्वी के घूमने जैसी ताकतों के जवाब में पानी की गति से संचालित होती हैं। वे महासागरों के परिसंचरण पैटर्न का भी अध्ययन करते हैं, जो तापमान, लवणता और घनत्व जैसे कारकों से प्रभावित होते हैं।
- **भूभौतिकी तथा गणित:** भूभौतिकी तथा गणितीय सिद्धान्तों एवं मॉडलों के द्वारा महासागरों के नितल पर गुरुत्व-प्रेक्षण, भूकम्पीय तरंगों की प्रकृति तथा उनके सम्बन्ध में अन्य तकनीकी

जानकारी, नितल के अधोभाग में आन्तरिक ऊष्मा के प्रवाह तथा संवहन धाराओं आदि का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक समुद्र विज्ञान में महासागरों से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों तथा घटनाओं के विश्लेषण के लिये भूभौतिकी तथा गणितीय मॉडलों का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है।

- **मौसम विज्ञान** (Meteorology ) महासागरों के ऊपर वायुमण्डल के प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। महासागर एवं वायुमण्डल की अन्तर्क्रिया के द्वारा समुद्र विज्ञान एवं मौसम विज्ञान के पारस्परिक मम्बन्धों की घनिष्ठता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।
- **रसायन विज्ञान:** समुद्र विज्ञान रसायन विज्ञान से संबंधित है क्योंकि इसमें समुद्री जल की रासायनिक संरचना और इसके गुणों को नियंत्रित करने वाली प्रक्रियाओं का अध्ययन शामिल है। रासायनिक समुद्र विज्ञानी समुद्र का अध्ययन करने के लिए रसायन विज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग करते हैं, जैसे कि रासायनिक प्रतिक्रियाएँ, घुलनशीलता और अम्ल-क्षार संतुलन। उदाहरण के लिए, रासायनिक समुद्र विज्ञानी समुद्र में कार्बन चक्र का अध्ययन करते हैं, जिसमें वातावरण और समुद्र के बीच कार्बन डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है, और समुद्री जीवों द्वारा कार्बन को कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित किया जाता है। वे समुद्र में पोषक तत्वों और प्रदूषकों के वितरण और व्यवहार का भी अध्ययन करते हैं।
- **जीव विज्ञान**: समुद्र विज्ञान जीव विज्ञान से संबंधित है क्योंकि इसमें समुद्री जीवन का अध्ययन शामिल है। जैविक समुद्र विज्ञानी समुद्री जीवों के वितरण, विविधता और बहुतायत, उनके पारिस्थितिक संबंधों और समुद्री पारिस्थितिक तंत्र पर मानव गतिविधियों के प्रभाव का अध्ययन करते हैं। उदाहरण के लिए, वे समुद्र में खाद्य जालों और पोषक चक्रों का अध्ययन करते हैं, जिसमें एक जीव से दूसरे जीव में ऊर्जा और पोषक तत्वों का स्थानांतरण शामिल होता है। वे समुद्री जीवों, जैसे प्रवाल भित्तियों और फाइटोप्लांकटन पर जलवायु परिवर्तन और समुद्र के अम्लीकरण के प्रभावों का भी अध्ययन करते हैं।
- **अभियांत्रिकी:** समुद्र विज्ञान इंजीनियरिंग से संबंधित है क्योंकि इसमें समुद्र विज्ञान अनुसंधान के लिए उपकरणों और उपकरणों का डिजाइन और उपयोग शामिल है। इंजीनियर तापमान, लवणता

और दबाव जैसे समुद्र के गुणों को मापने और समुद्री जल, तलछट और समुद्री जीवन के नमूने एकत्र करने के लिए उपकरणों को डिजाइन और विकसित करते हैं। वे गहरे समुद्र की खोज के लिए वाहनों को डिजाइन और संचालित भी करते हैं, जैसे दूर से संचालित वाहन (आरओवी) और स्वायत्त पानी के नीचे वाहन (एयूवी)। इसके अलावा, वे महासागरों और पृथ्वी की जलवायु प्रणाली के व्यवहार और अंतःक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए मॉडल और सिमुलेशन विकसित करते हैं।

## 2.4 सारांश

समुद्र विज्ञान की पाठ्यसामग्री अंतर्विषयक तथा बहुविषयक है। यह भौतिक-विज्ञान, गणित तथा जीव विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से अध्ययन सामग्री प्राप्त करता है। साथ ही साथ भौतिक भूगोल की समस्त शाखाओं से यह अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। आज समुद्र पर मानव के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण अनुप्रयुक्त समुद्र विज्ञान का महत्व कई गुना बढ़ गया है।

## अभ्यास प्रश्न

1. समुद्र विज्ञान की शाखाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
2. भौतिक समुद्र विज्ञान की विषय सामग्री तथा उसके महत्व को रेखांकित कीजिये।
3. जैव समुद्र विज्ञान की विषय सामग्री तथा उसके महत्व का वर्णन कीजिये।
4. किस कारण से अनुप्रयुक्त समुद्र विज्ञान की महत्ता पिछले कुछ दशको में लगातार बढ़ी है।
5. समुद्र विज्ञान से सम्बंधित अन्य विषयों का वर्णन कीजिये।

## सन्दर्भ ग्रन्थ


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.
- के. सिद्धार्थ (2018). ओसेनोग्राफी, किताब महल, नई दिल्ली.


## इन्टरनेट स्रोत

1. https://education.nationalgeographic.org/resource/oceanography/
(13/03/2023 को रिट्रीव किया गया)
2. https://www.britannica.com/science/oceanography

(07/04/2023 को रिट्रीव किया गया)

# इकाई 3

# महासागरों के नितल का उच्चावच

## इकाई की रूपरेखा


3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 महासागरीय नितल तथा उच्चतादर्शी वक्र
3.3 महासागरीय नितल का वर्गीकरण
3.3.1 महाद्वीपों से बढती दूरी के आधार पर वर्गीकरण
3.3.1 महासागरीय नितल की गहराई के आधार पर वर्गीकरण
3.4 महाद्वीपीय उपान्त
3.5 महाद्वीपीय मग्नतट
3.5.1 मग्न तटों की उत्पत्ति
3.5.2 भारत के मग्नतट
3.5.3 भारतीय मग्नतटों की उत्पत्ति
3.6 महाद्वीपीय मग्न ढाल
3.7 अन्तःसमुद्री कैनियन अथवा कन्दरायें
3.7.1 भारत के कैनियन
3.7.2 अन्तः सागरीय कन्दराओं की उत्पत्ति
3.7.2.1 भू- पृष्ठीय अपरदन सिद्धान्त
3.7.2.2 पटल विरूपण सिद्धान्त
3.7.2.3 पंकिल तरंगों का सिद्धान्त
3.7.2.4 अन्तःसमुद्री घनत्व धारायें सिद्धांत
3.8 गंभीर सागर पंख तथा महाद्वीपीय उभार
3.9 गभीर महासागरीय बेसिन तथा सम्बन्धित आकृतियाँ
3.9.1 गहन सागरीय मैदान
3.9.2 वितलीय पहाड़ियाँ
3.10 महासागरीय गर्त
3.11 मध्य महासागरीय कटक
3.12 सारांश
अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 3

# महासागरों के नितल का उच्चावच

---

### 3.0 प्रस्तावना

ग्लोब के लगभग तीन चौथाई भाग पर जलमण्डल का विस्तार पाया जाता है। समस्त ग्लोब का क्षेत्रफल 50.995 करोड़ वर्ग किलोमीटर है, जिसके 36.106 करोड़ वर्ग किमी० क्षेत्रफल (71%) पर जलमण्डल का तथा 14.889 करोड़ वर्ग किमी० (29%) पर स्थलमण्डल का विस्तार पाया जाता है। स्थलमण्डल के समान ही जलमण्डल में उच्चावच्च मिलते हैं। वर्तमान शताब्दी में मानव को महासागरों के नितल के उच्चावच के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त करने में सफलता मिली है। किन्तु इस शताब्दी के प्रथम दो दशकों में अन्तःसमुद्री स्थलाकृतियों (submarine topography) के बारे में हमें बहुत कम मालूम था। केवल उन उथले भागों की ही जानकारी प्राप्त की गयी थी जिनका नौका संचालन की दृष्टि से महत्व था। गहराई नापने का ढंग इतना सामान्य था कि 6000 मीटर की गहराई वाले समुद्र में एक बार के मापन कार्य में कई घण्टे का समय नष्ट हो जाया करता था। किन्तु सन् 1920 से ध्वनिक गभीरता मापी यन्त्र (sonic sounding equipment) का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, जिससे तीव्रगामी जहाजों पर सवार होकर गहरे समुद्रों में साउंडिंग लेने का कार्य अत्यन्त कम समय (कुछ मिनटों) में सम्भव हो गया। आजकल अत्याधुनिक गंभीरता मापी यन्त्रों से गहरे समुद्रों के नितल के सम्बन्ध में सुगमतापूर्वक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। इस प्रकार महासागरों तथा समुद्रों के नितल के उच्चावच के सम्बन्ध में हमारी धारणा में आमूल परिवर्तन हो गया है। महासागरों के नितल पर असंख्य द्रोणियों, कटकों, बेसिनों तथा पर्वत शिखरों आदि का पता चला हैं। महासागरों के कुछ भागों में नितल की स्थलाकृतियाँ पर्वतीय क्षेत्रों के समान अत्यधिक ऊबड़-खाबड़ (rugged) हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नितल के उच्चावच के विस्तृत ज्ञान से समुद्र विज्ञान की अनेक समस्याओं के समाधान में बड़ी सहायता मिली है।

### 3.1 उद्देश्य

द्वितीय इकाई “महासागरीय नितल का उच्चावच” के अध्ययन के उपरांत आप:

1. उच्चतादर्शी  वक्र की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
2. महासागरों के नितल की उच्चावच का वर्णन कर सकेंगे।
3. विभिन्न प्रकार के महासागरीय उच्चावचों की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे|

## 3.2 महासागरीय नितल तथा उच्चतादर्शी वक्र (Oceanic Basin and Hypsometric Curve)

स्थल खण्ड की ऊँचाइयों तथा महासागरों की गहराइयों के आँकड़ों को लेकर उच्चातादर्शी आरेख (Hypsographic or Hypsometric graph) तैयार किया जाता है। इसमें क्षेत्रफल क्षैतिज रेखा के सहारे तथा समुद्र तल से विभिन्न ऊँचाइयों तथा गहराइयों को खड़ी रेखा (vertical line) के सहारे प्रदर्शित किया जाता है। इस आरेख पर जिस वक्र (curve) का निर्माण होता है, उसे उच्चतादर्शी अथवा हिप्सोमितीय वक्र की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस वक्र के द्वारा स्थल खण्डों के उच्चतम भागों से लेकर महासागरों के नितल के सर्वाधिक गहरे भागों तक के ढाल को दर्शाया जाता है। यदि इस वक्र का अवलोकन करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि महासागरों के अधस्तल को स्थूल रूप से 4 भागों, महाद्वीपीय मग्र तट (continental shelf), महाद्वीपीय मग्न ढाल (continental slope), गहरे समुद्री मैदान (deep-sea plains) एवं महासागरीय गर्त (oceanic deeps) में विभक्त किया जा सकता है।

## 3.3 महासागरीय नितल का वर्गीकरण

विभिन्न गहराई मण्डलों तथा अन्तः सागरीय आकृतियों वाले महासागरीय प्रदेशों को विभिन्न समुद्र वैज्ञानिकों तथा विद्वानों ने अलग-अलग रूपों में विभाजित किया है, यथा:

**3.3.1 महाद्वीपों से बढ़ती दूरी के आधार पर महासागरीय नितल** (ocean floors) को एच० वी० थर्मन तथा ए० पी० टुजिलों (1999) ने महाद्वीपों से बढ़ती दूरी के आधार पर  महासागरीय उच्चावच को 3 प्रमुख प्रदेशों (provinces) में विभाजित किया है, यथा :

- महाद्वीपीय उपान्त (continental margin) : महाद्वीपों से सटे छिछले सागरीय क्षेत्र, यथा: महाद्वीपीय मग्नतट तथा महाद्वीपीय ढाल।
- गहन महासागरीय बेसिन: महाद्वीपीय उपान्त से दूर गहरे सागरीय जल का मण्डल।

- मध्य महासागरीय कटक (mid-ocean ridge) : महासागरों के मध्य में अपेक्षाकृत कम गहराई वाला सागरीय क्षेत्र।

उल्लेखनीय है कि महासागरीय नितल के उपर्युक्त 3 सागरीय प्रदेशों में अन्तः सागरीय उच्चावच यथा: महासागर गंभीर ( ocean deeps) तथा महासागरीय खड्ड ( ocean trenches) भी सम्मिलित हैं।

**3.3.2 महासागरीय तली ( ocean floors) के गहराई मण्डलों के परम्परागत वर्गीकरण** के अन्तर्गत महासागरीय उच्चावच में निम्न 4 सागरीय प्रदेशों को सम्मिलित किया जाता है :

- महाद्वीपीय मग्नतट (continental shelves)
- महाद्वीपीय ढाल
- गहरे सागर मैदान
- महासागरीय खड्ड

(3) यदि थर्मन तथा टुजिलों के उपर्युक्त सागरीय प्रदेशों तथा परम्परागत वर्गीकरण को आपस में मिला दिया जाय तो महासागरीय उच्चावच के प्रमुख भाग निम्नानुसार निर्धारित किये जा सकते है:

- महाद्वीपीय उपांत
- महाद्वीपीय मग्न तट
- अन्तः सागरीय कैनियन तथा कंदराए
- गभीर सागरीय पंख तथा महाद्वीपीय उभार
- गभीर सागरीय बेसिन तथा सम्बंधित स्थालाकृतियाँ (गभीर सागरीय मैदान एवं वितलीय पहाड़ियाँ)
- महासागरीय गर्त
- मध्य महासागरीय कटक

### 3.4 महाद्वीपीय उपान्त (Continental Margins)

महाद्वीपीय उपान्त महाद्वीपों यानी स्थल की सागर की ओर सीमा को प्रदर्शित करता है। वास्तव में महाद्वीपीय उपान्त छिछले सागरीय प्लेट सीमा को दर्शाता है। थर्मन तथा टुजिलो (1999) ने महाद्वीपीय मग्नतट, महाद्वीपीय ढाल, शेल्फ ब्रेक तथा महाद्वीपीय उभार (rise) को महाद्वीपीय उपान्त के अन्तर्गत एकल महासागरीय क्षेत्र के रूप में सम्मिलित किया है परन्तु ये तीनों आकृतियाँ एक-दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि उन्हें एक साथ एकल इकाई के रूप में नहीं लिया जा सकता। जहां तक भौमिकीय बनावट (geological formations) का सम्बन्ध है, महाद्वीपीय मग्नतट, महाद्वीपीय ढाल तथा महाद्वीपीय उभार एक इकाई ही हैं क्योंकि इन तीनों आकृतियों का निर्माण महाद्वीपीय शैलों (ग्रेनाइट) से हुआ है जबकि महासागरीय तली का निर्माण बेसाल्ट से हुआ है। इस आधार पर थर्मन तथा टुजिलों द्वारा इन तीनों आकृतियों का एकल इकाई में रखा जाना सही लगता है। परन्तु महाद्वीपीय ढालों पर अन्तः सागरीय कैनियन (subma rine canyons) की स्थिति के कारण महाद्वीपीय मग्न ढाल निश्चित रूप से एक स्वतंत्र सागरीय प्रदेश की हैसियत रखता है। महाद्वीपीय उपान्त को सामान्य रूप से निम्न 2 प्रकारों में विभाजित किया जाता है:

- सक्रिय महाद्वीपीय उपान्त (active continental margins)
  - I. रूपान्तर (transform) सक्रिय महाद्वीपीय उपान्त
  - II. अभिसरणी (convergent) महाद्वीपीय उपान्त।
- निष्क्रिय महाद्वीपीय उपान्त (passive continental margins)

  सक्रिय महाद्वीपीय उपान्त स्थलीय या महाद्वीपीय प्लेट सीमा को प्रदर्शित करता है जिसके सहारे विवर्तनिक क्रियायें (tectonic activities) होती रहती हैं, यथा: भ्रंशन एवं वलन (faulting, folding) की क्रियायें, जिस कारण वलित पर्वतों का निर्माण होता है, ज्वालामुखी क्रियायें तथा भूकम्पीय घटनायें आदि होती रहती हैं। दूसरी तरफ निष्क्रिय महाद्वीपीय उपान्त के सहारे कोई विशेष विवर्तनिक क्रिया नहीं होती है।

महाद्वीपीय उपान्त के अन्तर्गत अन्तिम रूप से, निम्न महासागरीय इकाइयों को सम्मिलित किया जाता है-

I. महाद्वीपीय मग्नतट

II. महाद्वीपीय ढाल

III. शेल्फ ब्रेक

IV. महाद्वीपीय उभार

### 3.5 महाद्वीपीय मग्नतट (Continental Shelf)

महाद्वीपों के किनारे, जो समुद्र के जल में डूबे रहते हैं, महाद्वीपीय मग्न तट कहे जाते हैं। थर्मन तथा ट्रुजिलों (1999) के अनुसार " महासागरीय तट रेखा ( shore line) से सागरीय सतह के नीचे उस बिन्दु तक, जहां से ढाल कोण में तेजी से वृद्धि होती है, विस्तृत शेल्फ के समान मण्डल को महाद्वीपीय मग्नतट कहते हैं। इस बिन्दु को शेल्फ ब्रेक कहते हैं। शेल्फ ब्रेक के आगे सागरवर्ती तीव्र ढाल वाले सागरीय मण्डल को महासागरीय ढाल कहते हैं।"

वास्तव में महाद्वीपों के किनारे वाले उस भाग, जो महासागरीय जल में डूबा रहता है, उस पर जल की औसत गहराई 100 फैदम (एक फैदम = 6 फीट) होती है तथा ढाल 1° से 3° के बीच होता है, को महाद्वीपीय मग्नतट कहते हैं। किन्तु तट की प्रकृति तथा उससे संलग्न महाद्वीपीय चबूतरे की बनावट में विभिन्नता के फलस्वरूप ढाल में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, जिन क्षेत्रों में समुद्र-तट पर पर्वत अथवा पठार होते हैं, वहाँ मग्न तटों का ढाल अपेक्षाकृत अधिक होता है। महाद्वीपीय मग्नतटों की चौड़ाई तटीय भागों के स्थानीय तथा प्रादेशिक उच्चावचों पर निर्भर करती है। जहाँ पर तट से लगे उच्च पर्वतीय भाग होते हैं वहां पर मग्नतट संकरे होते हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिणी अमेरिका का प्रशान्त महासागरीय मग्नतट एण्डीज पर्वत के कारण संकरा हो गया है। जहाँ पर स्थलीय तटवर्ती भाग मैदानी भाग है, वहाँ पर मग्नतट अधिक विस्तृत देखे गये हैं। नदियों के मुहानों के सामने अधिकतर मग्नतट चौड़े तथा विस्तृत होते हैं परन्तु मिसीसिपी नदी के मुहाने पर मग्नतट अपवादस्वरूप संकरा है।

महाद्वीपीय मग्र तटों की औसत चौड़ाई 48 किलोमीटर मानी गई है। किन्तु वास्तव में इनकी चौड़ाई शून्य से 1280 किलोमीटर तक पायी जाती है। शेपर्ड महोदय ने मग्नतटों की औसत चौड़ाई 42 मील (67.20 किमी०) तथा गहराई 72 फैदम बतायी है। दक्षिणी अमेरिका का प्रशान्त महासागरीय मग्नतट 10 मील (16 किमी०), उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट पर 60-75 मील (96 - 120 किमी०), पूर्वी द्वीपसमूह में कई सौ मील, आर्कटिक सागर में 100 से 300 मील (160 से 480 किमी०) चौड़े मग्नतट मिलते हैं। इसी तरह चीन सागर, एड्रियाटिक सागर, अराफुरा सागर आदि में चौड़े मग्नतट मिलते हैं। महासागरों तथा समुद्रों के कुल क्षेत्रफल के 7.6 प्रतिशत भाग पर महाद्वीपीय मग्न तट का विस्तार है। अटलांटिक

महासागर  के 13.3%, प्रशान्त महासागर के 5.7%, तथा हिन्द महासागर के 4.2% भाग पर  महाद्वीपीय मग्न तट का विस्तार है। महाद्वीपीय मग्न तटों का कुल क्षेत्रफल लगभग 30 मिलियन वर्ग किलोमीटर है। स्मरणीय है कि महाद्वीपीय मग्न तटों के क्षेत्र मानव के लिये महासागरों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग हैं। इन तटों पर समुद्र का जल छिछला होता है, जिससे प्रकाश इनके नितल तक प्रवेश कर जाता है। इसके अतिरिक्त, महाद्वीपों से अनेक प्रकार के पोषक तत्व नदियों द्वारा बहाकर यहाँ लाये जाते हैं। इन कारणों से इस क्षेत्र में वनस्पतियों तथा समुद्री जीवों को विकसित होने का पूरा अवसर मिलता है। इसीलिये महाद्वीपीय मग्न तटों के उथले जल में मछलियों की भारी मात्रा उपलब्ध होती है।

### 3.5.1 मग्न तटों की उत्पत्ति (Origin of Continental Shelf)

मग्नतटों की बनावट, प्राकृति, विस्तार, सागरीय जल की गहराई आदि में इतनी विभिन्नता मिलती है कि एकल प्रक्रिया द्वारा इसकी उत्पत्ति की व्याख्या करना कठिन कार्य है। मग्र तटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किये हैं, इनमें से निम्न मतों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है:

1. मग्नतट सागरीय अपरदन तथा जलीय निक्षेप के परिणाम हैं:

महाद्वीपीय मग्नतट, महाद्वीपीय चबूतरे का सागर की ओर निकला हुआ भाग होता है। सागरीय तरंगें अपरदन द्वारा विस्तृत प्लेटफार्म का निर्माण करती हैं, जिस पर नदियों तथा तरंगों द्वारा निक्षेप होने लगता है। ये निक्षेप निरन्तर सघन तथा ठोस होते जाते हैं और अन्ततः मग्नतट का निर्माण हो जाता है। इस तरह से बने मग्नतट अधिक विस्तृत नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार महाद्वीपीय मग्नतटों का निर्माण निम्न 2 प्रक्रियाओं द्वारा होता है:

- सागरीय अपरदन
- जलीय निक्षेप

2. मग्नतटों का निर्माण स्थलीय जलीय जमाव द्वारा होता है :

कुछ विद्वानों के अनुसार मग्नतटों का निर्माण मात्र नदियों द्वारा लम्बे समय तक निक्षेप होते रहने से होता है। जिस भाग में सागरीय दशायें शांत होती है, निक्षेप अबाध गति से चलता रहता है, मलवा के भार के कारण मग्नतट की तली धँसती जाती है और उस पर और अधिक मलवा जमा होता रहता है। इस तरह के निर्मित मग्नतट रचनात्मक कहे जाते हैं तथा विस्तृत होते हैं।

3. मग्नतट महाद्वीपीय उपान्त (margin) के अवतलन के परिणाम हैं:

महाद्वीपों तथा महासागरी तली से उठने वाली संवहन तरंगें महाद्वीपों तथा महासागरों के मिलन स्थान पर मिलकर नीचे की ओर चलती हैं। इस कारण सम्पीडन होने से महाद्वीपीय किनारा अवतलित हो जाता है और मग्नतट का निर्माण होता है।

4. मग्नतटों का निर्माण महाद्वीपीय उपान्त के भ्रंशन तथा उससे जनित अवलतन से होता है :

कभी-कभी महाद्वीपों के किनारों पर समान्तर भ्रंशन की क्रिया होती है, जिस कारण लम्बी-लम्बी दरारें पड़ जाती हैं, परिणामस्वरूप महाद्वीपीय किनारे का भाग धँसक जाता है तथा जलमग्न होकर मग्नतट का रूप धारण करता है। सोपानी भ्रंशन द्वारा भी बने मग्नतट के उदाहरण देखने को मिलते हैं। इस तरह के मग्नतटों को विर्तनिक मग्नतट कहते हैं।

5. मग्नतटों का निर्माण हिमानी नियंत्रण तथा सागरीय अपरदन द्वारा होता है :

सागर तल में गिरावट के कारण अपरदन से बने मग्नतटों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। डेली महोदय के अनुसार प्लीस्टोसीन युग में हिमकाल के समय सागरतल में 38 फैदम की गिरावट हो गयी, परिणामस्वरूप महाद्वीपों के किनारे के सहारे स्थल जलमुक्त हो गये, जिन पर हिमानी अपरदन के कारण विस्तृत चबूतरों का निर्माण हो गया। जब हिम चादरें पिघलने लगीं तथा हिमकाल का अवसान होने लगा तो सागर तल पुन: ऊपर उठ गया, जिस कारण स्थलीय चबूतरे जलमग्न हो गये और विस्तृत जलमग्न तटों का विकास हो गया।

6. मग्नतटों का निर्माण क्लिफ अपरदन, क्लिफ निवर्तन (recession) तथा तरंगघर्षित प्लेटफार्म के जलमज्जन द्वारा होता है :

कुछ विद्वानों के अनुसार जहाँ पर सागरीय तरंगें अधिक वेगवती तथा सक्रिय होती है, वहाँ पर तटीय भाग का अपघर्षण द्वारा विधिवत् अपरदन होता है जिस कारण तट पर क्लिफ का निर्माण होता है। धीरे-धीरे क्लिफ के आधार पर अपरदन बढ़ता जाता है, जिस कारण क्लिफ के आधार पर अधः कर्तन के कारण क्लिफ पीछे हटता जाता है, परिणामस्वरूप विस्तृत प्लेटफार्म का निर्माण होता जाता है, जिस पर सागरीय जल का प्रसार होता रहता है। इस तरह मग्नतट बन जाते हैं।

7. मग्नतटों का निर्माण झुकाव (tilting) द्वारा होता है :

कभी-कभी महाद्वीपीय भाग में सागर की ओर सामान्य झुकाव (tilting) के कारण धरातलीय भाग पर सागरीय जल के फैल जाने से भी मग्नतट बन जाते हैं।

### 3.5.2 भारत के मग्नतट

100 फैदम की समोच्च रेखा मग्नतट की सागर के ओर की अन्तिम सीमा निर्धारित करती है। पूर्वी तट पर मग्नतट की औसत चौड़ाई 50 किमी० है, जो कि पश्चिमी तट के मग्नतट की एक तिहाई ही है। स्पष्ट है कि पश्चिमी मग्नतट पूर्वी तट की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। गंगा, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों के मुहाने के सामने मग्नतट सबसे कम चौड़ा (30-35 किमी०) है, जबकि नर्मदा, तापी, माही आदि नदियों की इस्चुअरी के सामने मग्नतट सर्वाधिक चौड़ा है। पूर्वी मग्नतट का सामान्य ढाल 29° तथा प० मग्नतट का ढाल कन्याकुमारी के पास 10° तथा खम्भात की खाड़ी के पास 1° है।

### 3.5.3 भारतीय मग्नतटों की उत्पत्ति

भारत के मग्नतटों की उत्पत्ति विभिन्न स्थानों पर भिन्न- भिन्न रूपों में हुई है। गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियों के मुहाने के सामने मग्नतट का निर्माण डेल्टा जमाव के कारण हुआ है। मिदनापुर तक मग्नतट का निर्माण तलछटीय जमाव तथा धँसाव के कारण, अण्डमान निकोबार, लकादिव, मिनिकाय, अमीनदिव, श्रीलंका तथा भारत के मध्य पाक जलडमरूमध्य तथा मनार की खाड़ी के मग्नतट प्रवाल के जमाव के कारण तथा प० मग्नतट भ्रंशन के कारण बने हैं।

## 3.6 महाद्वीपीय मग्न ढाल (Continental Slope)

जलमग्न तट तथा गहरे सागरीय मैदान के बीच तीव्र ढाल वाले मण्डल को 'महाद्वीपीय मग्न ढाल' कहा जाता है, जिसका ढाल विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है। दूसरे शब्दों में महाद्वीपीय मग्र ढाल से ही महासागरों की गहराई में वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है। अधिकांश विद्वानों की राय में महाद्वीपीय मग्र तटों के समुद्री सिरे पर ही महाद्वीपीय चबूतरे (continental platform ) का अन्त होता है। इसके ढलान में मग्न तटों की अपेक्षा अधिक भिन्नता पायी जाती है। इसका औसत ढाल कोण 5° होता है, जो सेण्ट हेलना के सहारे 40°, स्पेन के पास 30°, सेण्ट पाल के निकट 62°, भारत के कालीकट तट के पास 50° कोण वाले ढाल पाये जाते हैं। समस्त सागरीय क्षेत्रफल के केवल 8.5 प्रतिशत भाग पर ही मग्न ढाल पाये जाते हैं। अटलांटिक महासागर में 12.4%, प्रशान्त महासागर में 7% तथा हिन्द महासागर में 6.5% भाग पर

मग्न ढाल का विस्तार पाया जाता है। मग्न ढालों पर सागरीय निक्षेप का अभाव रहता है, क्योंकि खड़े ढाल के कारण उन पर मलवा टिक नहीं पाता है । परन्तु उनके ऊपर हल्के पदार्थों का आवरण अवश्य देखने को मिलता है।

मग्र ढालों के उच्चावच की महत्वपूर्ण विशेषता यहाँ पाये जाने वाले कैनियन तथा गहरी खाइयाँ (trenches) हैं, जिनकी उत्पत्ति अत्यधिक विवादास्पद है । मग्नढाल के निर्माण के विषय में कुछ लोगों का कहना है कि इनकी उत्पत्ति सागरीय तरंगों द्वारा अपरदन के कारण होती है, जबकि अन्य लोगों के अनुसार इनका निर्माण विवर्तनिक कारणों (भ्रंशन) से होता है । भ्रंशन के समय मग्नढालों के ऊपर कुछ गहरी खाइयाँ तथा कन्दराएँ (trenches and submarine canyons) निर्मित हो जाती हैं । कुछ लोगों के अनुसार मग्न ढालों का निर्माण मग्नतट के मुड़ने तथा इन पर आगे चलकर मलवा के निक्षेप के कारण होता है, परन्तु प्रथम दो मतों की तुलना में यह अन्तिम मत तथ्यहीन लगता है । अन्तः सागरीय कैनियन (कन्दरा) तथा खडड् (trenches) महाद्वीपीय मग्नढालों पर पाये जाने वाले महत्वपूर्ण उच्चावच हैं । ये सामान्य तौर पर महाद्वीपीय मग्नतटों (continental shelves) की अनुप्रस्थ (transverse) दिशा में पाये जाते हैं। चूँकि अन्तः सागरीय कैनियन मग्न ढालों के महत्वपूर्ण उच्चावच हैं अतः उनका अलग से विशद विवेचन आवश्यक है।

### 3.7 अन्तःसमुद्री कैनियन अथवा कन्दरायें (Submarine Canyons)

महाद्वीपीय मग्नतट तथा मग्न ढाल पर संकरी, गहरी तथा खड़ी दीवार से युक्त घाटियों को महासागर के अन्दर होने के कारण अन्तः सागरीय कन्दराएँ या 'कैनियन' कहा जाता है । ये कन्दरायें स्थल पर निर्मित नदियों के कैनियन के समान होती हैं । सर्वप्रथम इनके अस्तित्व का पता लिन्डेनकोल (Lindenkohl) ने सन् 1885 में लगाया । उन्होंने पाया कि हडसन मग्न तट पर एक घाटी का विस्तार 160 किलोमीटर दूर स्थित मग्न ढाल तक है । तदुपरान्त सन् 1903 में स्पेन्सर नामक अमरीकी वैज्ञानिक ने अनेक ऐसे कैनियनों का पता लगाया । उनके द्वारा किये गए खोजों से पता चला कि महाद्वीपीय मग्न तट से 224 किमी की दूरी तक हडसन कैनियन का विस्तार है । कालान्तर कैनियन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये गए। निर्माणक प्रक्रम के आधार पर इनके दो प्रकार होते हैं।

- हिमानी द्वारा निर्मित कैनियन, तथा
- हिमानी के अलावा अन्य प्रक्रमों से निर्मित कैनियन।

अन्तः सागरीय कैनियन, कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः तट के लम्बवत् होते हैं तथा बड़ी-बड़ी नदियों के मुहाने के सामने पाये जाते हैं। स्थलीय तथा अन्तः सागरीय कैनियन की अनुप्रस्थ तथा अनुदैर्ध्य परिच्छेदिकाओं (longitudinal profiles) में कम ही अन्तर होता है। कैनियन के पार्श्व खड़े ढाल वाले होते हैं तथा शेपर्ड के अनुसार ये कन्दरायें स्थल पर नदी द्वारा निर्मित युवावस्था की घाटियों के समान होती हैं, परन्तु इनकी गहराई अधिक होती है। इन अन्तः सागरीय तथा स्थलीय कन्दराओं में से कुछ के पास वृक्षाकार सहायक घाटियाँ होती हैं। क्वनेन तथा क्रावेल के अनुसार अन्त:सागरीय तथा स्थलीय कन्दराओं की अनुदैर्ध्य परिच्छेदिकाओं में पर्याप्त अन्तर है। प्रथम का मार्ग सीधा होता है, जबकि द्वितीय का मार्ग विसर्प (meanders) युक्त टेढ़ा-मेढ़ा होता है। शीर्ष भाग पर अन्तः सागरीय कन्दराओं की चौड़ाई कई किमी० तक हो सकती है। इनकी सागरोन्मुख लम्बाई 16 किमी० तक देखी गयी है।

यद्यपि विभिन्न कन्दराओं में ढाल भिन्न-भिन्न हुआ करता है, परन्तु उनका औसत ढाल 1.7° होता है। जो कन्दराएँ नदियों के मुहाने के सामने स्थित होती हैं, वे लम्बी होती हैं (जैसे कांगो कैनियन) परन्तु ढाल कम होता है। द्वीपों के पास स्थित कन्दरायें गहरी होती हैं तथा ढाल अधिक (13.8°) होता है। शेपर्ड तथा बीयर्ड ने 102 कैनियनों का अध्ययन करने के पश्चात् बताया है कि कैनियन के ऊपरी भाग में ढाल 11.62°, मध्यवर्ती भाग में 9.63° तथा निचले भाग में 4.76° होता है।

अन्तः सागरीय कैनियन की गहराई 610 से 915 मीटर तक होती है। कहीं-कहीं पर यह गहराई 3,048 मीटर तक भी हो जाती है। इन कन्दराओं में कई प्रकार के महासागरीय निक्षेप भी पाये जाते हैं। पार्श्व भागों पर असंगठित पदार्थों के जमाव का अभाव होता है, जबकि तली में रेत, चीका, सिल्ट, बजरी (gravel) तथा कंकड़ों के जमाव मिलते हैं।

### 3.7.1 भारत के कैनियन

भारत के पूर्वीतट के सहारे निम्न कैनियन अधिक महत्वपूर्ण हैं, कोष्टक में गहराई मीटर में दी गयी है - 1. कुडालोर कैनियन (329), 2. पाण्डिचेरी कैनियन (466), 3. पलार कैनियन ( 1,141), 4. पुलिकट कैनियन, 5. अरमागाव कैनियन, 6. स्वर्णमुखी कैनियन ( 80-108), 7. पेनर कैनियन (225), 8. कृष्णा कैनियन (30), 9. गोदावरी कैनियन (30-60), 10. काकीनाडा कैनियन (10-20), 11. गंगा कैनियन (278-421) आदि। श्रीलंका के उ० पू० तट तथा पूर्वी अफ्रीका के पूर्वी तट के पास भी अन्तः सागरीय कन्दरायें मिलती हैं।

### 3.7.2 अन्तः सागरीय कन्दराओं की उत्पत्ति

अन्तः सागरीय कन्दराओं की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, परन्तु प्रायः सभी विद्वान इस बात पर अवश्य सहमत हैं कि ये अभिनव भूवैज्ञानिक स्थलरूप हैं जिनका निर्माण कैनोजोइक कल्प में हुआ है। इनमें से कुछ का निर्माण तो क्वाटर युग में हुआ है। कुछ कैनियन अब भी अपने निर्माण की अवस्था में हैं। कैनियन के निर्माण से सम्बन्धित निम्न सिद्धान्तों का उल्लेख आवश्यक है:

#### 3.7.2.1 भू- पृष्ठीय अपरदन सिद्धान्त ( Sub-aerial Erosion Theory)

अनेक वर्षों तक शेपर्ड का यह दृढ़ मत था कि प्लीस्टोसीन युग में समुद्र तल काफी नीचा था जिससे बहुत सा जलमग्न तट जल से मुक्त हो गया। उसी समय अपरदन के अभिकर्ताओं द्वारा कैनियन का निर्माण हुआ। कालान्तर में युग परिवर्तन के साथ ही हिम पिघलने से समुद्र तल पुनः पूर्ववत् हो गया । किन्तु इस सिद्धान्त में सबसे बड़ा दोष यह है कि समुद्र तल इतना नीचे नहीं गिरा जिससे महाद्वीपीय मग्न ढाल समुद्र से बाहर निकल आये हों। इसीलिये शेपर्ड को अपने सिद्धान्त में संशोधन करना पड़ा।

भूवैज्ञानिक साक्ष्यों के आधार पर यह सर्वमान्य है कि चतुर्थ महाकल्प (Quaternary Period) में समुद्र तल 80-100 मीटर तक नीचा हो गया था । किन्तु यदि नदियों द्वारा की जाने वाली अपरदन क्रिया को कैनियन के निर्माण का प्रमुख कारक मान लिया जाये, तो वर्तमान अन्तःसमुद्री कैनियनों की ज्ञात गहराई को ध्यान में रखते हुये समुद्र तल में उपर्युक्त गिरावट पर्याप्त नहीं है । भू-पृष्ठीय अपरदन द्वारा अन्तः समुद्री कैनियनों के निर्माण के लिये आवश्यक है कि वर्तमान समुद्र तल की अपेक्षा तत्कालीन समुद्र तल में कम से कम 2000 मीटर की गिरावट होनी चाहिये थी । फिर भी, कुछ कैनियन इतने अधिक गहरे हैं कि उपर्युक्त गिरावट भी समस्या को हल नहीं कर सकती । विश्व भर में समुद्र तल में इतनी गिरावट की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः शेपर्ड के उपर्युक्त मत में संशोधन के साथ यह कल्पना की गई है कि भू-पृष्ठीय अपरदन से स्थल खण्डों पर कैनियनों (नदी कन्दराओं) के निर्माण के उपरान्त महाद्वीपीय मग्न ढालों का आकुंचन (flexure) हो गया। इस प्रकार हिमयुग के पश्चात् समुद्र जल के स्तर में पुनः वृद्धि हो गयी और स्थलीय नदी कन्दराओं के जलमग्न हो जाने से वर्तमान अन्तःसमुद्री कैनियनों की उत्पत्ति हुई । संक्षेप में कहा जा सकता है कि वर्तमान में किये गये निरीक्षणों से यह सिद्धान्त मेल नहीं खाता । किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ कैनियनों की उत्पत्ति अवश्य ही इस सिद्धान्त के अनुरूप हुई होगी।

#### 3.7.2.2 पटल विरूपण सिद्धान्त (Diastrophic Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार ऐसे अनेक अन्तः समुद्री कैनियन पाये जाते हैं, जिनका निर्माण भूसंचलन के कारण हुआ। महाद्वीपों के मग्न तट तथा महासागरों के नितल का सम्पर्क क्षेत्र अपेक्षाकृत कमजोर होता है, जहाँ संवहन धारायें परस्पर मिलकर नीचे की ओर उन्मुख होती हैं जिससे वहाँ भ्रंशन एवं संवलन होता है। इस प्रकार भ्रंश खण्डों के मध्य भ्रंश घाटियों तथा ग्राबेन का निर्माण हो जाता है। आन्ट्रेड के मतानुसार इन कैनियनों का निर्माण ग्राबेन जैसी अनेक द्रोणियों के मिलने से हुआ है। धरातल के ऊपर इन भ्रंश घाटियों को भू-पृष्ठीय अपरदन के अभिकर्ता नष्ट कर देते हैं, किन्तु जल में निमग्न घाटियाँ अपरदन के अभाव में सुरक्षित रहती हैं। कैलीफोर्नियाँ, साइप्रस, मोरक्को आदि के तटों के निकट भ्रंशन के कारण कैनियनों की उत्पत्ति बतायी गई है। इसी प्रकार हडसन और सेन्ट लारेन्स कैनियनों का निर्माण पटल विरूपणी शक्तियों के कारण हुआ है। अनेक विद्वानों ने पटल विरूपण से उत्पन्न कैनियनों के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार प्रस्तुत किये हैं। किन्तु यह सत्य है कि भ्रंशन के कारण कुछ कैनियनों का निर्माण अवश्य हुआ है।

इस सिद्धान्त के आलोचकों ने स्वीकार किया है कि कुछ मग्न तटों पर भ्रंशन और उससे उत्पन्न दरारों से अन्तःसमुद्री कन्दराओं का निर्माण सम्भव है, किन्तु सभी मग्न तटों पर ऐसा नहीं है। प्रशान्त महासागर तथा भूमध्य सागर के कैनियनों का निर्माण भू-संचलन के कारण सम्भव है, क्योंकि इन तटवर्ती क्षेत्रों में तृतीय एवं चतुर्थ कल्प में भूसंचलन के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु अटलांटिक महासागर के तट पर, जहाँ कैनियनों का निर्माण प्लायोसीन युग की चट्टानों को काट कर हुआ है, अभिनव भूवैज्ञानिक काल में ऐसे किसी भूसंचलन का प्रमाण नहीं मिलता। निस्सन्देह यहाँ तृतीय कल्प की शैलों के निर्माण के उपरान्त ही कैनियनों की उत्पत्ति हुई होगी। इसके अतिरिक्त भूसंचलन से प्रभावित तटों के निकट भ्रंशन तथा उससे उत्पन्न संरचनात्मक स्थलाकृतियाँ उनके समानान्तर पाई जाती हैं। इसके विपरीत, प्रायः सभी कैनियन तटों से प्राय; समकोण पर बने हुये हैं। कैनियनों की सहायक घाटियों का वृक्षाकार प्रतिरूप (dendritic pattern) भ्रंश घाटियों में कदापि सम्भव नहीं है। कैनियनों के चिकने ढाल, जिन का निर्माण मग्न तटों से हुआ है, किसी प्रकार के पटल विरूपण का संकेत नहीं देते। पटल विरूपण सिद्धान्त के आलोचक भी इस बात से सहमत हैं कि किन्हीं अन्य अभिकर्ताओं द्वारा निर्मित कैनियन भी विवर्तनिक बल (tectonic force) के कारण अधिक गहरे किये जा सकते हैं। इस सिद्धान्त के मानने वाले विद्वानों में आन्ड्रेड, लासन, ग्रेगोरी, जेंसन एवं बोरकार्ट तथा हल आदि विशेष उल्लेखनीय है।

### 3.7.2.3 पंकिल तरंगों का सिद्धान्त (Turbidity Currents Theory)

अनेक विद्वानों (डेविस, रिदर, डेली आदि) के अनुसार तट की ओर चलने वाली तीव्र हवा के कारण तट के पास अपार जलराशि एकत्र हो जाती है, जिसमें पंक मिली होती है। तट के पास अत्यधिक जलराशि के कारण सागर की ओर अन्त:सागरीय तरंगें चलने लगती हैं । इनके साथ पंक आदि मिली रहती है। इस तरंग को पंक तरंग कहते हैं। इन तरंगों द्वारा ही अन्त:सागरीय कन्दराओं का निर्माण होता है।

डेली के अनुसार हिमानीकरण के समय सागर तल में गिरावट के कारण मग्नतट के पदार्थों का सागरीय तरंगों द्वारा अपरदन होता है। परिणामस्वरूप सागरीय जल का गंदलापन बढ़ता जाता है तथा उनका घनत्व अधिक हो जाता है, जिस कारण सागरोन्मुख पंक तरंग का आविर्भाव होता है। ये तरंगें मग्नतट तथा मग्न ढाल पर अपरदन द्वारा कैनियन का निर्माण करती हैं।

बूचर ने इस सिद्धान्त के विरोध में बताया है कि अधिकांश पंक तरंगों की गति इतनी नहीं होती है कि उनसे इतना अपरदन हो जाय कि कैनियन का निर्माण हो सके। उन्होंने बताया कि भूकम्प अथवा ज्वालामुखी के उद्भेदन से उत्पन्न तरंगें अधिक वेगवती होती हैं तथा उनकी अपरदनात्मक सामर्थ्य भी अधिक होती है।

क्वेन ने 1952 में बताया कि कैनियनों का निर्माण स्थिर भागों में नदी घाटियों के निमज्जन के कारण होता है तथा कुछ का निर्माण भूमि स्खलन तथा पंक तरंग द्वारा सम्भव हो पाता है ।

### 3.7.2.4 अन्तःसमुद्री घनत्व धारायें सिद्धांत (Submarine Density Currents)

सैलिस तथा फ्लोरेल के अनुसार सागरीय भागों में तापक्रम एवं घनत्व में भिन्नता के कारण तरंगें उठती हैं। इन तरंगों द्वारा जलमग्न तट तथा ढाल से ढीले पदार्थ सागर की ओर सरका दिये जाते हैं, जिस कारण अन्तः सागरीय कन्दराओं का निर्माण होता है । फ्लोरेल ने कांगो नदी के मुहाने पर स्थित कांगो कैनियन क निर्माण घनत्व तरंग के कारण ही बताया है । इस सिद्धान्त के विपरीत बताया जाता है कि सामान्यतः कैनियन का निर्माण जलमग्न तट के छिछले भाग पर होता है, जहाँ पर घनत्व तरंगों का आविर्भाव नहीं हो पाता है ।

## 3.8 गंभीर सागर पंख तथा महाद्वीपीय उभार (Deep Sea Fans and Continental Rise)

महाद्वीपीय मग्न ढालों के आधार तथा अन्तः सागरीय कन्दराओं (submarine canyons ) के अग्रभाग ( मुख- month) में स्थित गभीर (गहरे ) सागर पंखों की आकृति (shape), पंख के आकार या लोबेट

आकार या एप्रन आकार की होती है । ये अन्तः सागरीय पंख भी स्थलीय जलोढ़ पंखों के समान ही निक्षेप जनित होते हैं ( चित्र 3.4 ) । इन अन्तः सागरीय पंखों का निर्माण अन्तः सागरीय पंक तरंगों (turbidity currents) द्वारा लाये गये अवसादों (sediments) के लगातार निक्षेप के कारण होता है । जब कई अन्तः सागरीय पंख आपस में मिल जाते हैं तो वृहदाकार निक्षेप जनित पंख को महाद्वीपीय उभार (continental rise) कहते हैं । कई समुद्र विज्ञानियों ने अलग-अलग अवस्थितियों में महाद्वीपीय उभारों का अध्ययन किया है । अन्तः सागरीय महाद्वीपीय उभार आन्ध्र महासागर तथा हिन्द महासागर में अधिक संख्या में मिलते हैं परन्तु प्रशान्त महासागर में इनकी संख्या बहुत कम है । इन महाद्वीपीय उभारों की औसत चौड़ाई 300 किमी० तथा ऊँचाई 40 मीटर है। इनके ऊपर सागरीय जल की गहराई 1.5 से 5.0 किमी० के बीच होती है ।

जहाँ तक अन्तः सागरीय उभार की उत्पत्ति का प्रश्न है, पंक तरंगें (turbidity currents) इनकी उत्पत्ति तथा विकास की महत्वपूर्ण कारक हैं। जैसे ही पंक तरंगें अन्तः सागरीय कन्दराओं से होकर निचले ढाल की ओर चलती हैं, वे इन कन्दराओं का अपरदन करती हैं। इस तरह अपरदित अवसाद ( sediments) निलम्बित होकर अन्तः सागरीय कन्दराओं के मुख भाग की ओर लाये जाते हैं । जैसे ही पंक तरंगें अन्तः सागरीय कन्दराओं के मुहाने से आगे बढ़ती हैं, ढाल में अचानक कमी आने के कारण निलम्बित अवसाद नीचे बैठने लगते हैं तथा वहीं पर जमा (निक्षेपित) हो जाते हैं। निक्षेपण में अवसादों का श्रेणीकरण (gradation) होता है । अर्थात् पास में बड़े आकार वाले तथा दूर जाने पर उसका आकार छोटा होता जाता है। इस तरह निक्षेप में ग्रेडेड संस्तर (beds) बन जाते हैं । उल्लेखनीय है कि इस तरह के निक्षेपों में अवसादों की लम्बवत् रूप में भी ग्रेडिंग होती है। अर्थात् इन निक्षेपों के ऊपरी भाग में बारीक तथा निचले भाग में मोटे (coarse) अवसादों का जमाव होता है। धीरे-धीरे इन निक्षेपों का आकार (size) बढ़ता जाता है तथा उनका पंख की आकृति में विकास होता जाता है ।

गहरे सागरीय पंखों का निर्माण एवं वृद्धि एक मन्द प्रक्रिया है जिसके दौरान विभिन्न आकार ( size) वाले अवसादों का विभिन्न समयों में निक्षेपण होता है । इस प्रक्रिया का विस्तरण आवश्यक है । पहली बार प्रथम सेट की पंक तरंगों द्वारा ग्रेडेड अवसादों का निक्षेपण होता है । कुछ समय अन्तराल के बाद दूसरे सेट की पंक तरंगों द्वारा पहले के निक्षेपित अवसादों के ऊपर विभिन्न आकार वाले अवसादों का दूसरा अनुक्रम (sequence of sediments) जमा होता है । यह प्रक्रिया चलती रहती है तथा विभिन्न अनुक्रम

के ग्रेडेड निक्षेप का जमाव हो जाता है। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति (repetition) के कारण निर्मित गंभीर सागर पंख में क्षैतिज तथा लम्बवत वृद्धि होती जाती है। परिणामस्वरूप कुछ मीटर से लेकर 40 मीटर ऊँचे गभीर सागरीय पंखों का निर्माण होता है। जब ऐसे कई पंख आपस में मिल जाते हैं तो अन्तः सागरीय उभार (submarine continental rise) का निर्माण होता है।

## 3.9 गभीर महासागरीय बेसिन तथा सम्बन्धित आकृतियाँ (Deep Ocean Basins and Associated Features)

गभीर महासागरीय बेसिनों की तलियों पर कई प्रकार के उच्चावच मिलते हैं जैसे कि ऊँचाई वाली गभीर पहाड़ियाँ तथा गहराई वाले अन्तः सागरीय खड्ड। इन उच्चवचों में सबसे महत्वपूर्ण गभीर सागरीय मैदान (deep sea plains) हैं परन्तु सपाट एवं समतल होने के कारण ये उच्चावचविहीन होते हैं। महासागरीय बेसिनों के नितल पर मिलने वाले निम्न प्रमुख उच्चावच हैं।

### 3.9.1 गहन सागरीय मैदान (Deep Sea Plains)

सागरीय मैदान महासागरीय नितल का सर्वाधिक विस्तृत मण्डल होता है, जिसकी गहराई 3,000 से 6,000 मीटर तक होती है। समस्त महासागरीय क्षेत्रफल के लगभग 75.9% भाग पर सागरीय मैदान का विस्तार पाया जाता है परन्तु एक महासागर से दूसरे महासागर में यह प्रतिशत बदलता रहता है। मसलन प्रशान्त महासागर में 80.3%, हिन्द महासागर में 80. 1% तथा अटलांटिक महासागर में 54.9% भाग पर सागरीय मैदान का विस्तार है। अटलांटिक महासागर में सागरीय मैदान के अपेक्षाकृत कम विस्तार का प्रमुख कारण महाद्वीपीय मग्नतट का अधिक विस्तार है। महासागरीय जल के अन्तर्गत ये मैदान अत्यन्त विस्तृत होते हैं, जिनका ढाल अत्यन्त मन्द होता है, परन्तु कहीं-कहीं पर लम्बे-लम्बे तथा पतले कटक (ridges) पाये जाते हैं। ये कटक तीव्र किनारे वाले होते हैं तथा कभी-कभी सागरीय जल तक या उसके ऊपर भी दृष्टिगत हो जाते हैं। इन विस्तृत सागरीय मैदानों पर सागरीय जीवों, पौधों तथा क्षारीय पदार्थों के निक्षेप मिलते हैं, परन्तु उन पर अपरदन से प्राप्त मलवा का पूर्णतया अभाव रहता है। कहीं-कहीं पर ज्वालामुखी पदार्थ के भी जमाव मिलते हैं।

सामान्यतया निष्क्रिय प्लेट किनारों वाले महासागरों के भागों में विस्तृत गहरे सागरीय मैदान पाये जाते हैं, यथा: अटलाण्टिक एवं हिन्द महासागर में विस्तृत गहरे सागरीय मैदानों का विकास हुआ है। इसके विपरीत सक्रिय प्लेट किनारों वाले भागों में गहरे सागरीय मैदान अपेक्षाकृत कम विस्तार वाले हैं,

उदाहरण प्रशान्त महासागर । उल्लेखनीय है कि सक्रिय प्लेट किनारों के सहारे महाद्वीपीय तथा महासागरीय प्लेटों के अभिसरण (convergence) के कारण क्षेपण होने से महासागरीय खड्डों का निर्माण होता है। स्थलीय भागों से आने वाले अवसाद इन खडड़ों में जमा हो जाते हैं। परिणामस्वरूप ये अवसाद गहरी महासागरीय बेसिन में नहीं पहुँच पाते हैं जिस कारण गहरे सागरीय मैदान नहीं बन पाते हैं। ऐसी स्थिति प्रशान्त महासागर में होती है । इसके विपरीत निक्रिय प्लेट किनारों के सहारे महासागरीय खडड़ों का निर्माण नहीं हो पाता है। इस तरह इन खडड़ों (trenches) के अभाव में अवसाद महासागरों के गहरे भागों तक पहुँच जाते हैं, जिस कारण विस्तृत गहरे सागरीय मैदानों का निर्माण हो जाता है । यही कारण है कि अटलाण्टिक एवं हिन्द महासागरों में विस्तृत गहरे सागरीय मैदान पाये जाते हैं।

### 3.9.2 वितलीय पहाड़ियाँ (Abyssal Hills)

गहरे सागरीय मैदानों पर ज्वालामुखी उत्पत्ति वाली कई प्रकार की पहाड़ियाँ पायी जाती हैं। इनमें प्रमुख हैं: ज्वालामुखी पहाड़ी, ज्वालामुखी द्वीप, सागरीय टीले (sea mounts), मंच टीला (table mounts) या निमग्न द्वीप (guyots)।

- ज्वालामुखी पहाड़ियां या तो गुम्बदाकार होती हैं या विस्तृत आधार वाली लम्बी पहाड़ियाँ होती हैं। ज्वालामुखी द्वीप, जब वितलीय ज्वालामुखी पहाड़ियाँ सागर तल के ऊपर आ जाती हैं तो इन्हें ज्वालामुखी द्वीप कहते हैं।
- सामान्यतया इन वितलीय पहाड़ियों की ऊँचाई सागर तली से 1000 मीटर तथा उनका आधार 0.1 किमी० से 100 किमी० चौड़ा होता है।
- कम ऊँचाई वाली वितलीय ज्वालामुखी पहाड़ियों को वितलीय पहाड़ियां (abyssal hills) या सागर टेकरी (sea knolls) कहते हैं।
- सागर तल के नीचे सदा जलमग्न रहने वाली शंकु के आकार वाली वितलीय ज्वालामुखी पहाड़ियों को सागर टीला (sea mounts) कहते हैं।
- चपटे शिखर वाली वितलीय ज्वालामुखी पहाड़ियों को मंच टीला (table mounts) या निमग्न द्वीप (guyot) कहते हैं। सागर टीला (sea mounts) उभार रहित ( extinct ) अन्तः सागरीय

ज्वालामुखी पहाड़ियों के अवशेष होते हैं जिनकी सागर तली से औसत ऊँचाई 1000 मीटर होती है, परन्तु ये सदा सागर तल से नीचे सागरीय जल में डूबी रहती हैं।

कभी-कभी सागर टीला सक्रिय ज्वालामुखी भी होते हैं। सागर टीला के पार्श्व तीव्र ढाल वाले होते हैं। ये सागर तली पर एकाकी या समूह में मिलते हैं। जब कई वितलीय पहाड़ियाँ सागर तली पर समूह में मिलती हैं तो ऐसी आकृतियों (morphological fea tures) वाले क्षेत्र को बितलीय पहाड़ी प्रदेश (abyssal hills province) कहते हैं। अटलाण्टिक तथा हिन्दमहासागर के गहरे (वितलीय) सागरीय मैदानों पर समूह में मिलने वाली वितलीय ज्वालामुखी पहाड़ियों की भरमार है।वितलीय गहरे सागरीय मैदानों की अधिकांश अन्तः सागरीय ज्वालामुखी पहाड़ियाँ प्लेटों के अपसरण (diver- gence) तथा सागर नितल प्रसरण (sea floor spreading) के कारण उत्पन्न ज्वालामुखी क्रियाओं के परिणाम हैं।

### 3.10 महासागरीय गर्त तथा खडड् (Ocean Deeps and Trenches)

महासागरीय गर्तों से तात्पर्य महासागरों के नितल पर पाये जाने वाले सबसे अधिक गहरे गर्त से है। आकार के आधार पर इन गर्तों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है: खाइयाँ ( oceanic trenches) तथा द्रोणियाँ (oceanic troughs)। उन गहरे भागों को खाइयाँ कहते हैं जो प्रायः लम्बे, सँकरे तथा चापाकार (arc-shaped ) होते हैं और जिनके पार्श्वर्ती भाग तीव्र ढाल वाले होते हैं। ऐसी अधिकांश खाइयाँ महासागरों के किनारे के समीप पायी जाती हैं। ज्वालामुखी क्रियाओं अथवा भूकम्प वाले समुद्री क्षेत्रों में प्रायः ऐसी खाइयाँ मिलती हैं। द्वीपमालाओं के चाप (island arcs) के उन्नतोदर भाग की ओर भी ऐसी खाइयाँ मिलती हैं। सबसे अधिक संख्या में महासागरीय गर्त प्रशान्त महासागर के चारो ओर तट के समीपवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ऐसे महासागरीय गर्तों को द्रोणी कहा जाता है, जो लम्बे और अपेक्षाकृत अधिक चौड़े होते हैं तथा जिनके किनारे का ढाल मन्द होता है।

फिलीपीन्स के निकट स्थित मिन्डनाओं गर्त (Mindanao Trench) 5740 फैदम गहरा है। यह विश्व का सर्वाधिक गहरा गर्त है। इसी प्रकार जावा खाई ( Java Trench ) तथा अल्यूशियन खाई अन्य उदाहरण हैं। गहरे समुद्रों के नितल पर पाई जाने वाली द्रोणियों (Troughs ) में कैरेबियन सागर तथा मोलक्का सागर में स्थित क्रमशः बार्लेट ट्रफ (3958 फैदम) तथा वेवर ट्रफ विशेष उल्लेखनीय हैं।

अनेक विद्वानों का मत है कि इन गर्तों की उत्पत्ति पटल विरूपणी शक्तियों के द्वारा हुई, क्यों कि भूकम्प अधिकेन्द्रों का सम्बन्ध प्रायः इन गर्तों से पाया गया है।

### 3.11 मध्य महासागरीय कटक (Mid-Ocean Ridges)

ज्वालामुखी निर्मित मध्य महासागर कटक महासागरीय बेसिन ही नहीं अपितु सम्पूर्ण ग्लोब के सर्वाधिक विस्तृत उच्चावच हैं । उल्लेखनीय है कि सभी महासागरीय कटक महासागरीय बेसिन के मध्य में स्थित नहीं हैं । मध्य अटलाण्टिक तथा मध्य हिन्द महासागर कटक मध्य में स्थित हैं परन्तु पूर्वी प्रशान्त महासागर उभार (कटक) प्रशान्त महासागर के मध्य में नहीं अवस्थित है । मध्य महासागरीय कटकों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :

- मध्य महासागरीय कटक ग्लोब की सबसे लम्बी पर्वत श्रृंखला हैं जिनकी लम्बाई 60,000 से 65,000 किमी० तक है । इनके अन्तर्गत महासागरीय नितल का एक तिहाई क्षेत्र आता है ।
- सभी महासागरीय कटकों की वितलीय महासागर बेसिन के मध्य में अवस्थिति नहीं होती है। उदाहरण के लिए पूर्वी प्रशान्त महासागर उभार ( कटक, rise) प्रशान्त महासागरीय बेसिन की केन्द्रीय अक्ष (central axis), अर्थात् मध्यवर्ती अवस्थिति से बहुत दूर है ।
- मध्य अटलाण्टिक कटक तथा मध्य हिन्द महासागर कटक का सबसे अधिक अध्ययन किया गया है ।
- सभी मध्य महासागरीय कटक ज्वालामुखी क्रिया से निर्मित हैं तथा इनकी रचना बेसाल्ट पिलो लावा से हुई है ।
- इनका सम्बन्ध प्लेटो के अपसरण (divergence) तथा सागर नितल प्रसरण (sea floor spreading) से होता है । इन मध्य महासागरीय कटकों का शीर्ष गुम्बादाकार होता है अर्थात् ऊपरी भाग गोलाकार होता है या इनके ऊपरी भाग पर सागर नितल प्रसरण के कारण निर्मित भ्रंश घाटियाँ होती हैं ।
- यद्यपि मध्य महासागरीय कटकों की चौड़ाई में पर्याप्त विभिन्नतायें हैं परन्तु औसत रूप में इनकी चौड़ाई 1.000 किमी० है । वितलीय सागर मैदान (deep sea plains) की तली से इनकी औसत ऊँचाई 2,500 किमी० है ।
- मध्य महासागरीय कटकों के सहारे सक्रिय ज्वालामुखी क्रियायें तथा भूकम्पीय घटनायें होती रहती हैं ।

- मध्य महासागरीय कटकों के शिखरीय भ्रंश घाटी क्षेत्र में निम्न आकृतियां मिलती हैं।

➢ **उष्णतापजलीय छिद्र** (hydrothermal vents): ये वास्तव में उष्ण सोता ( hot springs) होते हैं। जब सागर नितल में प्लेट गति के कारण विपरीत दिशाओं में अपसरण होता है तो मध्य महासागरीय कटकों के ऊपरी भाग पर भ्रंश का निर्माण हो जाता है। सागरीय जल रिस कर इन भ्रंशों में पहुँच जाता है तथा गर्म हो जाता है और उष्ण सोते के रूप में उसका उत्स्रवण होने लगता है। यह उष्ण जल श्वेत स्मोकर (white smoker) के रूप में प्रकट होता है, जिसका तापमान 300 से 35° सें० होता है। जब यह तापमान 350 सें० से अधिक हो जाता है तो उसे ब्लैक स्मोकर कहते हैं।

➢ महासागरीय कटक (oceanic ridges), मध्य महासागरीय कटकों के उन भागों को कटक कहते हैं जिनके पार्श्व भाग तीव्र ढाल वाले होते हैं।

➢ महासागरीय उभार (oceanic rise), मन्द पार्श्व ढाल वाले मध्य महासागरीय कटकों के भाग को महासागरीय उभार कहते हैं।

➢ रूपान्तर भ्रंश (transform faults), मध्य महासागरीय कटकों के आर-पार निर्मित कई रूपान्तर भ्रंशों के कारण उसका क्रम भंग हो जाता है । मध्य महासागरीय कटकों के सहारे दो प्लेटों के अपसरण के फलस्वरूप सागर नितल में प्रसरण के कारण ही इन रूपान्तर भ्रंशों का निर्माण होता है । ये रूपान्तर भ्रंश सागर नितल के प्रसरण (spreading) मण्डल की अक्ष के लम्बरूप में होती हैं ।

मध्य महासागरीय कटकों का निर्माण दो महासागरीय प्लेटों के विपरीत दिशाओं में गतिशील होने (अपसरण) तथा उससे जनित सागर नितल के प्रसरण के कारण होता है। जब दो महासागरीय प्लेट टूट कर विपरीत दिशाओं में गतिशील होते हैं, तो भ्रंश (faults) का निर्माण होता है, ऊपर स्थित दबाव कम हो जाता है, परिणामस्वरूप ऊपरी मैण्टिल की चट्टानें पिघल जाती हैं। पिघले पदार्थ मैगमा के रूप में ऊपर उठते हैं । सागरीय जल की सतह तक पहुँचने पर यह मैगमा शीतल होकर ठोस हो जाता है । इस तरह नयी बेसाल्ट क्रस्ट का निर्माण होता है । यह बेसाल्ट परत रचनात्मक प्लेट सीमा से सम्बद्ध हो जाती है । इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति के कारण सक्रिय ज्वालामुखी क्रिया द्वारा बेसाल्ट लावा जमा होते रहने से प्रसरण मण्डल (spreading zone) के सहारे विस्तृत मध्य महासागरीय कटकों का निर्माण हो जाता है ।

## 3.12 सारांश

सामान्य मनुष्य की समझ से इतर सागर एवं महासागरों का नितल वैविध्यपूर्ण है। समुद्र तल की विविधता किसी भी मायने में महाद्वीपीय विविधता से कम नहीं कही जा सकती। प्रस्तुत इसकी यह स्पष्ट रूप से बताती है कि उच्च्तादर्शी वक्र पर महासागरों का नितल विविध ऊँचाइयों एवं गहराइयों को प्रदर्शित करता है। महासागरों के अन्दर भी ऊंचे-ऊंचे पहाड़ एवं गहरी घाटियाँ (समुद्री गर्त) पाये जाते हैं।

## अभ्यास प्रश्न

1. उच्चतादर्शी वक्र क्या है ?
2. महासागरों के नितल के उच्चावच में पाए जाने वाले स्थलारूपों का वर्णन कीजिये।
3. महासागरीय मग्नतट की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या कीजिये।
4. महासागरीय कैनियनों की उत्पत्ति के कारणों का वर्णन कीजिये।
5. गभीर सागरीय मैदानों के वितरण प्रतिरूप का वर्णन कीजिये |

## सन्दर्भ ग्रन्थ


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.
- एलन पी. ट्रूजिलो तथा हेरोल्ड वी. थर्मन एसेंशियल्स ऑफ ओशनोग्राफी: इंटरनेशनल एडिशन पेपरबैक (9वां संस्करण), पियरसन.
- जोर्ज एल. मेलॉर (1997), इंट्रोडक्शन टू फिजिकल ओसानोग्राफी, अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ़ फिजिक्स.

# इकाई 4

# प्रशांत महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल का उच्चावच, प्रशांत महासागर के द्वीप

---

## इकाई की रूपरेखा


4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रशान्त महासागर का आकार एवं विस्तार

4.2.1 उत्तरी प्रशान्त महासागर प्रदेश

4.2.2 मध्य प्रशान्त महासागरीय प्रदेश

4.2.3 दक्षिण-पूर्व प्रशान्त महासागर प्रदेश

4.2.4 दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त महासागर प्रदेश

4.3 प्रशान्त महासागर के नितल का उच्चावच

4.3.1 महाद्वीपीय मग्नतट

4.3.2 पूर्वी प्रशान्त महासागर उभार

4.3.3 महासागरीय द्रोणियां

4.3.4 महासागरीय गर्त तथा खड्ड

4.4 प्रशान्त महासागर के द्वीप

4.5 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 4

# प्रशांत महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल का उच्चावच, प्रशांत महासागर के द्वीप

---

## 4.0 प्रस्तावना

प्रशांत महासागर पृथ्वी पर सबसे बड़ा और गहरा महासागर है, जो लगभग 63.8 मिलियन वर्ग मील (165.25 मिलियन वर्ग किलोमीटर) या पृथ्वी की सतह का लगभग एक तिहाई क्षेत्र पर विस्तृत है। यह संयुक्त रूप से पृथ्वी के सभी भूभागों से बड़ा है और पृथ्वी के समुद्र के पानी का लगभग आधा हिस्सा रखता है। प्रशांत महासागर उत्तर में आर्कटिक महासागर से लेकर दक्षिण में दक्षिणी महासागर तक और पश्चिम में एशिया और ऑस्ट्रेलिया से लेकर पूर्व में अमेरिका तक फैला हुआ है। इसकी तटरेखा लगभग 135,663 मील (218,741 किलोमीटर) लंबी है, जिसमें कई द्वीप और द्वीपसमूह हैं।प्रस्तुत इकाई में प्रशांत महासागर के आकार एवं विस्तार, नितल का उच्चावच, इस महासागर के प्रमुख द्वीपों का वर्णन किया गया है।

## 4.1 उद्देश्य

इकाई "प्रशांत महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल का उच्चावच, प्रशांत महासागर के द्वीप" के अध्ययन के उपरांत आप:

1. प्रशान्त महासागर का आकार एवं विस्तार का वर्णन कर सकेंगे।
2. प्रशान्त महासागर का नितल का उच्चावच, को समझकर लिख सकेंगे।
3. प्रशान्त महासागर के प्रमुख द्वीपों का वर्णन कर सकेंगे।

## 4.2 प्रशान्त महासागर का आकार एवं विस्तार (Shape and Size of The Pacific Ocean)

प्रशान्त महासागर तथा उसके तटवर्ती सागर सम्मिलित रूप से विश्व के एक तिहाई भाग पर फैले हुये हैं। प्रशान्त महासागर एक विशाल त्रिभुज के आकार का है जिसका शीर्ष भाग उत्तर में वेरिंग जलडमरूमध्य में है। इसके पश्चिम में एशिया तथा आस्ट्रेलिया तथा पूर्व में उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के महाद्वीप स्थित हैं। इसके दक्षिणी किनारे पर अन्टार्कटिक महाद्वीप अवस्थित है (चित्र 4.1)। यह महासागर उत्तर से दक्षिण 14900 किमी लम्बा है जब कि भूमध्य रेखा पर इसकी चौड़ाई 16,000 किमी से कुछ अधिक है। इसकी औसत गहराई 4,572 मीटर है प्रशान्त महासागर के दोनों तटों पर वलित पर्वतों की श्रृंखलायें पायी जाती हैं। प्रशान्त महासागर में छोटे-बड़े मिलाकर लगभग 20,000 द्वीप पाये जाते हैं।

**चित्र 4.1: प्रशान्त महासागर का आकार एवं विस्तार**

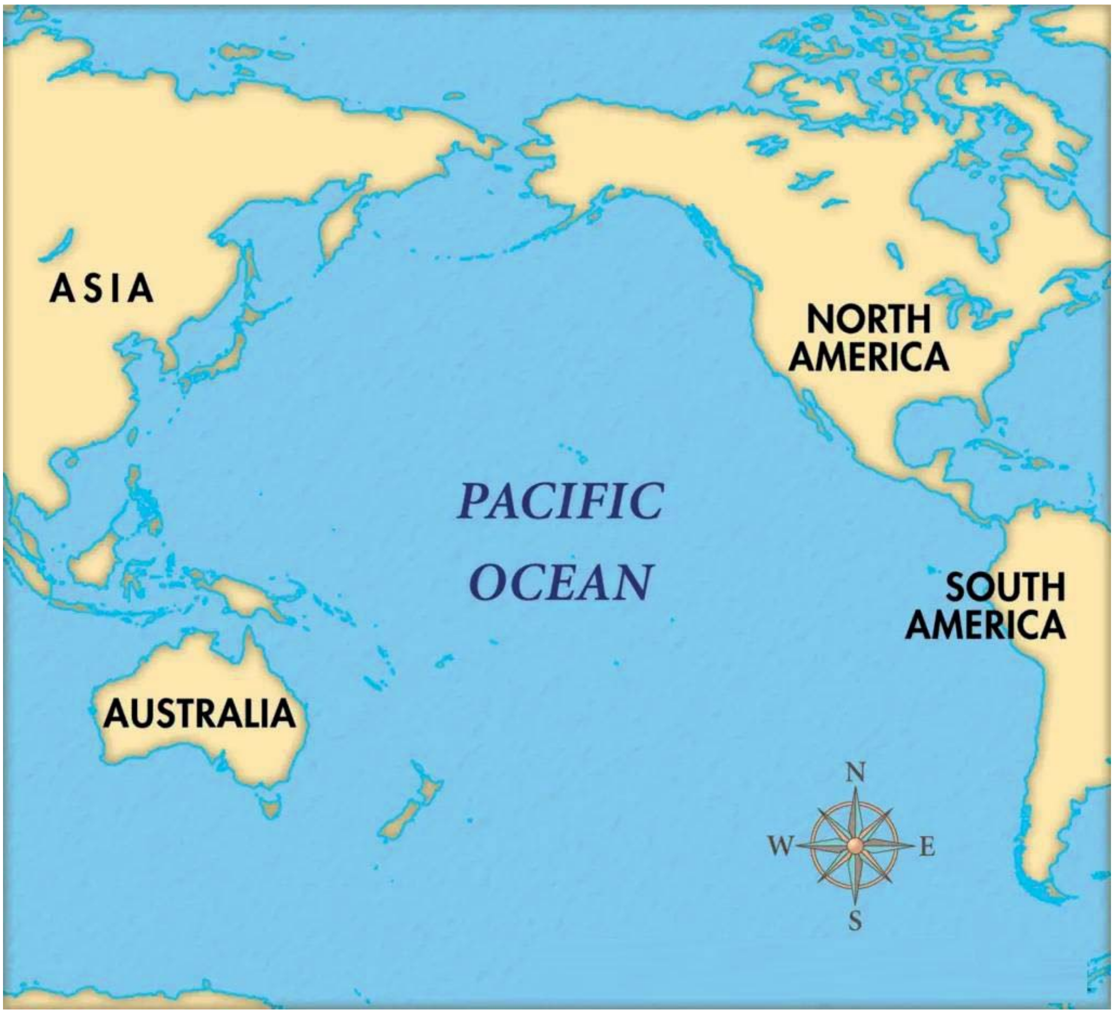


स्रोत: इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 2018

जानसन महोदय ने प्रशान्त महासागर को निम्न 4 उपप्रदेशों में विभाजित किया है:

**4.2.1 उत्तरी प्रशान्त महासागर प्रदेश** के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रशान्त महासागर का सर्वाधिक गहरा क्षेत्र आता है । औसत गहराई 5000 से 6000 मीटर है। इस प्रदेश का बेरिंग जलडमरूमध्य से होकर आर्कटिक सागर से सम्बन्ध होता है ।

**4.2.2 मध्य प्रशान्त महासागरीय प्रदेश** में प्रशान्त महासागर के सर्वाधिक द्वीप अवस्थित हैं जिनमें से अधिकांश की उत्पत्ति ज्वालामुखी पदार्थों तथा प्रवाल भित्तियों से हुआ है । हैरी हेस ने इस प्रदेश में 160 चपटे शिखर वाली सागर चौकियों (sea mounts) का अभिनिर्धारण किया है । इस प्रदेश में कई समानान्तर द्वीप श्रृंखलायें हैं। एडवर्ड स्वेस ने इनका नामकरण ओसिनायड्स किया है ।

**4.2.3 दक्षिण पूर्व प्रशान्त महासागर प्रदेश** के अन्तर्गत कई द्वीप, सीमान्त सागर, विस्तृत मग्नतट तथा महासागरीय खडड् पाये जाते हैं ।

**4.2.4 दक्षिण पश्चिम प्रशान्त महासागर प्रदेश** में पूर्वी प्रशान्त उभार या कटक प्रशान्त महासागर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उच्चावच अवस्थित है परन्तु इसमें सीमान्त सागरों का पूर्णतया अभाव है ।

## 4.3 प्रशान्त महासागर के नितल का उच्चावच (Bottom Relief of the Pacific Ocean)

### 4.3.1 महाद्वीपीय मग्नतट

प्रशान्त महासागर के मग्न तट उसके तटवर्ती क्षेत्रों की संरचना और बनावट पर निर्भर करते हैं । प्रशान्त महासागर के पूर्वी तथा पश्चिमी तटों के सहारे मग्नतटों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है । पश्चिमी तट अर्थात् एशिया के पूर्वी तट तथा आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के सहारे मग्नतट अत्यन्त विस्तृत पाये जाते हैं । इनकी औसत चौड़ाई 160 से 1600 किमी० तथा गहराई 1000 से 2000 मीटर पायी जाती है । इन विस्तृत मानतटों पर असंख्य द्वीप (क्यूराइल्स, जापान द्वीप, फिलीपाइन्स, इण्डोनेशिया, न्यूजीलैण्ड आदि) तथा कई आन्तरिक और सीमांत सागर (बेरिंग सागर, ओखोटस्क सागर, जापान सागर, पीत सागर, चीन सागर, जावा सागर, कोरल सागर आदि ) पाये जाते हैं । प्रशान्त महासागर के पूर्वी तट पर मग्न तटों की चौड़ाई बहुत कम है । उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तटों के समानान्तर क्रमशः राकी और एण्डीज पर्वतमालाओं की उपस्थिति के कारण मग्न तट प्रायः अत्यधिक सँकरे हो गए हैं । उनकी औसत चौड़ाई मात्र 80 किलोमीटर तक सीमित है ।

### 4.3.2 पूर्वी प्रशान्त महासागर उभार (Rise, कटक )

प्रशान्त महासागर में अन्ध  महासागर तथा हिन्द महासागर के समान मध्यवर्ती कटक (central ridge) नहीं पाया जाता है। कुछ बिखरे कटक अवश्य मिलते हैं। पूर्वी प्रशान्त कटक, जिसे अलवट्रास पठार के नाम से भी जाना जाता है, 1600 किमी० की चौड़ाई में विस्तृत है। 23° से 35° द० अक्षांशों के बीच इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं। पूर्वी शाखा चिली तट की ओर चली जाती है तथा प० शाखा इस्टर्न आइलैण्ड राइज के नाम से द० की ओर चली जाती है। दूसरा प्रमुख कटक न्यूजीलैण्ड रिज है, जो कि सागर तल से 200-2000 मीटर गहरा है। आस्ट्रेलिया के ग्रेट बैरियर रीफ के पश्चिम में क्वीन्सलैण्ड पठार भी प्रमुख कटक है। मध्य प्रशान्त महासागर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कटक हवायन उभार है, जो कि 960 किमी० की चौड़ाई तथा 2,640 किमी० की लम्बाई में फैला है।

लागोस कटक, जो एक गौण कटक है, पूर्वी प्रशान्त कटक (उभार) के समानान्तर पूर्व में इस्टर्न आइलैण्ड फ्रैक्चर जोन तथा गलापागोस द्वीपों के बीच अवस्थित है। यहाँ पर इसकी 2 शाखायें हो जाती हैं

(1) कारनेगी कटक, तथा (2) काकोस कटक।

अन्य गौण कटकों में निम्न महत्वपूर्ण हैं:

- **नजका कटक**, पेरू तट के पश्चिम में अवस्थित लाई होने कटक, आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के पूर्व में 200- 40° द० अक्षांशों के मध्य अवस्थित,
- **नारफोक द्वीप कटक**, न्यू कैलिडोनिया एवं न्यूजीलैण्ड के मध्य 23° द० से 35° द° अक्षांशों तक विस्तृत,
- **इयूरीधिक न्यू गायना कटक**, न्यू गायना के उत्तर में 140° पूर्वी देशान्तर के समानान्तर अवस्थित,
- **कैरोलाइन सोलोमन कटक**, सोलोमन द्वीप के उत्तर में अवस्थित, आदि।

मध्य अटलाण्टिक कटक के समान ही पूर्वी प्रशान्त कटक का निर्माण प्लेटों के अपसरण (divergence) तथा सागर नितल के प्रसरण (sea floor spreading) के कारण हुआ है। इस तथ्य का कटक के दोनों और बेसाल्ट क्रस्ट के कालिक अनुक्रम (temporal sequence) द्वारा सत्यापन हो जाता है। उदाहरण के लिये कटक के शीर्ष पर 0 से 5 मिलियन वर्ष पुरानी होलोसीन- प्लायोसीन की नवीनतम बेसाल्ट क्रस्ट पायी जाती है जबकि कटक के दोनों ओर महाद्वीपीय सीमान्त में 157-178 मिलियन वर्ष पुरानी मध्य जुरैसिक काल की प्राचीनतम बेसाल्ट क्रस्ट पायी जाती है।

इस कटक के अलावा प्रशान्त महासागर में भ्रंश मण्डल (fracture zones) महत्वपूर्ण भौमिकीय आकृति है। इन भ्रंशों की अवस्थिति उत्तर से दक्षिण दिशा में है तथा इनका प० से पू० की ओर अनुक्रम निम्न प्रकार है:

- मेण्डोसिनो भ्रंश मण्डल (40° उ० )
- मरे भ्रंश मण्डल (30° 30 )
- मोलोकई भ्रंश मण्डल (250 30)
- क्लैरियन भ्रंश मण्डल (20° 30 )
- क्लिपेटन भ्रंश मण्डल (10° उ० )
- ईस्टर्न आइलैण्ड भ्रंश मण्डल (30° द०) चैलेन्जर भ्रंश मण्डल (40° द०)

**4.3.3 महासागरीय द्रोणियां (बेसिन ) (Ocean Basins)**

प्रशान्त महासागर में कई द्रोणियाँ (विभिन्न आकार वाली) पायी जाती हैं, जिनका एक-दूसरे से अलगाव सागरीय कटकों द्वारा होता है। कुछ प्रमुख द्रोणियाँ निम्नलिखित हैं

1. **फिलीपाइन द्रोणी**- फिलीपाइन्स द्वीप के पूर्व में जापान के दक्षिण से प्रारम्भ होकर 5° उत्तरी अक्षांश तक 5000 से 6000 मीटर की गहराई तक विस्तृत पायी जाती है।

2. **फिजी द्रोणी**- फिजी द्वीप के दक्षिण में 22° 32° द० अक्षांशों के मध्य विस्तृत है तथा इसकी गहराई 4000 मीटर में अधिक है।

3. **पूर्वी आस्ट्रेलियन द्रोणी**- आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट तथा न्यूजीलैण्ड कटक के मध्य वृत्ताकार रूप में पायी जाती है। उत्तरी भाग 5000 मीटर से अधिक गहरा है।

4. **दक्षिण आस्ट्रेलियन द्रोणी** – इसे जेफ्रीज द्रोणी भी कहा जाता है, जो कि आस्ट्रेलिया के द० में लम्बाकार रूप में 5000 मीटर से अधिक गहराई में विस्तृत है।

5. **पीरू-चिली द्रोणी**- पीरू तट के पश्चिम में 4000 मीटर की गहराई तक फैली है। यह एक चौड़ी तथा विस्तृत द्रोणी है।

6. **दक्षिण-प्रशान्त द्रोणी** - एक लम्बी बेसिन है जो 20° द० से 50° द० अक्षांशों एवं 180° 129 प० देशान्तरों के मध्य फैली है । 10,047 मीटर गहरा करमाडेक खडड् (trench) इस बेसिन के पश्चिम में अवस्थित है।

7. **प्रशान्त-अण्टार्कटिक बेसिन** - चिली तट के दक्षिण पश्चिम में 40° द० से 60° द० अक्षांशों के बीच अवस्थित है। इसका विस्तार 130° प० देशान्तर तक है।

### 4.3.4 महासागरीय गर्त (Oceanic Deeps) तथा खडड् (Trenches)

प्रशान्त महासागर में अभी तक 32 गर्त की खोज की गयी है। ये गर्त या तो द्वीपीय चापों (island ares) या पर्वतीय श्रृखलाओं के समान्तर पाये जाते हैं। स्मरणीय है कि प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भागों में इन गर्तों की अधिकता मिलती है। इन गर्तों में प्रमुख हैं- अल्यूशियन गर्त, टस्करोरा गर्त, जापान गर्त, स्वायर गर्त, फिलीपाइन गर्त (इमडेन गर्त सबसे गहरी), नीरो गर्त, टोंगा करमाडेक गर्त, पीरू-चिली गर्त, मरे गर्त, रिक्यू गर्त, बुक गर्त, बेली गर्त, प्लानेट गर्त आदि ।

**सारणी 4.1 प्रशान्त महासागर के प्रमुख गर्त तथा खडड्**

| गर्त का नाम | गहराई (मीटर में) |
|---|---|
| मेरियाना | 11,022 |
| टोंगा | 10,882 |
| क्यूराइल | 10,498 |
| फिलीपाइन | 10,475 |
| करमाडेक | 10,047 |
| पेरू-चिली | 8,025 |
| अल्यूशियन | 7,679 |
| मध्य अमेरिका | 6,552 |
| रिक्यू | 6,395 |

महासागरीय खडड़ों की उत्पत्ति महासागरीय खडड़ों एवं गर्तों की उत्पत्ति अभिसारी प्लेटों के संचलन तथा बेनीऑफ मण्डल के सहारे इन दो प्लेटों के क्षेपण (subduction) के कारण जनित भूविवर्तनिक

क्रियाओं (geotectonic activities) से सम्बन्धित है। जापान खडड् की उत्पत्ति के निम्न उदाहरण द्वारा प्रशान्त महासागर के कई खडड़ों तथा गर्तों की सुस्पष्ट व्याख्या हो जाती है।

जापान का होन्शू द्वीप पूर्व में जापान खडड् तथा पश्चिम में जापान सागर से घिरा है। इस द्वीप के पश्चिमी भाग में पूर्वी भाग की तुलना में ज्वालामुखी क्रिया अधिक होती है। इस द्वीप पर बेसाल्ट एवं एण्डेसाइट का भारी जमाव पाया जाता है। जबकि द्वीप के दोनों ओर रूपान्तरित शैल की मेखला पायी जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्लेट संचलन (plate movement) के दौरान प्रशान्त महासागरीय प्लेट के नितल (floor) का जापान द्वीप के पूर्वी भाग की ओर महासागरीय क्रस्ट के नीचे क्षेपण (subduction) हो गया जिस कारण जापान खडड् का निर्माण हो गया। प्लेट टेक्टानिक सिद्धान्त के अनुसार प्लेट का क्षेपित भाग जब मैण्टिल में 100 किमी० से अधिक गहराई तक पहुँच जाता है तो उच्च तापमान के कारण पिघलने लगता है। इस तरह से निर्मित मैगमा जापान खडड़ से 200 किमी० की दूरी पर ऊपर उठता है तथा ज्वालामुखी उद्भव के रूप में प्रकट होता है। यह प्रक्रिया आज भी चल रही है।

**4.4 प्रशान्त महासागर के द्वीप (Islands )**

प्रशान्त महासागर में स्थित कुल द्वीपों की अनुमानित संख्या लगभग 20,000 है, किन्तु उनका सम्पूर्ण क्षेत्रफल अपेक्षाकृत कम है। प्रशान्त महासागर के दोनों तटों (पूर्वी तथा पश्चिमी) के समानान्तर वलित पर्वतों की श्रृंखलायें पायी जाती हैं। इस कारण तट से वितलीय मैदानों (abyssal plains) की ओर ढाल अत्यन्त तीव्र हो गया है। प्रशान्त महासागर का नितल (floors) लगभग सपाट तथा विस्तृत है जिस पर कई टीले (swells), उभार (rise), सागर चौकी या टीले (seamounts), गर्त तथा खडड़ पाये जाते हैं प्रशान्त महासागर में सर्वाधिक द्वीप (2000 से अधिक) मिलते हैं। पश्चिमी प्रशान्त महासागर के बड़े द्वीप संरचनात्मक दृष्टि से मुख्य भूमि (main land) के ही जलमग्न भागों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उल्लेखनीय है कि पश्चिमी तट के पास द्वीपों, द्वीप चापों (island ares) तथा द्वीप तोरण island festoons) की भरमार है जबकि पूर्वी तट पर इनकी संख्या कम है।

प्रशान्त महासागर के द्वीपों को निम्न 3 वर्गों में विभाजित किया जाता है:

(1) **महाद्वीपीय द्वीप**: अल्यूशियन द्वीप, कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया तट के द्वीप तथा चिली के पास के द्वीप आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(2) **द्वीपचाप तथा तोरण** क्युराइल, जापान द्वीप समूह, फिलीपाइन्स तथा इण्डोनेशिया प्रमुख उदाहरण हैं।

(3) **बिखरे लघु द्वीप** इन द्वीपों को पुनः 2 प्रमुख वर्गों में रखा जाता है:

- प्रजातीय समूहों (racial groups ) पर आधारित तीन प्रमुख द्वीप समूह हैं (चित्र 4.2):

  (अ) **मेलानेशिया** - मेलानेशिया समूह के द्वीप माइक्रोनेशिया समूह के दक्षिण में स्थित हैं। इनमें अधिकांश प्रवाल द्वीप हैं। विस्मार्क द्वीप समूह, सालोमन, न्यू हेब्रीडीज (New Hebrides), कैलीडोनियाँ तथा फिजी मुख्य द्वीप हैं। न्यूगिनी को भी इसी समूह में सम्मिलित किया जाता है।।

  (ब) **माइक्रोनेसिया** - माइक्रोनेशिया समूह के बहुसंख्यक छोटे-छोटे द्वीप 180° देशान्तर के पश्चिम तथा भूमध्य रेखा से उत्तर स्थित हैं। लगभग सभी द्वीप प्रवाल निर्मित हैं। मेरियाना, मार्शल, कैरोलिना, गिलबर्ट तथा एलिस द्वीप समूहों को प्रमुखता प्राप्त है।

**चित्र 4.2: मेलानेशिया, माइक्रोनेसिया, पोलीनेसिया द्वीप समूह**

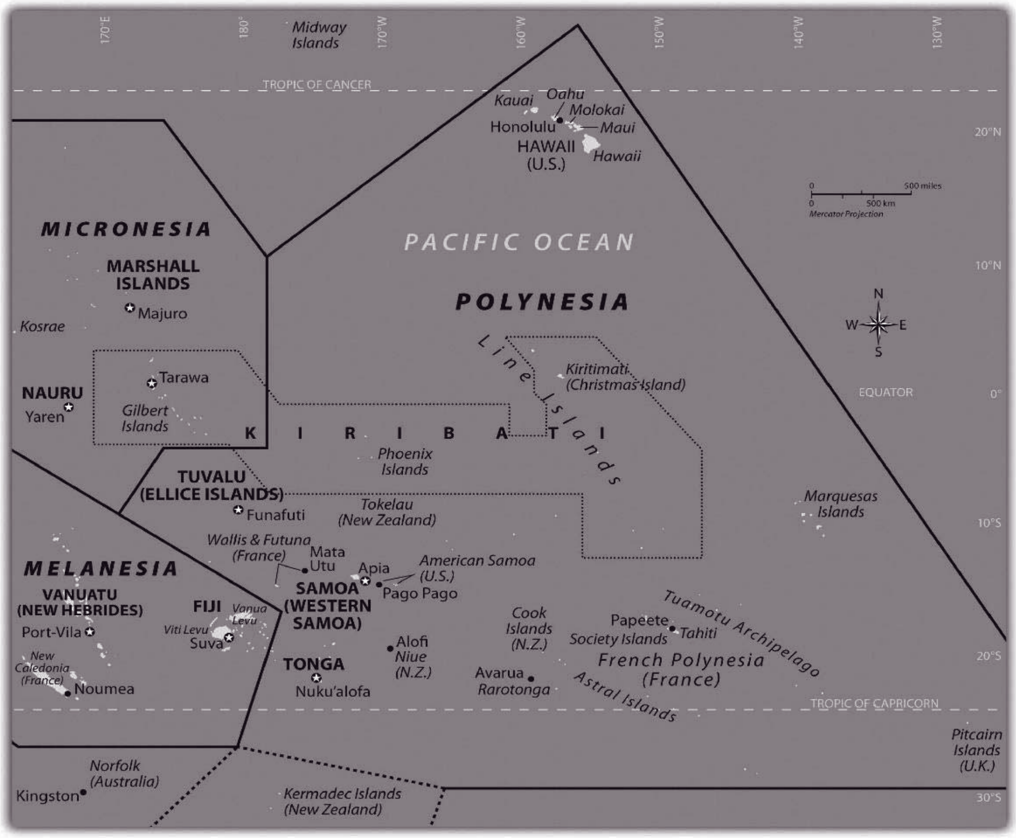


स्रोत: https://saylordotorg.github.io/

  (स) **पोलीनेसिया**- पोलीनेशिया समूह के सभी द्वीप एक ऐसे विशाल त्रिभुजाकार क्षेत्र में पाये जाते हैं, जिसके उत्तर में हवाई द्वीपपुंज, दक्षिणपूर्व में ईस्टर द्वीप तथा दक्षिणपश्चिम में न्यूजीलैंड स्थित है। इस समूह के विभिन्न द्वीपों में फीनिक्स द्वीपसमूह, समोआ, टोंगा, कुक द्वीपपुंज,

सोसाइटी द्वीपपुंज, तुआमोटू (Tuamotu) तथा मारकिसास (Marquesas) द्वीप विशेष उल्लेखनीय हैं।

- ज्वालामुखी पदार्थों तथा प्रवाल भित्तियों से निर्मित द्वीप, यथा हवाई द्वीप (ज्वालामुखी द्वीप), फिजी, फौनाफुटी, एलिस आदि (प्रवाल द्वीप)।

ज्ञातव्य है कि प्रशान्त महासागर के द्वीपों का वितरण असमान है और उनमें से अधिकांश कर्क और मकर रेखाओं के बीच में स्थित हैं। पश्चिमी प्रशान्त में द्वीपों की संख्या सर्वाधिक है।

## 4.5 सारांश

प्रशांत महासागर पृथ्वी पर सबसे बड़ा और गहरा महासागर है, जो लगभग 63.8 मिलियन वर्ग मील या पृथ्वी की सतह का लगभग एक तिहाई क्षेत्र पर विस्तृत है। यह संयुक्त रूप से पृथ्वी के सभी भूभागों से बड़ा है और पृथ्वी के समुद्र के पानी का लगभग आधा हिस्सा रखता है। नितल का उच्चावच बेहद विविधतापूर्ण है। इस महासागर में असंख्य छोटे बड़े द्वीप पाए जाते हैं जिनकी उत्पत्ति भी अलग-अलग कारणों से हुई है।

## अभ्यास प्रश्न

1. प्रशान्त महासागर के आकार एवं विस्तार का वर्णन कीजिये।
2. प्रशान्त महासागर का नितल के उच्चावच का वर्णन कीजिये।
3. प्रशान्त महासागर के प्रमुख द्वीपों के वर्णन कीजिये।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.
- साइमन विनचेस्टाइन (2015). पैसिफिक: द ओसियन ऑफ़ द फ्यूचर, विलियम कोलिन्स प्रकाशन.


**इन्टरनेट स्त्रोत**


1. https://saylordotorg.github.io/text_world-regional-geography-people-places-and-globalization/s16-01-the-pacific-islands.html (27/03/2023 को रिट्रीव किया गया)
2. https://kids.britannica.com/students/article/Pacific-Ocean/276242 (27/03/2023 को रिट्रीव किया गया)

# इकाई 5

# हिन्द महासागर: आकार एवं विस्तार, हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच, तटवर्ती समुद्र

---

## इकाई की रूपरेखा


| | | |
|---|---|---|
| 5.0 | | प्रस्तावना |
| 5.1 | | उद्देश्य |
| 5.2 | | हिन्द महासागर का आकार एवं विस्तार |
| | 5.2.1 | हिन्द महासागर का पश्चिमी भाग |
| | 5.2.2 | हिन्द महासागर का पूर्वी भाग |
| | 5.2.3 | हिन्द महासागर का मध्य भाग |
| 5.3 | | हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच |
| | 5.3.1 | मग्न तट |
| | 5.3.2 | मध्यवर्ती कटक |
| | 5.3.3 | महासागरीय द्रोणियां |
| | 5.3.4 | महासागरीय गर्त |
| 5.4 | | हिन्द महासागर के द्वीप |
| 5.5 | | सीमाांत या तटवर्ती समुद्र |
| 5.6 | | सारांश |
| | | अभ्यास प्रश्न |
| | | सन्दर्भ ग्रन्थ |

# इकाई 5: हिन्द महासागर- आकार एवं विस्तार, हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच , तटवर्ती समुद्र

## 5.0 प्रस्तावना

हिंद महासागर दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा महासागर है, जिसका क्षेत्रफल लगभग 70.56 मिलियन वर्ग किलोमीटर (27.24 मिलियन वर्ग मील) है। यह उत्तर में एशिया, पूर्व में ऑस्ट्रेलिया, पश्चिम में अफ्रीका और दक्षिण में दक्षिणी महासागर (या अंटार्कटिका) से घिरा है। हिंद महासागर का नाम भारत के नाम पर रखा गया है, जो इस महासागर के उत्तर में स्थित है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, इंडोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका और मेडागास्कर जैसे कई देशों के लिए हिन्द महासागर एक महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग है। हिंद महासागर ने दुनिया के इतिहास में विशेष रूप से व्यापार, प्रवास और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के मामले में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

## 5.1 उद्देश्य

पांचवी इकाई "हिन्द महासागर- आकार एवं विस्तार, हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच, तटवर्ती समुद्र" के अध्ययन के उपरांत आप:

- हिंद महासागर के आकार एवं विस्तार का वर्णन कर सकेंगे।
- हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच की विविधता को समझ सकेंगे।
- हिंद महासागर के तटवर्ती समुद्रों की अवस्थिती तथा उनके महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।

## 5.2 हिन्द महासागर का आकार एवं विस्तार (Shape and Size of Indian Ocean)

हिन्द महासागर क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का तीसरा बड़ा महासागर है, क्षेत्रफल में प्रशान्त महासागर तथा अन्ध महासागर से छोटा है, परन्तु यह चारों ओर से महाद्वीपीय भागों से घिरा है । उत्तर में भारत, पाकिस्तान तथा ईरान, पूरब में आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया का सुन्डा द्वीप तथा मलाया प्रायद्वीप; पश्चिम में

अरब प्रायद्वीप तथा अफ्रीका इसकी स्थल सीमा निर्धारित करते हैं। दक्षिण-पश्चिम में अफ्रीका के दक्षिणी सिरे के दक्षिण में यह अटलान्टिक महासागर से मिलता है। पूर्व एवं दक्षिण - पूर्व में यह प्रशान्त महासागर से मिला हुआ है। उत्तर में प्रायद्वीपीय भारत हिन्द महासागर को दो भागों-बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में विभक्त करता है। दक्षिण में हिन्द महासागर अत्यधिक चौड़ा हो गया है।

हिंद महासागर की महासागरीय सीमा को परिभाषित करने का प्रश्न जटिल है और अनसुलझा है। सबसे स्पष्ट सीमा और सबसे आम सहमति यह है कि अटलांटिक महासागर के साथ, जो अफ्रीका के दक्षिणी सिरे पर केप अगुलहास से चलता है, दक्षिण में $20^0$ पूर्व देशांतर के साथ है। प्रशांत महासागर के साथ दक्षिण-पूर्व की सीमा आमतौर पर तस्मानिया द्वीप पर दक्षिण पूर्व केप से $147^0$ पूर्व देशांतर के साथ खींची जाती है। तस्मानिया और ऑस्ट्रेलिया के बीच का बास जलडमरूमध्य, कुछ लोगों द्वारा हिंद महासागर का हिस्सा और दूसरों द्वारा प्रशांत का हिस्सा माना जाता है। पूर्वोत्तर सीमा को परिभाषित करना सबसे कठिन है। सबसे आम तौर पर स्वीकृत एक ऑस्ट्रेलिया में केप लंदनडेरी से उत्तर-पश्चिम में तिमोर सागर के पार, लेसर सुंडा द्वीप समूह और जावा के दक्षिणी किनारे पर और फिर सुंडा जलडमरूमध्य से सुमात्रा द्वीप के तट तक चलता है। सुमात्रा और मलय प्रायद्वीप के बीच सीमा आमतौर पर सिंगापुर जलडमरूमध्य के पार खींची जाती है। हिंद महासागर की दक्षिणी सीमा पर कोई सार्वभौमिक सहमति नहीं है। सामान्य तौर पर, इसे दक्षिण की ओर 60 ° दक्षिण अक्षांश तक सीमांकित किया गया है।

हिंद महासागर प्रमुख चोकपॉइंट्स में बाब एल मंडेब, स्ट्रेट ऑफ होर्मुज, स्ट्रेट ऑफ मलक्का, स्वेज नहर तक दक्षिणी पहुंच और लोम्बोक स्ट्रेट शामिल हैं। सागरों में अंडमान सागर, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी, ग्रेट ऑस्ट्रेलियन बाइट, एडन की खाड़ी, ओमान की खाड़ी, लक्षद्वीप सागर, मोजाम्बिक चैनल, फारस की खाड़ी, लाल सागर, मलक्का जलडमरूमध्य और अन्य सहायक जल निकाय शामिल हैं।समस्त महासागरों के कुल क्षेत्रफल का 20% भाग इस महासागर में सम्मिलित किया जाता है। इस महासागर की औसत गहराई 4000 मीटर के आस-पास है। जानसन महोदय ने हिन्द महासागर को प्रादेशिक विशेषताओं के आधार पर तीन खण्ड में विभक्त किया है –

### 5.2.1 हिन्द महासागर का पश्चिमी भाग (Western Sector of Indian Ocean)

हिंद महासागर का पश्चिमी क्षेत्र महासागर का वह हिस्सा है जो भारतीय उपमहाद्वीप और अरब प्रायद्वीप के पश्चिम में स्थित है। इसमें एक बड़ा क्षेत्र शामिल है, जिसमें लाल सागर, अदन की खाड़ी, अरब सागर एवं अफ्रीका के पूर्वी तट के पास विस्तृत है। इसकी औसत गहराई 2000 फैदम (12000 फीट) से कम है, तथा इसमें कई द्वीप पाये जाते हैं।

यह क्षेत्र वैश्विक व्यापार के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें यूरोप, एशिया और अफ्रीका को जोड़ने वाली दुनिया की कुछ सबसे व्यस्त शिपिंग लेन इसमें शामिल हैं। विशेष रूप से विश्व में कच्चे तेल के परिवहन में पश्चिमी हिन्द महासागर की महत्वपूर्ण भूमिका है। हिंद महासागर का पश्चिमी क्षेत्र भी विभिन्न पर्यावरणीय और भू-राजनीतिक चुनौतियों के अधीन है, जैसे कि जलवायु परिवर्तन, समुद्री डकैती, क्षेत्रीय विवाद और संसाधनों की कमी।

### 5.2.2 हिन्द महासागर का पूर्वी भाग (Eastern Sector of Indian Ocean)

हिंद महासागर का पूर्वी क्षेत्र महासागर का वह हिस्सा है जो भारतीय उपमहाद्वीप और बंगाल की खाड़ी के पूर्व में स्थित है। इसमें अंडमान सागर, मलक्का जलडमरूमध्य, जावा सागर, तिमोर सागर और ऑस्ट्रेलिया के आसपास के पानी सहित एक विशाल क्षेत्र शामिल है। पूर्वी भाग अत्यन्त गहरा है ( 3000 फैदम) तथा महाद्वीपीय मग्नतट संकरे तथा तीव्र ढाल वाले हैं।

यह क्षेत्र वैश्विक व्यापार का एक महत्वपूर्ण केंद्र भी है, जहां से दुनिया की कुछ सबसे व्यस्त शिपिंग लेन गुजरती हैं। हिंद महासागर का पूर्वी क्षेत्र तेल, प्राकृतिक गैस और खनिजों सहित प्राकृतिक संसाधनों से भी समृद्ध है, जिसने हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण निवेश और विकास को आकर्षित किया है।

### 5.2.3 हिन्द महासागर का मध्य भाग (Middle Sector of Indian Ocean)

हिंद महासागर का मध्य भाग वह क्षेत्र है जो महासागर के पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों के बीच स्थित है। इसमें सेशेल्स, मॉरीशस, कोमोरोस और क्षेत्र के अन्य द्वीपों के आसपास का पानी शामिल है। हिन्द महासागर के इस हिस्से की विशेषता गहरे पानी और समुद्री कटक हैं, जैसे चागोस-लक्षद्वीप कटक और $90^0$ ईस्ट कटक। मध्यवर्ती भाग उत्थित कटक के रूप में हैं, जिसके सहारे अनेक द्वीप पाये जाते हैं।

हिंद महासागर का मध्य भाग भी कई पर्यावरणीय और भू-राजनीतिक चुनौतियों के अधीन है। साथ ही साथ यह भाग चक्रवात और सूनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के भी प्रभावित है। यह क्षेत्र भारत, चीन और मालदीव जैसे देशों के बीच क्षेत्रीय विवादों का केंद्र बिंदु है।

## 5.3 हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच (Bottom Relief of the Indian Ocean)

हिंद महासागर के नितल का उच्चावच जटिलताओं से भरा है जिसमे अनेक आश्चर्यजनक विशेषताएं शामिल हैं। हिंद महासागर की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक मध्य-महासागरीय कटक है, जो पानी के नीचे एक बड़ी पर्वत श्रृंखला है जो समुद्र के केंद्र के साथ-साथ उत्तर-पश्चिम से लेकर दक्षिण-पूर्व दिशा में विस्तृत है। हिंद महासागर में कई गहरी खाइयाँ भी हैं, जिनमें जावा ट्रेंच एवं सुंडा ट्रेंच शामिल हैं, जो पृथ्वी के सबसे गहरे स्थानों में से एक हैं। इसके अलावा, महासागर कई सी-माउंट और पानी के नीचे के ज्वालामुखियों का घर है। आगे हिन्द महासागर के नितल का विस्तार से वर्णन दिया गया है।

### 5.3.1 मग्न तट (Continental Shelf)

हिन्द महासागर के मग्नतटों में चौड़ाई की दृष्टि से पर्याप्त विविधता मिलती है। इस महासागर के मग्न तट प्रायः सँकरे हैं जिनकी औसत चौड़ाई 96 किलोमीटर है। किन्तु अरब सागर, अन्डमान सागर तथा बंगाल की खाड़ी में मग्न तटों की चौड़ाई 192 किमी से 208 किमी तक है। अफ्रीका के पूर्वी भाग में भी चौड़े मग्नतट मिलते हैं तथा इसका अधिकतम विस्तार मालागासी (मैडागास्कर) के पास होता है। जावा तथा सुमात्रा के पास इनकी चौड़ाई 160 किमी. ही है। आस्ट्रेलिया तथा न्यूगिनी द्वीप के मध्य मग्न तट लगभग 960 किमी तक चौड़े हैं। मग्र तटों के बाहरी किनारे पर समुद्र की गहराई 50 मीटर से 200 मीटर तक नापी गई है। उत्तरी पश्चिमी आस्ट्रेलिया के समीप मग्न तटों के बाहरी किनारे 300 से 400 मीटर तक गहरे हैं। हिम की क्रियाओं के कारण अन्टार्कटिका से संलग्न मग्न तटों की संरचना अत्यधिक जटिल हो गयी है। यहाँ मग्न तटों के भीतरी किनारे 150 से 200 मीटर गहरे हैं, जब कि इनके बाहरी किनारे की ओर समुद्र की गहराई 400 से 500 मीटर तक पायी जाती है।

उष्ण कटिबन्धीय पेटी में मग्नतटों पर विभिन्न प्रकार की प्रवाल भित्तियाँ (coral reefs) पायी जाती हैं जैसे, तटीय प्रवाल भित्ति, अवरोधक प्रवाल भित्ति एवं वलयाकार प्रवाल भित्ति ( atolls)। मग्न तटों के

आगे महासागरीय मग्न ढाल अत्यधिक तीव्र हैं जिनका ढाल 10° से 30° तक है। इन मग्न ढालों पर अनेक घाटियाँ तथा कैनियन आदि पाये जाते हैं।

### 5.3.2 मध्यवर्ती कटक (Central Ridge)

हिन्द महासागर में प्रायद्वीपीय भारत के दक्षिण से प्रारम्भ होकर मध्यवर्ती कटक दक्षिण में अण्टार्कटिका तथा क्रमबद्ध श्रृंखला के रूप में उत्तर से दक्षिण दिशा में फैला है। कई स्थानों पर इस कटक से शाखाएं निकलकर महाद्वीपों की ओर चली जाती हैं। जहाँ कहीं भी यह कटक या उसकी शाखायें सागर तल के ऊपर प्रकट होती हैं, वहाँ पर अनेक द्वीप पाये जाते हैं (चित्र 5.1)।

**चित्र 5.1: हिन्द महासागर के प्रमुख कटक तथा बेसिन**

स्रोत: https://www.freeworldmaps.net/ocean/indian/

**मुख्य कटक** उत्तर में प्रायद्वीपीय भारत के मग्नतट से प्रारम्भ होता है, जहाँ पर इसकी चौड़ाई 320 किमी० हो जाती है। इस भाग को लक्षद्वीप-चैगोस कटक के नाम से जाना जाता है। इस कटक का पुनः दक्षिण की ओर विस्तार होता है तथा भूमध्यरेखा एवं 30° द० अक्षांश के मध्य इसका नाम चैगोस - सेण्टपाल कटक

हो जाता है, जिसकी चौड़ाई भी 320 किमी० पायी है। आगे और दक्षिण की ओर बढ़ने पर 30° से 50° द० अक्षांशों के मध्य इस कटक की चौड़ाई 1600 किमी० हो जाती हैं। जहाँ इसे एमस्टर्डम सेण्ट पाल-पठार (कटक) नाम से सम्बोधित किया जाता है। 50° द० अक्षांश के दक्षिण में इस कटक की दो शाखाएं हो जाती है। पश्चिम में करगुलेन गासबर्ग कटक 48° से 63° द० अक्षांशों के मध्य विस्तृत है। पूर्वी शाखा इण्डियन-अण्टार्कटिक कटक के नाम से विख्यात है।

मुख्य कटक की शाखाएं स्थान-स्थान पर मुख्य कटक से निकलकर महाद्वीपीय तटों की ओर चली गयी हैं। इनमें से अग्रलिखित महत्वपूर्ण शाखाएँ हैं :

- 5° द ० अक्षांश के पास सोकोत्रा-चैगोस कटक अलग होकर उ० प० दिशा में पूर्वी अफ्रीका के गुर्दाकुई अन्तरीप तक चला गया है।
- 18° द० अक्षांश के पास सेचलीस-कटक मध्यवर्ती कटक से अलग होकर सोकोत्रा-चैगोस कटक के समानान्तर पूर्वी अफ्रीका की ओर अग्रसर हो जाता है।
- मालागासी मग्नतट से प्रारम्भ होकर मालागासी कटक दक्षिण दिशा की ओर फैला है तथा 48° द० अक्षांश के पास यह प्रिन्स-एडवर्ड-क्रोजेट कटक के नाम से प्रसिद्ध हैं। बंगाल की खाड़ी में इरावदी के मुहाने से प्रारम्भ होकर निकोबार द्वीप तक अण्डमान-निकोबार कटक का विस्तार पाया जाते है भारत तथा अफ्रीका के मध्य कार्ल्सबर्ग कटक का पता लगाया गया है।

कटक पर स्थित द्वीप - जहाँ कहीं भी ये कटक सागर से ऊपर आ गये हैं, वहाँ पर कई प्रकार के द्वीप पाये जाते हैं। मध्यवर्ती कटक के ऊपर क्रम से लक्षदीव, मालदीव, चैगोस, न्यू एमस्टर्डम, सेण्ट पाल, करगुलेन आदि द्वीप पाये जाता हैं। अन्य बिखरे कटकों पर स्थित द्वीपों में सेचलीस, प्रिन्स एडवर्ड, क्रोजेट आदि प्रमुख हैं।

### 5.3.3 महासागरीय द्रोणियां (Basins)

हिन्द महासागर के नितल के मध्य भाग में अनेक श्रेणियाँ पाई जाती हैं, जिनसे यह महासागर तीन स्पष्ट भागों में विभक्त हो गया है। (i) अफ्रीका वाला भाग (ii) आस्ट्रेलियाई भाग (ii) अन्टार्कटिका वाला भाग। इनमें से प्रत्येक भाग श्रेणियों एवं अन्तः समुद्री पर्वत मालाओं के द्वारा अनेक बेसिनों में बँट गया है, इनमें से निम्न द्रोणियाँ उल्लेखनीय हैं :

i. **ओमान द्रोणी:** ओमान की खाड़ी के सामने विस्तृत मग्नतट पर 3,658 मीटर की गहराई तक फैली है।

ii. **अरेबियन द्रोणी-** चैगोस कटक तथा सोकोत्रा चैगोस कटक के मध्य वृत्ताकार रूप में अफ्रीका तथा प्रायद्वीपीय भारत के तटों के बीच 3,600 से 5,486 मीटर की गहराई तक विस्तृत है। कार्ल्सबर्ग कटक द्वारा इसके दो भाग (पूर्वी तथा पश्चिमी) हो जाते हैं।

iii. **सोमाली द्रोणी**- सोकोत्रा, चैगोस, सेण्टपाल तथा सेचलीस कटकों के मध्य स्थित है। इसकी गहराई 3,600 मीटर है।

iv. **मारीशस द्रोणी** -एक लम्बी तथा चौड़ी द्रोणी है, मालागासी कटक तथा सेण्टपाल कटक के मध्य 10° द० से 50° ५० अक्षांशों के मध्य स्थित है। गहराई 3,600 से 5,486 मीटर के मध्य है।

v. **नैटाल द्रोणी** - मालागासी (मैडागास्कर) कटक तथा द० अफ्रीका के पूर्वी तट के मध्य 3,600 मीटर की गहराई तक पायी जाती है।

vi. **अटलाण्टिक-भारतीय अण्टार्कटिक द्रोणी**- वास्तव में यह आन्ध्र महासागर की अटलांटिक-अण्टार्कटिका द्रोणी का ही विस्तृत भाग है, जो कि प्रिन्स एडवर्ड क्रोजेट कटक तथा अण्टार्कटिका महाद्वीप के मध्य 5,486 मीटर की गहराई तक विस्तृत है।

vii. **अण्डमान-द्रोणी**- बंगाल की खाड़ी में अण्डमान कटक के पूर्व में 1,800 से 3,600 मीटर तक फैली है।

viii. **भारत-आस्ट्रेलिया द्रोणी**- जो कि **कोकोस-कीलिंग द्रोणी** के नाम से भी प्रसिद्ध है मध्यवर्ती कटक के पूर्व में स्थित सर्वाधिक विस्तृत द्रोणी है जो कि 10°30 से 50° द० अक्षांश तक विस्तृत है। इसकी गहराई 3,600 से 5,486 मीटर के बीच है।

ix. **पूर्वी भारत- अण्टार्कटिका द्रोणी-** तीन ओर से मध्यवर्ती कटक एवं दक्षिण में अण्टार्कटिका द्वारा घिरी है।

### 5.3.4 महासागरीय गर्त (Deeps )

हिंद महासागर में कुछ महत्वपूर्ण महासागरीय गर्त हैं, जो पृथ्वी की सतह पर सबसे गहरे स्थलों में से एक हैं। हिंद महासागर में जावा ट्रेंच और सुंडा ट्रेंच कई गहरे महासागरीय गर्त हैं। जावा ट्रेंच, पूर्वी हिंद महासागर में स्थित है, जो हिंद महासागर का सबसे गहरा गर्त है, जिसकी गहराई 7,725 मीटर (25,344

फीट) है। सुंडा ट्रेंच, ऑस्ट्रेलिया के उत्तर-पश्चिम में स्थित, हिंद महासागर का दूसरा सबसे गहरा गर्त है, जिसकी गहराई 7,258 मीटर (23,812 फीट) है। हिंद महासागर के भूविज्ञान और भौतिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए ये महासागरीय गर्त महत्वपूर्ण हैं।

## 5.4 हिन्द महासागर के द्वीप (Islands)

अटलान्टिक तथा प्रशान्त महासागर की तुलना में हिन्द महासागर में द्वीपों की संख्या बहुत कम है। कुछ बड़े द्वीपों को महाद्वीपों का ही टुकड़ा माना जाता है। ऐसे द्वीपों में मेडागास्कर एवं श्रीलंका प्रमुख हैं। गार्डाफुयी अन्तरीप से थोड़ी दूर स्थित सोकोत्रा, जंजीबार तथा कोमोरो आदि छोटे द्वीप भी इसी श्रेणी में आते हैं। सेशेल्स द्वीप भी महाद्वीप का एक टुकड़ा है। अन्डमान-निकोबार द्वीप पुंज जो बंगाल की खाड़ी में स्थित हैं अराकान योमा की बाहरी श्रेणियों पर स्थित हैं। इनके अतिरिक्त, कुछ ऐसे छोटे द्वीप हैं जो अन्तःसमुद्री श्रेणियों के ही जल के वाहर निकले हुये भागों पर स्थित हैं; जैसे लक्काद्वीप तथा मालडिव, तथा मध्य महासागरीय श्रेणी पर स्थित दक्षिणी हिन्द महासागर के अन्य छोटे द्वीप। ज्वालामुखी निर्मित अन्य द्वीपों में क्रोजेट द्वीप, प्रिन्स एडवर्ड तथा न्यू एम्सटर्डम तथा सन्तपाल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस महासागर के अयनवर्ती क्षेत्र में प्रवाल भित्तियों से निर्मित द्वीप मिलते हैं, जिनमें लक्कादिव एवं मालदीव द्वीप पुंज, अमिरान्ते, फर्कुहर, कोकोस तथा चागोस द्वीप समूह विशेष महत्वपूर्ण हैं। प्रवाल भित्तियों से घिरे हुये ज्वालामुखी निर्मित द्वीपों में मस्कार्नेस, कोमोरो तथा अन्य छोटे-छोटे द्वीप महत्त्वपूर्ण हैं।

हिन्द महासागर के पूर्वी भाग का नितल सर्वत्र गहरा है, जिससे इस भाग में द्वीपों का प्रायः अभाव है। कोकोस द्वीपसमूह तथा क्रिसमस द्वीप इसके अपवाद हैं। मेडागास्कर के पूर्व स्थित मारीशस तथा रीयूनियन द्वीप तीव्र ढाल वाले ज्वालामुखी शंकु हैं। कुछ प्रमुख द्वीपों का संक्षिप्त वर्णन निम्नवत है:

i. **मेडागास्कर:** दुनिया का चौथा सबसे बड़ा द्वीप, मेडागास्कर अपने अद्वितीय वन्य जीवन के लिए जाना जाता है, जिसमें लेमूर और गिरगिट, साथ ही इसके आश्चर्यजनक समुद्र तट और वर्षा वन शामिल हैं।

ii. **मॉरीशस:** एक छोटा द्वीप राष्ट्र जो एक लोकप्रिय पर्यटन गंतव्य है, मॉरीशस अपने खूबसूरत समुद्र तटों, प्रवाल भित्तियों और लक्ज़री रिसॉर्ट्स के लिए जाना जाता है।

iii. **सेशेल्स:** एक अन्य लोकप्रिय पर्यटन गंतव्य, सेशेल्स 100 से अधिक द्वीपों का एक समूह है जो अपनी आश्चर्यजनक प्राकृतिक सुंदरता, क्रिस्टल-क्लियर वाटर और जीवंत समुद्री जीवन के लिए जाना जाता है।

iv. **मालदीव:** 1,000 से अधिक प्रवाल द्वीपों से बना, मालदीव अपने आश्चर्यजनक समुद्र तटों, प्रवाल भित्तियों और लक्ज़री रिसॉर्ट्स के लिए जाना जाता है जो ओवरवाटर विला प्रदान करते हैं।

v. **ज़ांज़ीबार:** तंजानिया का एक अर्ध-स्वायत्त क्षेत्र, ज़ांज़ीबार अपने खूबसूरत समुद्र तटों, मसाला बाजारों और ऐतिहासिक स्टोन टाउन के लिए जाना जाता है।

vi. **रीयूनियन द्वीप:** मेडागास्कर के पूर्व में स्थित एक फ्रांसीसी विदेशी विभाग, रीयूनियन द्वीप अपने ऊबड़-खाबड़ ज्वालामुखीय इलाके, हरे-भरे जंगलों और खूबसूरत समुद्र तटों के लिए जाना जाता है।

vii. **मैयट:** कोमोरोस द्वीपसमूह में स्थित एक अन्य फ्रांसीसी विदेशी विभाग, मैयट अपने आश्चर्यजनक प्रवाल भित्तियों, लैगून और समुद्र तटों के लिए जाना जाता है।

viii. **सोकोत्रा:** यमन के तट पर स्थित, सोकोत्रा अपने अद्वितीय वनस्पतियों और जीवों के लिए जाना जाता है, जिसमें ड्रैगन के रक्त वृक्ष और सोकोट्रा रॉक गेको शामिल हैं। समुद्री डाकुओं की शरण स्थली के रूप में भी सोकोत्रा कई बार चर्चित रहा है।

ix. **कोमोरोस:** मेडागास्कर और अफ्रीका के बीच स्थित एक छोटा सा द्वीप राष्ट्र, कोमोरोस अपने आश्चर्यजनक समुद्र तटों, ज्वालामुखी चोटियों और अद्वितीय वन्य जीवन के लिए जाना जाता है।

x. **अंडमान और निकोबार द्वीप समूह:** बंगाल की खाड़ी में स्थित 500 से अधिक द्वीपों का एक समूह, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह अपने आश्चर्यजनक समुद्र तटों और अद्वितीय जनजातीय संस्कृतियों के लिए जाना जाता है।

### 5.5 सीमाांत या तटवर्ती समुद्र (Marginal Sea)

हिंद महासागर में कई सीमांत समुद्र हैं, जो मुख्य महासागर से जुड़े हैं लेकिन आंशिक रूप से भू-भाग से घिरे हुए हैं। हिन्द महासागर में सीमान्त सागर अन्य दो महासागरों की अपेक्षा कम पाये जाते हैं। हिंद महासागर के कुछ सीमांत समुद्र निम्नानुसार हैं:

i. **अरब सागर:** अरब सागर भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिम में स्थित है और पश्चिम में अरब प्रायद्वीप और पूर्व में भारतीय प्रायद्वीप से घिरा है। इसमें लगभग 3,862,000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र शामिल है और यह दुनिया के सबसे बड़े सीमांत समुद्रों में से एक है।

ii. **बंगाल की खाड़ी:** बंगाल की खाड़ी भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्व में स्थित है और भारत, बांग्लादेश और म्यांमार से घिरा है। इसमें लगभग 2,172,000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र शामिल है और यह दुनिया की सबसे बड़ी खाड़ी में से एक है।

iii. **लाल सागर:** लाल सागर अरब प्रायद्वीप के पश्चिम में स्थित है और मिस्र, सूडान और इरिट्रिया से घिरा है। इसका क्षेत्रफल लगभग 438,000 वर्ग किलोमीटर है। अर्द्ध-संलग्न उष्णकटिबंधीय बेसिन (Semi-Enclosed Tropical Basin) है, जो उत्तर-पूर्व में अफ्रीका, पश्चिम और पूर्व में अरब प्रायद्वीप से घिरा हुआ है। लंबा और संकीर्ण आकार का बेसिन भूमध्य सागर के मध्य और उत्तर-पश्चिम तथा हिंद महासागर से दक्षिण-पूर्व तक फैला हुआ है। उत्तरी छोर पर यह अकाबा की खाड़ी (Gulf of Aqaba) और स्वेज की खाड़ी (Gulf of Suez) से अलग हो जाता है, जो स्वेज नहर के माध्यम से भूमध्य सागर से जुड़ा हुआ है। दक्षिणी छोर पर यह बाब अल मंदेब (Bab-el-Mandeb) जलडमरूमध्य के द्वारा अदन की खाड़ी और बाहरी हिंद महासागर से जुड़ा हुआ है। यह रेगिस्तान या अर्द्ध-रेगिस्तानी क्षेत्रों से घिटा घिरा है, जिसमें कोई भी बड़ा ताज़े पानी का प्रवाह नहीं है। पिछले 4 से 5 मिलियन वर्षों में लाल सागर ने अपने वर्तमान आकार को प्राप्त किया है। धीमी गति से समुद्री फैलाव इसे भू-गर्भीय रूप से पृथ्वी पर सबसे कम आयु के समुद्री क्षेत्रों के रूप में निर्मित करता है।

iv. **फारस की खाड़ी:** इसमें लगभग 251,000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र शामिल है। फारस की खाड़ी, पश्चिम एशिया में हिंद महासागर का एक विस्तार है, जो ईरान और अरब प्रायद्वीप के

बीच फैला हुआ है। यह अरब सागर की एक भुजा है ; जो दक्षिण-पश्चिमी ईरान और अरब प्रायद्वीप के मध्य स्थित है ।इसके सीमावर्ती देश: इराक, कुवैत, सऊदी अरब, बहरीन, कतर, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान और ईरान आदि है । यह पूर्व में ओमान की खाड़ी एवं होर्मुज जलडमरूमध्य से जुड़ा हुआ है। फारस की खाड़ी विश्व में कच्चे तेल के उत्पादन तथा परिवहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है

v. **अदन की खाड़ी:** अदन की खाड़ी अरब प्रायद्वीप के दक्षिण में स्थित है और उत्तर में यमन और दक्षिण में सोमालिया से घिरा है। इसका क्षेत्रफल लगभग 184,000 वर्ग किलोमीटर है।

vi. **मोजाम्बिक चैनेल**: मोजाम्बिक चैनल का विस्तार लगभग 12°N अक्षांश से मेडागास्कर के दक्षिणी सिरे पर 25°S अक्षांश तक है। मोजाम्बिक चैनल पूरी तरह से पड़ोसी देशों (मोजाम्बिक, मेडागास्कर, कोमोरोस, तंजानिया और फ्राँस शासित द्वीप) के 'अनन्य आर्थिक क्षेत्र' (Exclusive Economic Zone- EEZ) में शामिल है।

**vii.** **अंडमान सागर:** पूर्वोत्तर हिंद महासागर का सीमांत समुद्र है । यह उत्तर में म्यांमार (बर्मा) के इरावदी नदी डेल्टा से घिरा है; पूर्व में प्रायद्वीपीय म्यांमार, थाईलैंड और मलेशिया; सुमात्रा के इंडोनेशियाई द्वीप और मलक्का जलडमरूमध्य द्वारा दक्षिण में; और पश्चिम में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, जो भारत के केंद्र शासित प्रदेश का गठन करते हैं। यह समुद्र, जिसका क्षेत्रफल 308,000 वर्ग मील (798,000 वर्ग किमी) है, इसका नाम अंडमान द्वीप समूह से लिया गया है। अंडमान सागर बंगाल की खाड़ी के पूर्व में स्थित है और पश्चिम में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और पूर्व में म्यांमार और थाईलैंड से घिरा है ।

## 5.6 सारांश

हिंद महासागर दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा महासागर है, जिसका क्षेत्रफल लगभग 70.56 मिलियन वर्ग किलोमीटर है । इसके नितल में एक पूर्ण विकसित मध्य महासागरीय कटक का अस्तित्व पाया जाता है । विश्व भर से पर्यटन को आकर्षित करने वाले मॉरिशस जैसे अनेक द्वीप भी हिन्द महासागर में उपस्थित हैं । इसमें अपेक्षाकृत कम सीमान्त सागर हैं लेकिन इसके कुछ सीमान्त सागर संसाधनों के प्रचुर उपलब्धता के कारण विश्व की भू-राजनीति के केंद्र में रहे हैं ।

**अभ्यास प्रश्न**

1. हिंद महासागर के आकार एवं विस्तार का विवरण प्रस्तुत कीजिये।
2. हिन्द महासागर के नितल का उच्चावच के वर्णन कीजिये।
3. हिंद महासागर के प्रमुख तटवर्ती समुद्रों के नाम बताते हुए उनका संक्षेप में वर्णन कीजिये।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.


**इन्टरनेट स्रोत**


1. https://www.cs.mcgill.ca/~rwest/wikispeedia/wpcd/wp/i/Indian_Ocean.htm (21/03/2023 को रिट्रीव किया गया)
2. https://www.britannica.com/place/Indian-Ocean (27/03/2023 को रिट्रीव किया गया)

# इकाई 6

# अटलांटिक महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल के उच्चावच, अटलांटिक महासागर के द्वीप

## इकाई की रूपरेखा


6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 आकार एवं विस्तार

6.3 अटलांटिक महासागर के नितल का उच्चावच

6.3.1 महाद्वीपीय मग्नतट

6.3.2 मध्य अटलांटिक कटक

6.3.3 महासागरीय द्रोणियां

6.3.4 महासागरीय गर्त तथा खडड्

6.4 सीमान्त सागर

6.5 अटलान्टिक महासागर के द्वीप

6.6 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 6

# अटलांटिक महासागर: आकार एवं विस्तार, नितल के उच्चावच, अटलांटिक महासागर के द्वीप

## 6.0 प्रस्तावना

अटलांटिक महासागर दूसरा सबसे बड़ा महासागर है, जो पृथ्वी की सतह का लगभग पांचवां हिस्सा कवर करता है। ग्रीक पौराणिक कथाओं से प्राप्त महासागर के नाम का अर्थ है "एटलस का सागर।" इस नाम का सबसे पुराना ज्ञात उल्लेख 450 ईसा पूर्व (1 202) के आसपास हेरोडोटस के इतिहास में निहित है। प्रस्तुत अध्याय में अटलांटिक महासागर के आकार एवं विस्तार, नितल के उच्चावच एवं अटलांटिक महासागर के द्वीपों का वर्णन किया गया है।

अटलाण्टिक महासागर बेसिन का विस्तृत अन्वेषण एवं सर्वेक्षण करके सबसे अधिक अध्ययन किया गया है। परिणामस्वरूप अटलाण्टिक बेसिन की आकारिकीय विशेषताओं (morphological characteristics) के विषय में विशद जानकारी सुलभ है।

## 6.1 उद्देश्य

इकाई-6 "अटलांटिक महासागर के आकार एवं विस्तार, नितल के उच्चावच एवं अटलांटिक महासागर के द्वीप" के अध्ययन के उपरांत आप:

1. अटलांटिक महासागर के आकार एवं विस्तार का वर्णन कर सकेंगे।
2. अटलांटिक महासागर के नितल के उच्चावच को समझ सकेंगे।
3. अटलांटिक महासागर के द्वीपों का वर्णन कर सकेंगे।

## 6.2 आकार एवं विस्तार ( Shape and Size)

अटलांटिक महासागर, पृथ्वी की सतह के लगभग पाँचवे हिस्से में विस्तृत है और पूर्व में यूरोप और अफ्रीका को पश्चिम में उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका महाद्वीपों से अलग करता है । यह प्रशांत महासागर के बाद आकार में दूसरे स्थान पर है।

अटलांटिक महासागर आम तौर पर लंबाई के संबंध में अंग्रेजी के एस-आकार (S) की तरह है । यह अपेक्षाकृत संकीर्ण महासागर है जो लम्बाई में अधिक तथा चौड़ाई में कम है । अपने आश्रित समुद्रों के बिना अटलांटिक का क्षेत्रफल लगभग 31,568,000 वर्ग मील (81,760,000 वर्ग किमी) है, और उनके साथ इसका क्षेत्रफल लगभग 32,870,000 वर्ग मील (85,133,000 वर्ग किमी) है । इसकी औसत गहराई (समुद्रों के साथ) 11,962 फीट (3,646 मीटर) है तथा अधिकतम गहराई प्यूर्टो रिको द्वीप के उत्तर में प्यूर्टो रिको ट्रेंच में 27,493 फीट (8,380 मीटर) है।

अटलांटिक महासागर की चौड़ाई में पूर्व से पश्चिम तक काफी भिन्नता है। न्यूफ़ाउंडलैंड और आयरलैंड के बीच यह लगभग 2,060 मील (3,320 किमी) है; आगे दक्षिण में यह फिर से संकीर्ण होने से पहले 3,000 मील (4,800 किमी) से अधिक चौड़ा हो जाता है। जबकि दक्षिण अमेरिका में ब्राजील के केप साओ रोके से अफ्रीका में लाइबेरिया के केप पाल्मास, तक की दूरी केवल 1,770 मील (2,850 किमी) है। सुदूर दक्षिण की ओर यह फिर से व्यापक रूप से विस्तृत हो जाता है और केप हॉर्न और केप ऑफ गुड होप के बीच यह महासागर लगभग 3,200 मील (लगभग 5,200 किमी) चौड़ा है। 60° दक्षिण अक्षांश इसकी दक्षिणी महासागर के साथ सीमा का निर्धारण करता है।

हालांकि यह दुनिया का सबसे बड़ा महासागर नहीं है लेकिन अटलांटिक विश्व का सबसे बड़ा जल निकासी क्षेत्र है । अर्थात महाद्वीपों के जल का निस्तारण अटलांटिक में सबसे ज्यादा होता है । अटलांटिक के दोनों ओर के महाद्वीप इसकी ओर झुके हुए हैं, जिससे दुनिया की कुछ सबसे विशाल नदियोंका जल निकास इसमें होता है; इनमें सेंट लॉरेंस, मिसिसिपी, ओरिनोको, अमेज़ॅन, रियो डी ला प्लाटा, कांगो, नाइजर, राइन, और एल्बे शामिल हैं। इसके साथ साथ और भूमध्यसागर, काला सागर और बाल्टिक सागर में गिरने वाली बड़ी नदियों का जल भी अंतत: इसी में मिलता है। दक्षिण अटलांटिक के विपरीत, उत्तरी अटलांटिक द्वीपों में समृद्ध है तथा इसकी तटरेखा में विविधता है।

अटलांटिक महासागर की उत्तरी लेकिन दक्षिणी सीमाओं को भी परिभाषित करने के लिए विभिन्न सीमाओं का उपयोग किया गया है। विशेष रूप से उत्तर में सीमाओं का निर्धारण अधिक जटिल है क्योंकि कई बार आर्कटिक महासागर को अटलांटिक का आश्रित समुद्र मान लिया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आर्कटिक बेसिन- जो बेरिंग जलडमरूमध्य से लेकर उत्तरी ध्रुव तक स्पिट्सबर्गेन और ग्रीनलैंड तक फैला

**चित्र 5.1 अटलांटिक महासागर: आकार एवं विस्तार**

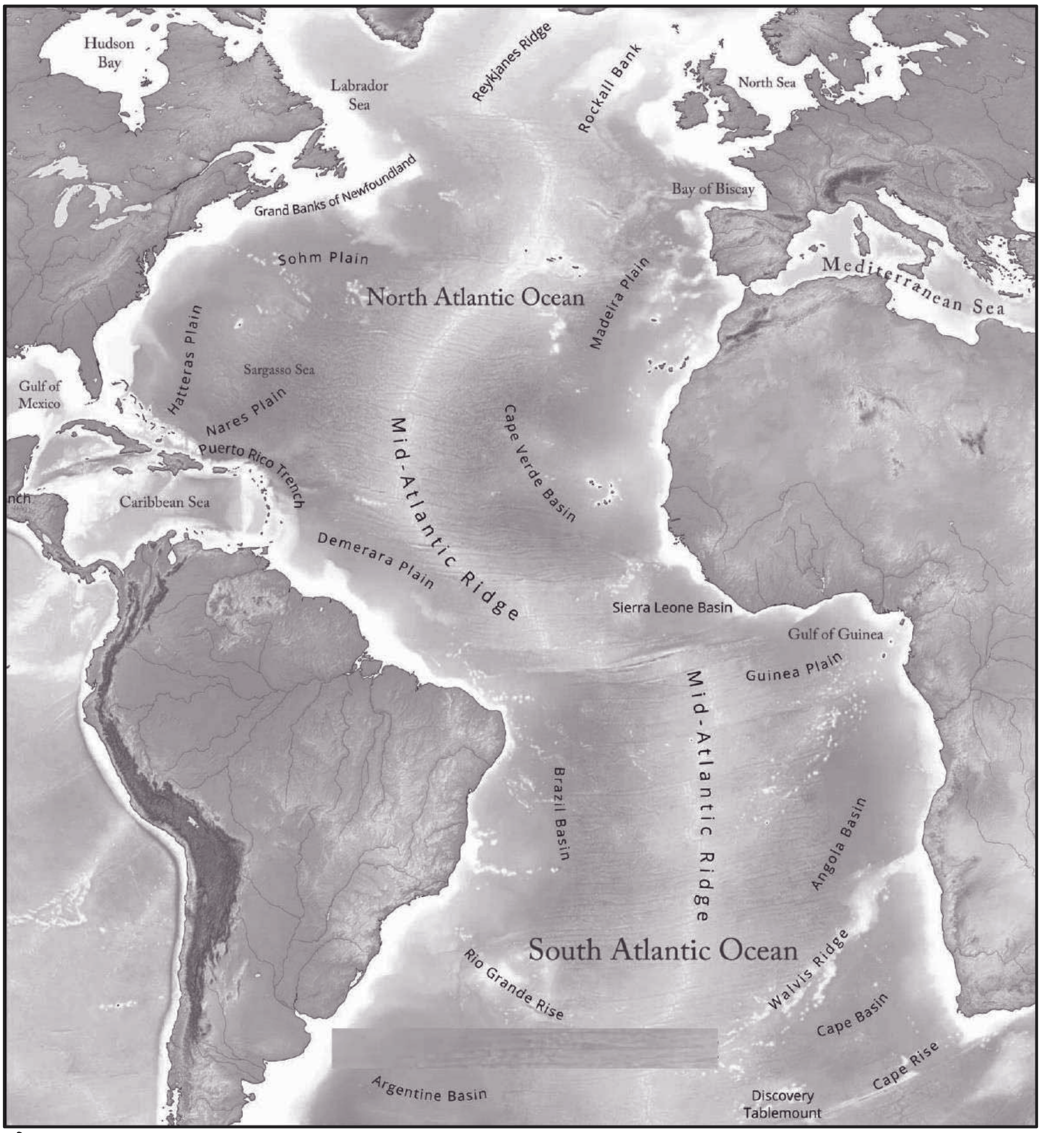


स्रोत: https://www.freeworldmaps.net/ocean/atlantic/

हुआ है- एक अर्ध-बंद बेसिन जैसा दिखता है (अर्थात, यह लगभग भूमि से घिरा हुआ है, आनुपातिक रूप से बड़ी मात्रा में नदी के निर्वहन और तलछट प्राप्त करता है, व्यापक रूप से महाद्वीपों से घिरा है, और

अपेक्षाकृत उथला है)। हालाँकि, अब इसे सार्वभौम रूप से अलग महासागर के रूप में पहचान मिली हुई है।

अटलांटिक और आर्कटिक महासागरों के बीच खुले पानी की सीमा को परिभाषित करने का प्रयास अक्सर अक्षांश निर्देशांक पर निर्भर करता है; दो सबसे सामान्य अक्षांशीय सीमाएं 65° उत्तर और आर्कटिक वृत्त (66° 30' उत्तर) हैं। एक कम प्रचलित पद्धति ग्रीनलैंड से आइसलैंड तक उथले ग्रीनलैंड-आइसलैंड उभार के साथ पूर्व की ओर एक रेखा खींची जाती है जो आइसलैंड से फ़ैरो-आइसलैंड उभार के साथ फरो आइलैंड्स तक और फिर अंत: समुद्री वोरिंग पठार से होकर नॉर्वे के पश्चिमी तट पर $70^0$ उत्तर अक्षांश के करीब तक जाती है। इस सीमा को निर्धारित करने के लिए शायद एक अधिक उपयुक्त तरीका विशिष्ट आर्कटिक और अटलांटिक जल द्रव्यमान के बीच विभाजन करना है: नॉर्वेजियन सागर के अपेक्षाकृत गर्म और खारे पानी को अटलांटिक का हिस्सा माना जाता है, और ग्रीनलैंड सागर से लेकर आर्कटिक तक का ठंडा, कम-लवणता वाला पानी आर्कटिक महासागर का भाग है।

अटलांटिक महासागर की दक्षिणी सीमाओं के बारे में कम अस्पष्टता है, तथा अंटार्कटिका को घेरने वाले 60° दक्षिण अक्षांश के दक्षिण में दक्षिणी महासागर का विस्तार माना जाता है। दक्षिण अटलांटिक और हिन्द महासागरों के बीच एक व्यापक रूप से स्वीकृत सीमा रेखा है जो अफ्रीका के दक्षिणी सिरे पर केप अगुलहास से दक्षिण की ओर 20° पूर्व देशांतर रेखा के समानांतर 60° दक्षिण अक्षांश तक चलती है। इसी तरह, अटलांटिक और प्रशांत महासागरों को विभाजित करने वाली सीमा दक्षिण अमेरिका के सिरे पर केप हॉर्न और अंटार्कटिक प्रायद्वीप के सिरे के बीच ड्रेक पैसेज से होकर गुजरती है। चित्र 6.1 अटलांटिक महासागर के विस्तार को प्रदर्शित करता है।

## 6.3 अटलांटिक महासागर के नितल का उच्चावच (Bottom Relief of the Atlantic Ocean)

आज से लगभग 700 मिलियन वर्ष पूर्व अटलाण्टिक महासागर का सागर नितल प्रसरण (Sea Floor Spreading) तथा युरेशिया तथा अफ्रीका प्लेट के पूर्व की ओर एवं दोनों अमेरिका के पश्चिम की ओर गतिशील होकर प्रवाहित होने से निर्माण हुआ। लगभग 300 मिलियन वर्ष पूर्व अमेरिकी तथा यूरेशियन एवं अफ्रीकी प्लेटों के अभिसरण (convergence) यानी आमने-सामने गतिशील होने के कारण अटलाण्टिक महासागर बन्द हो गया। आज से लगभग 150 मिलियन वर्ष पूर्व अटलाण्टिक बेसिन का

पुनः खुलना प्रारम्भ हो गया। अटलाण्टिक महासागर नितल का फैलना आज भी जारी है। यह प्रसरण प्रतिवर्ष 4 सेण्टीमीटर की दर से हो रहा है। आन्ध्र महासागर के नितल में निम्न प्रमुख उच्चावच देखने को मिलते हैं:

### 6.3.1 महाद्वीपीय मग्नतट (Continental Shelf)

कुछ भागों को छोड़कर इस महासागर के चारो ओर चौड़े मग्र तट पाये जाते हैं। उत्तरी अटलांटिक में मग्र तट प्रायः सर्वत्र सपाट और चौड़े हैं। ज्ञातव्य है कि पर्वतीय अथवा पठारी तटों के मग्र तट अत्यधिक सँकरे और मैदानी तटों के मग्न तट अधिक विस्तृत और समतल होते हैं, कहीं पर इनकी चौड़ाई 80 किमी० से अधिक हो जाती है। तो कहीं पर यह 2 से 4 किमी० रह जाती है। उदाहरण के लिए, बिस्के की खाड़ी से उत्तमाशा अन्तरीप के बीच अफ्रीका का मग्नतट तथा 5° द० से 10° द० अक्षांश के बीच ब्राजील का मग्नतट संकरा हो गया है। इसके विपरीत उत्तर अमेरिका के उ० पू० भाग तथा उत्तर-पश्चिम यूरोप के मग्नतट 240 से 400 किमी० (150 से 250 मील) तक चौड़े हैं। न्यूफाउण्डलैण्ड (ग्राण्ड बैंक) तथा ब्रिटिश द्वीप (डागर बैंक) के चारों ओर विस्तृत मग्नतट पाये जाते हैं। ग्रीनलैण्ड तथा आइसलैण्ड के मग्नतट भी चौड़े हैं। दक्षिणी आन्ध्र महासागर में वाहियाब्लैंका तथा अण्टार्कटिक के बीच भी चौड़े मग्नतट पाये जाते हैं।

### 6.3.2 मध्य अटलांटिक कटक (Mid-Atlantic Ridge)

मध्य अटलांटिक कटक उत्तर में आइसलैण्ड से दक्षिण में बोवेट द्वीप तक 'S' अक्षर के आकार में 14,400 किमी० की लम्बाई में फैला है तथा कहीं भी सागर तल से 4000 मीटर से नीचे नहीं जाता है। यद्यपि यह कटक कभी पश्चिम को कभी पूर्व की ओर झुक जाता है, परन्तु इसकी मध्यवर्ती स्थिति सदा बनी रहती है। भूमध्यरेखा के उत्तर में इस कटक को डालफिन उभार तथा दक्षिण में चैलेंजर उभार कहते हैं। आइसलैण्ड और स्काटलैण्ड के बीच इस कटक को विविल टामसन कटक (Wyville Thomson Ridge )कहते हैं। ग्रीनलैण्ड के दक्षिण में कटक चौड़ा हो जाता है, जिसे टेलिग्राफिक पठार कहते हैं। 50° उ० अक्षांश के पास इस कटक की शाखा न्यूफाउण्डलैण्ड उभार (rise) के नाम से न्यूफाउण्डलैण्ड तट तक चली जाती है। 40° उ० अक्षांश के द० मध्यवर्ती कटक से एक शाखा अलग होकर अजोर उभार के नाम से अजोर तट की ओर जाती है। भूमध्य रेखा पर सियरा लिओन उभार उत्तर-पूर्व की ओर तथा

पारा उभार उ० प० की ओर मध्यवर्ती कटक की दो शाखाओं के रूप में चले जाते हैं। दक्षिणी अटलांटिक में 40° द. अक्षांश निकट मध्य अटलांटिक श्रेणी लगभग 960 किलोमीटर चौड़ी गई है जहां से अनेक श्रेणियाँ इससे निकल कर इसके दोनों ओर फैली हैं। इस कटक की एक शाखा बालविस कटक अफ्रीका के मग्नतट की ओर तथा दूसरी शाखा रायोग्रैंडी उभार के नाम से दक्षिण अमेरिका की ओर उन्मुख हो जाती है। मध्यवर्ती कटक का यद्यपि अधिकांश भाग जलमज्जित है तथापि कई चोटियाँ सागर को चीर करके ऊपर दृष्टिगत होती हैं। अजोर्स का पिको द्वीप सर्वोच्च है, जो सागर तल से 7000 से 8000 फीट ऊपर उठा है। मध्य अटलांटिक कटक की उत्पत्ति के विषय में पर्याप्त मतभेद है, परन्तु महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त (वेगनर टेलर) के अनुसार इस कटक की उत्पत्ति तनाव के कारण तथा उत्तर एवं दक्षिण अमेरिका के पश्चिम दिशा में प्रवाह के कारण मानी जानी चाहिए।

**चित्र 6.2: मध्य अटलांटिक कटक**

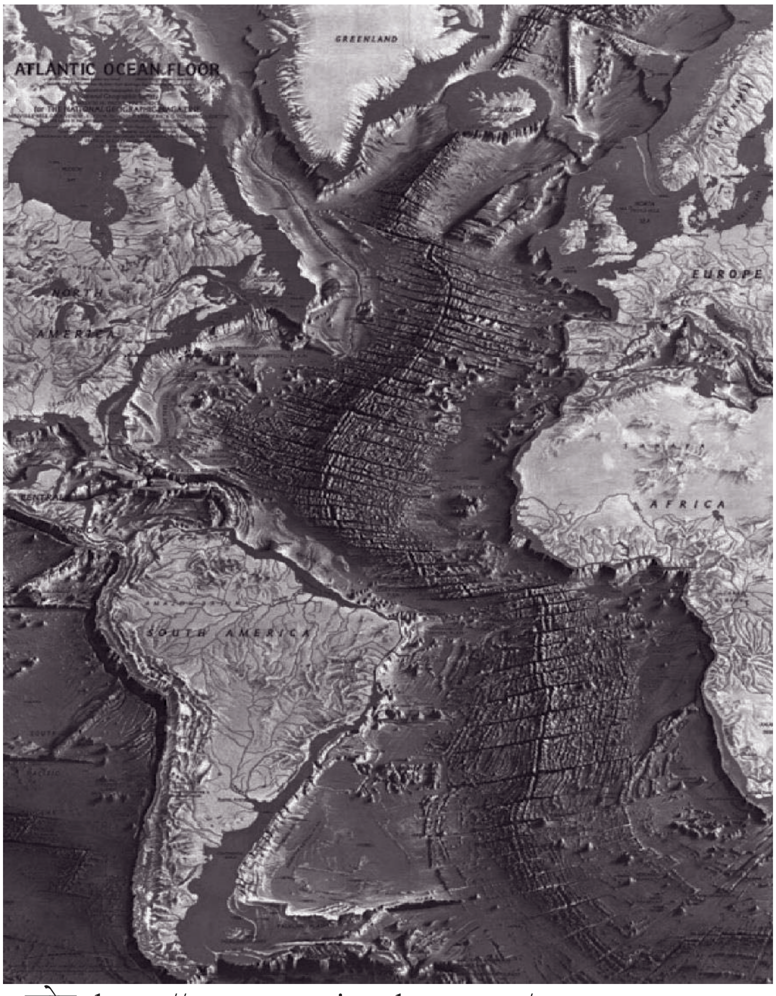


स्रोत: https://www.amusingplanet.com/

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त के आधार पर इसका निर्माण उत्तरी अमेरिका एवं दक्षिण अमेरिका तथा यूरोप-अफ्रीका प्लेट के रचनात्मक किनारे (constructive plate margins) के अलगाव तथा नीचे से मैग्ना के ऊपर की ओर उद्वेलित होकर आगमन के कारण हुआ है। अटलाण्टिक महासागर बेसिन की बेसाल्ट क्रस्ट मध्य अटलाण्टिक कटक के पास नवीनतम है परन्तु इस कटक से पूर्व तथा पश्चिम की ओर जाने पर ये प्राचीन होती जाती हैं। इससे यह साफ तौर पर स्पष्ट हो जाता है कि मध्य अटलाण्टिक कटक पर सागर नितल का मन्द गति से लगातार प्रसार हो रहा है तथा अपसारी (divergent) प्लेटों के किनारों पर नयी बेसाल्ट क्रस्ट की अभिवृद्धि (accretion) हो रही है। मध्य अटलाण्टिक कटक के शिखर पर नवीनतम बेसाल्ट क्रस्ट अभिनव (latest ) से 5 मिलियन वर्ष पुरानी है।

### 6.3.3 महासागरीय द्रोणियां (Oceanic Basins)

मध्यवर्ती अटलाण्टिक कटक द्वारा आन्ध्र महासागर दो विस्तृत द्रोणियों में विभाजित हो जाता है। इन दो बृहद द्रोणियों में पुनः कई छोटी-छोटी द्रोणियाँ भी पायी जाती हैं, जिनमें निम्न प्रमुख हैं:

(1) **लेब्राडोर द्रोणी:** उत्तर में ग्रीनलैण्ड के जलमग्न तट तथा दक्षिण में न्यूफाउण्डलैण्ड उभार के बीच 4000 मीटर की गहराई तक 40° से 50° 30 अक्षांशों के बीच फैली है।

(2) **उत्तरी अमेरिका द्रोणी:** उत्तरी आन्ध्र महासागर की सबसे बड़ी द्रोणी है, जिसका विस्तार 12° से 40° उ० अक्षांशों के मध्य उत्तरी अमेरिका के तट से 55° प० देशान्तर के बीच 5000 मीटर की गहराई तक पाया जाता है।

(3) **ब्राजील द्रोणी:** दक्षिण अटलाण्टिक महासागर में भूमध्य रेखा से 30° द० अक्षांश तथा द० अमेरिका के तट के मध्य स्थित है।

(4) **स्पेनिश द्रोणी:** मध्य अटलांटिक कटक के पूर्व में आइबेरियन प्रायद्वीप के पास स्थित स्पेनिश द्रोणी का विस्तार 30° से 50° उ० आक्षांशों के बीच 5000 मीटर की गहराई तक है।

(5) **उ ० तथा द० कनारी बेसिन:** दो वृत्ताकार द्रोणियों से मिलकर बनी है, जिसका विभाजन मध्यवर्ती उच्च भाग द्वारा होता है।

( 6 ) **केपवर्ड द्रोणी:** मध्य अटलाण्टिक कटक तथा अफ्रीका के मध्य 10° से 23.5° उत्तरी आक्षांशों के बीच 5000 मीटर की गहराई तक विस्तृत है।

(7) **गायना द्रोणी:** गायना कटक तथा सियरा लिओन के मध्य उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व दिशा में 4000-5000 मीटर की गहराई तक विस्तृत है।

(8) **अंगोला द्रोणी** अफ्रीका के तट से प्रारम्भ होकर उ० पू० से द ० प० दिशा में वालविस कटक तक 5000 मीटर की गहराई तक फैली है।

(9) **केप बेसिन:** 25° से 45° द ० अक्षांशों के मध्य अफ्रीका के पश्चिम में स्थित है।

10 ) **अंगुलहास द्रोणी:** उत्तमाशा अन्तरीप के द° में 40° से 50° अक्षांश के मध्य अफ्रीका के पश्चिम में इसका विस्तार अधिक पाया जाता है।

### 6.3.4 महासागरीय गर्त तथा खडड् (Deeps and Trenches)

आन्ध्र महासागर के तटों के सहारे अभिनव वलन की अनुपस्थिति के कारण गर्त कम पायी जाती है। मरे के अनुसार 3000 फैदम से अधिक गहरी 19 गर्त पायी जाती हैं । इनमें से प्रमुख हैं- नरेस गर्त, पोर्टोरिको गर्त, रोमांश गर्त, वाल्डिविया बुचानन, मोसले, चुन आदि । पोर्टोरिको गर्त (4812) इस महासागर की सबसे गहरी गर्त है ।

## 6.4 सीमान्त सागर (Marginal Seas)

आन्ध्र महासागर के सीमान्त सागरों में रूम सागर (भूमध्य सागर), कैरेबियन सागर, मेक्सिको की खाड़ी, बाल्टिक सागर उत्तरी सागर, बैंफिन की खाड़ी, हडसन की खाड़ी आदि प्रमुख हैं।

रूम सागर (भूमध्य सागर) इसका सबसे महत्वपूर्ण सीमान्त सागर है । जिसके अनेक उपविभाजन हैं । रूम सागर को दो प्रमुख बेसिनों में विभाजित किया जाता है । यह विभाजन दक्षिणी इटली के तट से अफ्रीकी तट तक विस्तृत 4000 मीटर गहरे मध्य सागरीय कटक द्वारा होता है ।

- पूर्वी बेसिन
- पश्चिमी बेसिन

ग्रीस के दक्षिणी तट से अफ्रीकी तट तक विस्तृत कटक द्वारा पूर्वी रूम सागर बेसिन को पुनः 2 उपबेसिनों में विभाजित किया ।

- आयोनियन बेसिन, 4600 मीटर गहरी
- लैवेन्टाइन बेसिन, 2000 से 3000 मीटर गहरी

इसी तरह पश्चिमी बेसिन को इटली तथा ट्युनिसिया बीच विस्तृत 1000 मीटर गहरा कटक 2 उपबेसिनों में विभक्त
करता है।

- अल्जीयर्स-प्रोवेन्काल बेसिन
- टाइरेनियन बेसिन

रूम सागर में स्पेन के पूर्वी तट इटली के पश्चिमी तट, यूनान के पश्चिमी तट, मिश्र के उत्तरी तट, ट्यूनेसिया के उत्तरी तट तथा ट्यूनेसिया लीबिया के उत्तरी-पूर्वी तट के सहारे 80 से 240 किमी० चौड़े एवं 1000 मीटर गहरे महाद्वीपीय मग्न तट पाये जाते हैं।

कैरेबियन सागर भी अटलांटिक महासागर का एक महत्वपूर्ण सीमान्त सागर है। युकाटन प्रायद्वीप तथा क्यूबा द्वीप के बीच स्थित 1600 मीटर गहरे कटक द्वारा मेक्सिको की खाड़ी तथा कैरेबियन सागर का अलगाव होता है। इस क्षेत्र में मेक्सिको बेसिन तथा कैरेबियन बेसिन प्रमुख बेसिन हैं। कैरेबियन बेसिन को पुनः 4 उपबेसिनों में विभाजित किया जाता है:

- युकाटन बेसिन
- केमान ट्रफ
- कोलम्बिया बेसिन
- वेनेजुएला बेसिन

## 6.5 अटलान्टिक महासागर के द्वीप ( Islands )

अटलान्टिक महासागर में अपेक्षाकृत कम द्वीप पाए जाते हैं। ब्रिटिश द्वीपसमूह एवं न्यूफाउण्डलैंड वास्तव में महाद्वीप मग्र तटों के ही ऊँचे भाग हैं। पश्चिमी द्वीप समूह का निर्माण कई द्वीप-चापों (island (ares) से मिलकर हुआ है, जो मुख्य स्थलखण्ड से अधिक दूर नहीं हैं। दूसरी ओर, आइसलैंड तथा फीरोज (Facroes) ऐसे द्वीप हैं, जो उत्तरी स्काटलैंड तथा ग्रीनलैंड के बीच की अन्तः समुद्री श्रेणी के जल से

ऊपर उठे हुये भाग हैं। इसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी सिरे तथा अन्टार्कटिका के ग्राहम लैंड प्रायद्वीप के मध्य फैली हुई अनेक विषम पहाड़ियों तथा पठारों के अधिक ऊँचाई वाले तथा जल के बाहर निकले भागों से अनेक दक्षिणी द्वीपों का निर्माण हुआ है। इनमें फाकलैंड्स, साउथ आर्कनीज़, शेटलैंड्स, जार्जिया तथा सैनविच द्वीप पुंज विशेष उल्लेखनीय हैं।

वास्तविक अर्थो में महासागरीय द्वीपों का निर्माण मध्य अटलान्टिक श्रेणी के ऊँचे उठे हुये भागों से हुआ है। उत्तरी अटलान्टिक में एजोर्स द्वीप, तथा दक्षिण में असेंसन तथा ट्रीस्टन द कुन्हा ( Ascension and Tristan da Cunha) आदि का निर्माण इसी प्रकार हुआ है। मध्य अटलान्टिक श्रेणी के पूर्व में स्थित सेन्ट हेलेना द्वीप सीधे महासागरीय नितल से उठा हुआ है। इसी प्रकार श्रेणी के पश्चिम में स्थित ट्रिनीडाड द्वीप नितल से ऊपर उठा है। दूसरी ओर, बरमूडा द्वीपसमूह प्रवाल से निर्मित है। इनका निर्माण उत्तरी-पश्चिमी अटलान्टिक बेसिन में जलमग्न ज्वालामुखी शंकुओं के ऊपर निर्मित प्रवाल भित्तियों से हुआ है। मोरक्को के तट से कुछ दूर स्थित मदीरा द्वीप ( Madeira Island) महासागर के नितल पर होने वाले ज्वालामुखी विस्फोट से निकले पदार्थों से निर्मित हुआ है। सबसे ऊँचे पर्वत शिखर पीको रिवो की ऊँचाई (Pico Ruivo) 6056 फीट है। अटलाण्टिक महासागर के ज्वालामुखी द्वीप निश्चय ही मध्य अटलाण्टिक कटक से सम्बन्धित हैं तथा जो सबसे अधिक सक्रिय हैं वे कटक के सबसे करीब पाये जाते हैं। कटक के पास नीचे से मैगमा ऊपर आने से ज्वालामुखी द्वीपों का निर्माण होता है और जैसे-जैसे सागर नितल का प्रसरण होता जाता है वैसे-वैसे ये द्वीप कटक से दूर विस्थापित होते जाते हैं। इस तरह जब ये ज्वालामुखी द्वीप मैगमा के आपूर्ति स्थल (कटक के नीचे) से दूर होते जाते हैं तो इनकी मैगमा की आपूर्ति समाप्त हो जाती है। ऐसी दशा में ये द्वीप अवतलित (सागरतल, sea-level, के नीचे) होते जाते हैं जिन्हें सागरीय चौकी (sea mounts) या गुआट कहते हैं। स्मरणीय है कि सभी ज्वालामुखी द्वीप सागर तल के नीचे जलमज्जित (sub- mergo) mergo) नहीं होते हैं। कई द्वीप सागर तल से 1500 से 3000 मीटर ऊपर भी रहते हैं। अटलाण्टिक महासागर स्थित ज्वालामुखी द्वीपों के लावा के अध्ययन के आधार पर ज्ञात हुआ है कि जो द्वीप मध्य अटलाण्टिक कटक के करीब हैं। उनका लावा नूतन है तथा दूरस्थ द्वीपों का लावा प्राचीन है। उदाहरण के लिए मध्य अटलाष्टिक कटक के दोनों ओर स्थित अजोर्स द्वीप का प्राचीनतम लावा 4 मिलियन वर्ष पुराना है जबकि अफ्रीका तट के पास ( कटक से दूरस्थ) केप वर्डे द्वीप का प्राचीनतम लावा 120 मिलियन वर्ष पुराना है।

## 6.6 सारांश

अटलांटिक महासागर पृथ्वी का दूसरा सबसे बड़ा महासागर है, जो पृथ्वी की सतह के लगभग पांचवें हिस्से पर विस्तृत है। अटलाण्टिक महासागर बेसिन का विस्तृत अन्वेषण एवं सर्वेक्षण करके सबसे अधिक अध्ययन किया गया है। अटलाण्टिक बेसिन की सबसे महत्वपूर्ण आकारिकीय विशेषताओं में मध्य-अटलांटिक कटक है। इसके अलावा इसमें अनेक महत्वपूर्ण द्वीप एवं द्वीपीय राष्ट्र पाए जाते हैं। इसमें अनेक सीमान्त सागरों का भी अस्तित्व विराजमान है।

### अभ्यास प्रश्न

4. अटलाण्टिक महासागर के आकार एवं विस्तार का विवरण प्रस्तुत कीजिये।
5. अटलाण्टिक महासागर के नितल का उच्चावच का वर्णन कीजिये।
6. अटलाण्टिक महासागर की मध्य महासागरीय कटक का वर्णन कीजिये।
7. अटलाण्टिक महासागर के प्रमुख सीमान्त सागर कौन कौन से हैं? तथा भूमध्य सागर के क्षेत्रीय विभाजन की व्याख्या कीजिये।
8. अटलाण्टिक महासागर के प्रमुख द्वीपों का वृतांत प्रस्तुत कीजिये।

### सन्दर्भ ग्रन्थ


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.


### इन्टरनेट स्रोत


1. https://www.cs.mcgill.ca/~rwest/wikispeedia/wpcd/wp/a/Atlantic_Ocean.htm (21/03/2023 को रिट्रीव किया गया)
2. https://www.britannica.com/place/Atlantic-Ocean (27/03/2023 को रिट्रीव किया गया)

# इकाई 7

# महासागरीय जल का संघटन तथा महासागरीय लवणता का वितरण

## इकाई की रूपरेखा


| | |
|---|---|
| 7.0 | प्रस्तावना |
| 7.1 | उद्देश्य |
| 7.2 | सागरीय जल का संघटन |
| 7.2.1 | महासागरीय लवणता का मुख्य स्रोत |
| 7.2.2 | महासागरीय लवणता का संतुलन |
| 7.3 | महासागरीय जल में विभिन्न लवणों का भार एवं प्रतिशत |
| 7.4 | लवणता का क्षैतिज वितरण |
| 7.4.1 | लवणता का अक्षांशीय वितरण |
| 7.5 | सारांश |
| | अभ्यास प्रश्न |
| | सन्दर्भ ग्रन्थ |

# इकाई 7

# महासागरीय जल का संघटन तथा महासागरीय लवणता का वितरण

---

## 7.0 प्रस्तावना

महासागरीय लवणता समुद्री जल में घुले हुए लवणों की सांद्रता को इंगित करती है। समुद्री जल की औसत लवणता लगभग 35% है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक 1,000 ग्राम (1 लीटर) समुद्री जल में लगभग 35 ग्राम लवण घुला हुआ है। समुद्री लवणता के क्षैतिज वितरण में असमानता पाई जाती है। समुद्र की लवणता में परिवर्तन का महासागर परिसंचरण और जलवायु के साथ-साथ समुद्री पारिस्थितिक तंत्र के लिए महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, लवणता में परिवर्तन समुद्री जल के घनत्व को प्रभावित कर सकता है, जो प्रत्यक्ष रूप  में समुद्र की धाराओं और प्रत्यक्ष रूप में दुनिया भर में तापमान के वितरण को प्रभावित कर सकता है। इसके अतिरिक्त, लवणता में परिवर्तन समुद्री जीवों की विभिन्न प्रजातियों के वितरण और उनकी प्रचुरता को भी प्रभावित कर सकता है।

## 7.1 उद्देश्य

इकाई 7, "महासागरीय जल का संघटन तथा लवणता का वितरण" के अध्ययन के उपरांत आप:

4. सागरीय जल का संघटन को समझ सकेंगे।
5. सागरीय जल में विभिन्न लवणों के भार एवं प्रतिशत का वर्णन कर सकेंगे।
6. सागरीय जल की लवणता के अक्षांशीय वितरण की व्याख्या कर सकेंगे।
7. सागरीय जल की लवणता को प्रभावित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।

## 7.2 सागरीय जल का संघटन (Composition of Seawater)

सागरीय जल एक सक्रिय घोलक होता है, जिस कारण उसमें कई प्रकार के खनिज घुली अवस्था में मिले रहते हैं। चूँकि नदियों द्वारा सागर में लगातार लवण लाकर जमा किया जाता है, अतः उसकी कुल मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इन लवणों की कुल मात्रा महासागरों के विभिन्न भागों में एक समान नहीं होती, किन्तु इन खनिज पदार्थों का पारस्परिक अनुपात सदा और सर्वत्र स्थिर होता है। कई लोगों ने सागर स्थित कुल लवण की मात्रा ज्ञात करने का प्रयास किया है, हालाँकि इनके अनुमानों में पर्याप्त भिन्नता है। जोली के अनुसार यह मात्रा 50 अरब टन, मरे के अनुसार 5 अरब टन तथा क्लार्क के अनुसार 2.7 अरब टन है। जोली के अनुसार यदि समस्त सागरीय लवण को निकाल कर ग्लोब पर फैला दिया जाय तो उसकी मोटाई 150 फीट (45.7 मी०) हो जायेगी, और यदि उसे केवल धरातल पर बिछाया जाय तो मोटाई 500 फीट (152.4 मीटर) हो जायेगी। यदि सागर से सभी लवण हटा लिया जाय तो सागर तल में 100 फीट (30.48 मीटर) की गिरावट आ जायेगी। ज्ञातव्य है कि महासागरीय जल के खारेपन में अन्तर के बावजूद समुद्री जल का औसत खारापन ( average salinity ) 35% माना जाता है। दूसरे शब्दों में, समुद्र के प्रति 1000 ग्राम जल में 35 ग्राम विभिन्न खनिज लवणों का घोल पाया जाता है। 1884 में चैलेन्जर अन्वेषण के समय डिटमार ने सागरों में 27 प्रकार के लवणों का पता लगाया, जिनमें से 7 प्रकार के लवण सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। स्मरणीय है कि विभिन्न सागरों में लवण की कुल मात्रा में अन्तर हो सकता है, परन्तु उनकी संरचना के अनुपात में सर्वत्र समानता होती है। विभिन्न सागरों में लवण की मात्रा 33‰ से 37‰ के बीच रहती है।

**तालिका 7.1: सागरीय जल में घुले लवणों की मात्रा तथा उनका प्रतिशत योगदान**

| **संघटक** | **मात्रा (ग्राम में)** | **सकल संघटकों में योगदान (%)** |
|---|---|---|
| सोडियम क्लोराइड | 27.213 | 77.8 |
| मैग्नीशियम क्लोराइड | 3.807 | 10.9 |
| मैग्नीशियम सल्फेट | 1.658 | 4.7 |
| कैल्शियम सल्फेट | 1.260 | 3.6 |
| पोटेशियम सल्फेट | 0.863 | 2.5 |
| कैल्शियम कार्बोनेट | 0.123 | 0.3 |
| मैग्नीशियम ब्रोमाइड | 0.076 | 0.2 |
| **योग** | 35.000 | 100.00 |

महासागरीय जल विभिन्न प्रकार के लवणों का मिश्रण है। इन लवणों की कुल मात्रा महासागरों के विभिन्न भागों में एक समान नहीं होती, किन्तु इन खनिज पदार्थों का पारस्परिक अनुपात सदा और सर्वत्र स्थिर होता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी एक घटक की मात्रा कम हो जाती है, तो अन्य सभी घटकों की मात्रा में सानुपातिक कमी पायी जाती है। ज्ञातव्य है कि महासागरीय जल के खारेपन में अन्तर के बावजूद समुद्री जल का औसत खारापन (average salinity) 35% माना जाता है। दूसरे शब्दों में, समुद्र के प्रति 1000 ग्राम जल में 35 ग्राम विभिन्न खनिज लवणों का घोल पाया जाता है।

सारणी 7.1 में डिटमार (Dittmar) द्वारा दिया गया विभिन्न प्रमुख लवणों का वजन तथा प्रतिशत प्रस्तुत है। प्रस्तुत सारणी 'चैलेंजर अभियान' में प्राप्त आँकड़ों पर आधारित है। वैज्ञानिकों के द्वारा किये गए निरीक्षणों के अनुसार उपर्युक्त लवणों की मात्रा 33% से 3 तक महासागरों में पाई जाती है, किन्तु उनके पारस्परिक अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं होता।

चैलेन्जर' अभियान के दौरान किये गए विश्लेषण के आधार पर समुद्री जल में 47 प्रकार के लवणों का न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाना निश्चित हुआ। इनमें सर्वाधिक मात्रा में साधारण नमक अथवा सोडियम क्लोराइड होता है। इन लवणों के अतिरिक्त, समुद्री जल में ब्रोमाइन, कार्बन, बोरान, सिलिकान स्ट्रॉन्टियम तथा फ्लोरिन आदि भी थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। वायुमण्डलीय गैसों की थोड़ी मात्रा में समुद्र के जल में घुली अवस्था में पाई जाती है। इन गैसों में आक्सीजन तथा कार्बन डाइआक्साइड समुद्री जीवों तथा वनस्पतियों में पाये जाने वाले विभिन्न जैविक प्रक्रमों (organic processes) में विशेष महत्त्व होता है। ज्ञातव्य है कि नाइट्रेट, फास्फेट तथा सिलिकेट को 'उर्वरक' अथवा 'पौधों के पोषक तत्व' भी कहा जाता है। वायुमण्डल में आक्सीजन तथा नाइट्रोजन का अनुपात 1 : 3.7 होता है, किन्तु समुद्र के जल में इन गैसों का अनुपात 1: 1.7 होता है, जिसका कारण आक्सीजन गैस की अधिक घुलनशीलता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी की पपड़ी (earth's crust) में उपस्थित सभी तत्व किसी न किसी रूप में सागर-जल में पाये जाते हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता, सीसा, निकेल, कोबाल्ट, मैगनीज, अल्यूमिनियम, लोहा तथा सिलिकन आदि रासायनिक तत्व बहुत थोड़ी मात्रा में समुद्र के जल में घोल के रूप में विद्यमान हैं। वैज्ञानिक गणनानुसार प्रति घन मील समुद्र के जल में 14 पौण्ड सोना तथा 500 पौण्ड सीसा घोल रूप में मौजूद है। जिस प्रकार आज समुद्री जल से सोडियम क्लोराइड और मैगनेशियम निकाला जाना सम्भव है, उसी प्रकार भविष्य में अन्य खनिजों का दोहन भी सम्भव हो सकेगा।

### 7.2.1 महासागरीय लवणता का मुख्य स्रोत

महासागरीय लवणता का मुख्य स्रोत पृथ्वी की वाह्य परत अर्थात् क्रस्ट ही है। प्रारम्भ में जब पृथ्वी की उत्पत्ति हुई तथा प्रथम ठोस क्रस्ट का निर्माण हुआ उस समय क्रस्ट में लवण (नमक) की मात्रा अधिक थी। इस प्रकार महासागरीय लवणता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत महाद्वीपीय शैलों का रासायनिक अपक्षय तथा अपक्षयित (weathered) पदार्थों का नदियों द्वारा महासागरों में लाया जाना है। इसके अलावा महासागरीय लवणता के कुछ गौण स्रोत भी हैं। कुल मिलाकर महासागरीय लवणता निम्न 3 स्रोतों से प्राप्त होती है, प्रथम, महाद्वीपीय शैलों का रासायनिक अपक्षय तथा अपक्षयित पदार्थों का नदियों द्वारा महासागरों में परिवहन। द्वितीय, पृथ्वी द्वारा विगैसन (गैस का निकलना) अर्थात् सागरीय तली में ज्वालामुखी उद्भेदन। तृतीय, वायुमण्डल एवं जैवीय अन्तर्क्रिया।

(1)**नदियाँ** : सागरीय लवणता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत हैं । महाद्वीपीय चट्टानों का विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं, यथा, कार्बोनेशन, आक्सीडेशन, घोलीकरण (solution), हाइड्रेशन, हाइड्रोलिसिस, चेलेटन (chelation) आदि द्वारा रासायनिक अपक्षय होता है। इस तरह अपक्षय से जनित पदार्थों, जिनमें विभिन्न घुले तत्व मिले होते हैं , को धरातलीय वाही जल (surface runoff) तथा स्थल प्रवाह (overlandflow) द्वारा नदियों में तथा अन्ततः नदियों द्वारा महासागरों में पहुँचा दिया जाता है। इसके अलावा नदियाँ अपनी घाटियों की शैलों का भी अपरदन करती हैं तथा नमक के आयन को महासागरों एवं सागरों में पहुँचती हैं।

आश्चर्यजनक रूप से सागरीय नमक तथा नदियों के नमक के संघटन में भारी विभिन्नता होती है क्योंकि सागरीय जल मेंसोडियम क्लोराइड का सान्द्रण 77.8 प्रतिशत होता है। जबकि नदियों के जल में कैलसियम सल्फेट का प्रभुत्व (60 percent of total salt) होता है। नदियों के जल में कैल्सियम आयन (Ca2+) का सान्द्रण 15% है जो सागरीय जल में कैल्सियम आयन के सान्द्रण (0.4%) से लगभग 30 गुना अधिक है। इसके विपरीत सोडियम आयन (Nat) का सागरीय जल में समस्त घुले नमक के सान्द्रण का 30.61 प्रतिशत भाग है जबकि नदियों के जल में इसका प्रतिशत मात्र 5.2 ही है। यही कारण है कि कुछ वैज्ञानिक नदियों को महासागरीय लवणता का प्रधान स्रोत नहीं मानते हैं। उल्लेखनीय है कि सागरीय जीव नदियों द्वारा लाये गये अधिकांश कैल्सियम का उपभोग कर लेते हैं जिस कारण सागरीय जल में कैल्सियम आयन का सान्द्रण अधिक नहीं हो पाता।

(2) **अन्तः सागरीय ज्वालामुखी क्रिया** महासागरीय जल की लवणता का दूसरा प्रमुख स्रोत है। ज्ञात हो कि महासागरीय तली पर अपसारी प्लेट किनारों (divergent plate margins) के सहारे, अर्थात् मध्य महासागरीय कटकों सहारे एवं अभिसारी प्लेट किनारों (convergent plate margins) के सहारे अकसर ज्वालामुखी क्रियायें होती रहती हैं। इन अन्तः सागरीय ज्वालामुखियों के उद्गारों से क्लोराइड आयन तथा सल्फेट आयन का उत्सर्जन होता है जो सागरीय जल में मिल जाते हैं।

(3) **वायुमण्डलीय एवं जीवीय स्रोत:** महासागरीय लवणता के अन्य स्रोतों में वायुमण्डलीय एवं जीवीय स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है। कतिपय वायुमण्डलीय गैसें महासागरीय जल में घुल जाती हैं तथा उनकी लवणता में वृद्धि करती हैं। इसी तरह कई जीवीय अन्तर्कियायें (biological interactions) भी महासागरों में कुछ नमक की वृद्धि करती हैं।

### 7.2.2 महासागरीय लवणता का संतुलन

विभिन्न स्रोतों से आये नमक के सागरीय जल में मिलने (addition) को स्रोत (source) या निवेश (input) कहते हैं। उल्लेखनीय है कि विश्व की नदियों तथा अन्य स्रोतों से महासागरों में आज से 3.4 बिलियन वर्ष पहले उनकी उत्पत्ति के समय से नमक का निवेश हो रहा है परन्तु विगत 1.5 बिलियन वर्षों से महासागरीय लवणता में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। इससे महासागरीय लवणता की स्थिरता (constancy of ocean salinity) का स्पष्ट बोध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि महासागरों से लवण के निष्कासन की कोई प्रक्रिया अवश्य होनी चाहिए क्योंकि यदि यह प्रक्रिया क्रियाशील न रही होती तो अब तक महासागरीय लवणता में महत्वपूर्ण वृद्धि अवश्य हुई होती। इस तरह यह विदित होता है कि महासागरों में प्रतिवर्ष नमक के निवेश (input) तथा निष्कासन या बर्हिगर्मन (output) में वार्षिक सन्तुलन होता है। महासागरों में नमक के निवेश तथा बहिर्गमन की इस दशा को सन्तुलन की स्थिर दशा (steady state of equilibrium) कहते हैं।

महासागरों से नमक के बहिर्गमन को महासागरीय लवणता का सिंक (sink- अभिगम) कहते हैं। इसके अन्तर्गत वाष्पीकरण, लवण फुहार (spit spray), मध्य महासागरीय कटकों के सहारे प्लेटों के अपसरण (divergence) के कारण नयी बेसाल्ट का निर्माण, अधिशोषण (adsorption) आदि प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है । महासागरीय नितल पर ज्वालामुखी क्रिया द्वारा तथा मध्य महासागरीय कटकों के सहारे निर्मित नयी बेसाल्ट मैग्नेशिम, पोटेशियम आदि के आयन का उपयोग करती है। इस

प्रक्रिया को अधिशोषण (adsorption) कहते हैं, जिसके द्वारा मृत्तिका खनिजों के चारों ओर मैग्नेसियम तथा पोटेसियम के कैटायन चिपक जाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा फेरोमैग्नीज ग्रन्थिका (nodules) का निर्माण हो जाता है । बाद में ये फेरोमैग्नीज ग्रन्थिकार्ये सागरीय तली में अन्तः स्थापित (embedded) हो जाती हैं। प्रश्न उठता है कि नदियों द्वारा महासागरों में लाये गये भारी मात्रा में कैल्सियम एवं कार्बोनेट आयन के बावजूद महासागरीय लवणता में इनका अनुपात कम क्यों हो जाता है ? उत्तर है, नदियों द्वारा महासागरों में लाये गये नमक आयन का निवास समय (residence time) लम्बा होता है। इनमें से कुछ का सागरीय जीवों द्वारा जीवीय प्रक्रियाओं के माध्यम से उपयोग कर लिया जाता है तथा कुछ मात्रा का अकार्बनिक प्रक्रियाओं (inorganic processes) द्वारा निष्कर्षण (extraction) हो जाता है। इस तरह से निष्कर्षण किए गये नमक आयन सागरीय नितल के अवसादी निक्षेपों में अन्तः स्थापित हो जाते हैं। इन कारणों से नदियों द्वारा महासागरों में लाये गये कैल्सियम सल्फेट का अनुपात घट जाता है। किसी नमक आयन के जल में घोल रूप में रहने के समय की अवधि को निवास समय (residence time) कहते हैं। कैल्सियम आयन का जल में निवास समय सोडियम आयन के निवास समय से छोटा होता है ।

## 7.4 सागरीय लवणता का क्षैतिज वितरण

महासागरों की औसत लवणता 35% है, परन्तु प्रत्येक महासागर, सागर, झील आदि में लवण की मात्रा में अन्तर पाया जाता है। लवणता में अन्तर क्षैतिज तथा लम्बवत् दोनों रूपों में होता है। इसी तरह बन्द, अंशतः बन्द एवं खुले सागरों में भी लवणता में अन्तर पाया जाता है। इस आधार पर सागरीय लवणता के वितरण का अध्ययन दो रूपों में किया जायेगा :

- क्षैतिज या सतही वितरण (Horizontal or Surface Distribution)
- लम्बवत् या गहराई में वितरण (Vertical Distribution)

सागरों में लवणता के क्षैतिज वितरण को समलवण रेखा (isohaline) के माध्यम से दर्शाया जाता है। सागरों में समान लवण वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समलवण रेखा कहते हैं। क्षैतिज वितरण में मुख्य रूप से अक्षांशों का सहारा लिया जाता है। इसके अलावा प्रादेशिक वितरण पर भी ध्यान दिया जाता है। प्रादेशिक वितरण के अन्तर्गत प्रत्येक महासागर की लवणता का अलग-अलग वितरण देखा जाता है। इसी तरह सीमान्त सागरों-खुले, बन्द तथा आंशिक रूप से बन्द सागरों की लवणता के वितरण पर भी दृष्टिपात किया जाता है।

### 7.4.1 लवणता का अक्षांशीय वितरण

सागरीय लवण की मात्रा तथा वितरण पर अक्षांशों का अधिक नियंत्रण होता है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर सामान्य रूप में लवणता में कमी आती जाती है। स्मरणीय है कि भूमध्यरेखा पर उच्चतम लवणता नहीं पायी जाती है, यद्यपि यहाँ पर उच्च तापक्रम तथा उच्च वाष्पीकरण होता है, क्योंकि यहाँ पर वर्षा का जल लवणता को कम कर देता है। तालिका 7.2, महासागरीय लवणता के अक्षांशीय वितरण को प्रदर्शित करती है।

**तालिका 7.2: लवणता का अक्षांशीय वितरण**

| अक्षांश मण्डल | लवणता (%) |
|---|---|
| 70°- 50° N | 31-31 |
| 50°- 40°N | 33-34 |
| 40°-15° N | 35-36 |
| 15°N- 10°S | 34.5-35 |
| 10°-30° S | 35-36 |
| 30°-50° S | 34-35 |
| 50°-70° S | 33-34 |

भूमध्यरेखा पर लवणता की मात्रा 34% रहती है। उच्चतम लवणता 20°-40° उत्तरी अक्षांशों में पायी जाती है, जहाँ पर लवणता की मात्रा 36% रहती है, क्योंकि इन भागों में उच्च तापक्रम तथा उच्च वाष्पीकरण के साथ आर्द्रता न्यून होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में 10°-30° अक्षांशों के मध्य 35% की लवणता पायी जाती है। दोनों गोलार्द्ध में 40°-60° अक्षांशों के मध्य लवणता में कमी आ जाती है, परिणामस्वरूप वह घटकर उत्तरी गोलार्द्ध में 31% हो जाती है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में 33% पायी जाती है। ध्रुवों के पास हिम के पिघलने से प्राप्त जल की आपूर्ति के कारण लवणता में और अधिक कमी आ जाती है। समस्त उत्तरी गोलार्द्ध में औसत लवणता 34% पायी जाती तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में 35% रहती है। इस तरह अक्षांशीय वितरण के आधार पर महासागरों में लवणता के निम्न चार मण्डल हैं:

(i) विषुतरेखीय मण्डल (10° से 20° अक्षांश उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध) अपेक्षाकृत न्यून लवणता का क्षेत्र है। अत्यधिक वर्षा कारण लवणता कम हो जाती है।

(ii) उष्णकटिबन्धीय मण्डल (20°- 30° उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध) अधिकतम लवणता वाला क्षेत्र है। न्यून वर्षा उच्च वाष्पीकरण तथा वायु के अवतलन के कारण उच्च वायुदाब एवं प्रतिचक्रवातीय दशाओं के कारण उच्च लवणता होती है।

(iii) शीतोष्ण कटिबन्धी मण्डल न्यून लवणता का क्षेत्र है।

(iv) उपध्रुवीय एवं ध्रुवीय मण्डल न्यूनतम लवणता वाले क्षेत्रों को प्रदर्शित करता है, जिसका मुख्य कारण हिमद्रवित जल (meltwater) की अधिकता तथा न्यूनतम वाष्पीकरण है।

भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में तापमान तथा सागरीय जल की सतही लवणता (surface salinity) में विपरीत सम्बन्ध होता है परन्तु उच्च अक्षांशों में सीधा धनात्मक सम्बन्ध होता है। उल्लेखनीय है कि महाद्वीपों के सीमान्त महासागरीय क्षेत्रों में अनेक मध्यवर्ती भागों की तुलना में कम लवणता होती है क्योंकि नदियों द्वारा सीमान्त सागरों में प्रतिवर्ष ताजा जल (freshwater) लाया जाता है। अक्षांशों के अनुसार खुले सागरों में लवणता में विभिन्नता होती है. यद्यपि यह विभिन्नता महासागरीय धाराओं पर भी निर्भर करती है। आन्तरिक सागरों की लवणता पर अक्षांशों का कोई नियंत्रण नहीं होता है। इसी तरह उच्च अक्षांशों में आंशिक बन्द सागरों की लवणता पर अक्षांशों का प्रभाव नहीं होता है, बल्कि हिम के पिघलने से प्राप्त जल (melt water) के आगमन (निवेश) पर इनकी लवणता निर्भर करती है। यही कारण है कि उत्तरी सागर की तुलना में बाल्टिक सागर सवणता कम होती है, यद्यपि दोनों का अक्षांशीय विस्तार समान है।

## 7.5 सारांश

सागरीय जल में अनेक लवण तथा खनिज घुले होते हैं इसी कारण से इसका खारापन सामान्य स्वच्छ जल के मुकाबले अधिक होता है। धरातल से बहने वाली नदियाँ इन लवणों का सबसे बड़ा स्त्रोत हैं। लेकिन यह भी स्मरणीय है कि समुद्र में ये लवण सदैव संतुलन की अवस्था में रहते हैं।

**अभ्यास प्रश्न**

8. सागरीय जल के संघटन का वर्णन कीजिये।
9. सागरीय जल की लवणता के स्त्रोतों का वर्णन कीजिये।
10. सागरीय जल की लवणता के अक्षांशीय वितरण में भिन्नता की सकारण व्याख्या कीजिये।
11. सागरीय जल की लवणता को प्रभावित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध कीजिये।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 8

# लवणता के नियंत्रक कारक, महासागरीय जल की लवणता का उध्र्वाधर वितरण

---

## इकाई की रूपरेखा


8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 महासागरीय लवणता के नियंत्रक कारक

8.2.1 वाष्पीकरण

8.2.2 हिम का निर्माण

8.2.3 वर्षा द्वारा स्वच्छ ताजे जल की आपूर्ति

8.2.4 नदियों द्वारा स्वच्छ जल की आपूर्ति

8.2.5 वायुमण्डलीय दाब तथा वायु दिशा

8.2.6 महासागरीय जल की गतियाँ

8.3 महासागरीय जल की लवणता का ऊर्ध्वाधर (लम्बवत्) वितरण

8.4 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 8

# लवणता के नियंत्रक कारक, महासागरीय जल की लवणता उर्ध्वाधर वितरण

---

### 8.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि सागरीय जल एक सक्रिय घोलक होता है, जिस कारण उसमें कई प्रकार के खनिज घुली अवस्था में मिले रहते हैं। समुद्री लवणता के क्षैतिज वितरण के साथ साथ इसके लम्बवत वितरण में भी असमानता पाई जाती है लवणता कई कारकों के आधार पर भिन्न हो सकती है जैसे वर्षा, वाष्पीकरण और नदियों और नालों से मीठे पानी का प्रवाह । आम तौर पर, वाष्पीकरण की उच्च दर वाले क्षेत्रों, जैसे कि उष्णकटिबंधीय, में उच्च लवणता का स्तर होता है, जबकि वर्षा की उच्च दर या मीठे पानी के प्रवाह वाले क्षेत्रों, जैसे कि नदियों के मुहाने के पास, लवणता का स्तर कम होता है ।

### 8.1 उद्देश्य

इकाई 08, "लवणता के नियंत्रक कारक, महासागरीय जल की लवणता उर्ध्वाधर वितरण" के अध्ययन के उपरांत आप:

1. महासागरीय लवणता के नियंत्रक कारकों की व्याख्या कर सकेंगे ।

2. महासागरीय जल की लवणता का ऊर्ध्वाधर (लम्बवत्) वितरण का वर्णन कर सकेंगे ।

### 8.2 महासागरीय लवणता के नियंत्रक कारक (Controlling Factors of Ocean Salinity)

एक महसागर से दूसरे महासागर में लवण की मात्रा में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इतना ही नहीं एक ही महासागर के विभिन्न भागों में लवण की मात्रा में अन्तर पाया जाता है। महासागरों, सागरों तथा झीलों में लवण की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारकों को 'नियंत्रक कारक' (controlling factors) कहते हैं। इन कारकों में वाष्पीकरण, वर्षा, नदी के जल का आगमन, पवन, सागरीय धारायें तथा लहरें आदि प्रमुख

हैं। महासागरीय लवणता के स्थानिक वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्न 3 वर्गों में विभाजित किया जाता है।

- महासागरीय लवणता में वृद्धि करने वाले कारक
- महासागरीय लवणता को कम करने वाले कारक
- महासागरीय लवणता में मिश्रण करने वाले कारक

### 8.2.1 वाष्पीकरण

वाष्पीकरण तथा लवण की मात्रा में सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् जितना ही वाष्पीकरण तीव्र तथा अधिक होता है, लवणता उतनी ही बढ़ती जाती है। विषुवत रेखा के निकट वर्ष भर तापमान ऊँचा रहने के बावजूद वायुमण्डल की सापेक्ष आर्द्रता (relative humidity) अधिक होने तथा बादलों की अधिकता के कारण वाष्पीकरण की दर मन्द पड़ जाती है। किन्तु कर्क और मकर रेखाओं के निकट वायु के अवतलन के कारण प्रतिचक्रवातीय दशायें पायी जाती हैं। यहां का वायुमण्डल अवतलन क्रिया के कारण शुष्क होता है तथा आकाश मेघ रहित होता है। अतः उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायुदाब पेटी में वाष्पीकरण सर्वाधिक मात्रा में होती है ।

ऊस्ट महोदय के अनुसार अटलाण्टिक महासागर में वार्षिक वाष्पीकरण की दर 40° उ० अक्षांश पर 94 सेण्टीमीटर (लवणता, 34.0), 20° 30 अक्षांश पर 149 सेंमी० ( लवणता, 37.0 ) तथा 5° उं० अक्षांश (तापीय भूमध्य रेखा) पर 105 सेंमी० (लवणता, 34.68) है। भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में मेघाच्छादित आकाश, वायुमण्डल में उच्च आर्द्रता तथा वर्षा के जल के महासागरों आगमन (प्रत्यक्ष वर्षा तथा नदियों द्वारा) के कारण लवणता में कमी हो जाती है। उल्लेखनीय है कि महसागरीय लवणता भी वाष्पीकरण को नियंत्रित करती है।

### 8.2.2 हिम का निर्माण (Ice Formation)

उच्च अक्षांशों अर्थात् आर्कटिक एवं ध्रुवीय क्षेत्रों में हिम के निर्माण के कारण महासागरीय लवणता में मामूली वृद्धि होती है । उल्लेखनीय है कि महासागरों में हिम के निर्माण के लिए सागरीय जल से निष्कर्षण (extraction) द्वारा ताजे जल (freshwater) की आवश्यकता होती है । बाद में इस निष्कर्षित ताजे जल का हिमीकरण हो जाता है। ज्ञात रहे कि जब कभी तापमान हिमांक के नीचे जाता है, सागरीय जल से जल के अणुओं (molecules) का अलगाव हो जाता है तो वे जम कर हिम का निर्माण

करते हैं । उल्लेखनीय है कि सागरीय हिम में ताजा जल रहता है तथा उसमें सागरीय लवणता का केवल 30 प्रतिशत ही रहता है। उदाहरण के लिए किसी महासागर के किसी भाग की लवणता 33% है, और यदि सागर का जल जमता है तथाहिम का निर्माण होता है तो उसमें 33% की लवणता की मात्रा घटकर 30 प्रतिशत लवणता बचती है। इससे साफ स्पष्ट होता है कि सागरीय हिम में ज्यादातर ताजा जल (freshwater) ही रहता है। इस कारण सम्बन्धित सागर में ताजे जल की कमी हो जाती है अतः सागरीय जल में लवणता का सान्द्रण पहले से बढ़ जाता है। ग्रीष्मकाल में जब तापमान हिमांक के ऊपर होता है तो सागरीय हिम पिघल जाती है तथा सम्बन्धित सागर में ताजे जल की मात्रा बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप सागरीय लवणता में कमी हो जाती है।

### 8.2.3 वर्षा द्वारा स्वच्छ ताजे जल की आपूर्ति (Supply of Clean and Pure Water through Precipitation)—

स्वच्छ जल की अधिक मात्रा के कारण लवणता कम हो जाती है। जिन भागों में अत्यधिक जल वर्षा होती है, वहाँ पर लवणता कम हो जाती है । भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में तापमान वर्ष भर ऊँचा रहने के बावजूद वहाँ होने वाली भारी वर्षा के कारण महासागरों के सतही जल में ताजे पानी के मिश्रण के कारण लवणता अपेक्षाकृत कम पाई जाती है । इस पेटी के दोनों ओर उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायु दाब की पेटियाँ स्थित हैं। इनमें ऊँचे तापमान और वर्षा के अभाव में वाष्पीकरण अधिक होने से लवणता सर्वाधिक मात्रा में पाई जाती है । पुनः ध्रुवीय एवं उप-ध्रुवीय क्षेत्रों में होने वाली हिम-वर्षा से धरातल पर हिम की मोटी परत जमा हो जाती है। यही बर्फ जब हिमनदों अथवा प्लावी हिम शैलों (icebergs) के रूप में मध्य अक्षांशीय महासागरों में पहुँच कर पिघलती है, तव इस प्रकार स्वच्छ जल के मिश्रण से वहाँ लवणता कम हो जाती है । इस प्रकार सागरीय लवणता तथा वर्षा में विपरीत सम्बन्ध (inverse relationship) होता है । अर्थात् अधिक वर्षा होने पर लवणता में कमी होती है, जबकि कम वर्षा होने पर लवणता में वृद्धि होती है ।

### 8.2.4 नदियों द्वारा स्वच्छ जल की आपूर्ति —

विश्व की सभी बड़ी नदियों के मुहाने के निकट समुद्र के जल में लवणता की मात्रा कम हो जाती है। कांगो, नाइजर, सेन्ट लारेंस, अमेजन आदि नदियाँ अपने द्वारा छोड़े गए ताजे जल के कारण अपने मुहाने के निकटवर्ती समुद्रों के जल में लवणता कम करने में सहायक होती हैं यहां लवणता मात्र 18% पायी

जाती है। वैज्ञानिकों की गणनानुसार नदियाँ प्रति वर्ष महाद्वीपों के धरातल पर से 27,000 घन किलोमीटर वर्षा का जल वहाकर महासागरों में छोड़ती हैं। महासागरों के क्षेत्रफल को देखते हुए उसके तल पर प्रतिवर्ष 7.6 सेमी स्वच्छ जल की आपूर्ति नदियों द्वारा की जाती है। ज्ञातव्य है कि नदियों द्वारा लाए गए जल का प्रभाव केवल तटवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित होता है। काला सागर में लवणता में कमी का मुख्य कारण नदियों द्वारा लाया गया स्वच्छ जल है ।

### 8.2.5 वायुमण्डलीय दाब तथा वायु दिशा –

महासागरों के ऊपर चलने वाली हवाओं का पृष्ठीय जल की लवणता के वितरण पर भारी प्रभाव पड़ता है। प्रति चक्रवातीय दशाएँ, स्थिर पवन, उच्च तापक्रम के साथ लवणता में वृद्धि करती हैं ।उदाहरणार्थ, व्यापारिक पवन अपने साथ महासाग के पूर्वी तटों के निकटवर्ती उष्ण एवं अधिक खारे जल को बहाकर पश्चिमी तट की ओर ले जाते हैं, जिसकी पूर्ति हेतु अधस्तल का शीतल तथा अपेक्षाकृत कम खारा जल ऊपर आ जाता है । अयनवर्ती भागों में उपर्युक्त दशाएँ पायी जाती हैं, परिणामस्वरूप उच्च लवणता पायी जाती है । हवाएँ लवणता के पुनर्वितरण में भी सहायता करती हैं । ये हवाएँ अपने साथ खारे पानी को दूसरे स्थान पर पहुँचा देती हैं जिस कारण वहाँ की लवणता बढ़ जाती है, परन्तु जहाँ से जल हटाया जाता है वहाँ पर उसके स्थान की पूर्ति के लिए नीचे से जल ऊपर आता है, परिणामस्वरूप लवणता कम हो जाती है ।इसी कारण से मेक्सिको की खाड़ी में लवणता अधिक पायी जाती है, जबकि कैलिफोर्निया तट पर लवणता कम पायी जाती है । इस प्रकार समुद्रों में चलने वाली हवाओं का लवणता के वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

### 8.2.6 महासागरीय जल की गतियाँ ( Movements of Ocean Water ) –

महासागरीय जल की विभिन्न गतियों में समुद्री लहरें, ज्वारीय तरंगें तथा उष्ण एवं शीतल धारायें (warm and cold ocean currents) सम्मिलित हैं । समुद्र का जल कभी भी बिल्कुल शान्त नहीं रहता । उसने ज्वार-भाटा के कारण निरन्तर तरंगें उठती और गिरती रहती हैं । सागरीय धाराओं का प्रमुख कार्य सागरीय जल में मिश्रण करना है । अतः इनके द्वारा लवणता के वितरण पर भी प्रभाव पड़ता है । भूमध्यरेखीय गर्म धाराएं महाद्वीपों के पश्चिमी भागों से लवण को पूर्वी तटीय भागों में पहुँचा कर वहाँ की लवणता बढ़ा देती हैं । मेक्सिको की खाड़ी में इसी कारण से उच्च लवणता पायी जाती है । गल्फस्ट्रीम

की गर्म धारा यूरोप के उ० प० तट पर लवणता को बढ़ा देती है । लेब्राडोर की ठण्डी धारा के कारण उत्तरी अमेरिका के उ० पू० तटीय भाग में लवणता घट जाती है । बन्द सागरों में इन धाराओं का प्रभाव नगण्य होता हैं । परन्तु वे सीमान्त सागर, जो कि सागर से चौड़े प्रवेश द्वार (inlet) द्वारा मिले होते हैं, इन धाराओं से प्रभावित होते हैं । नार्वे तथा उत्तरी सागर में गल्फस्ट्रीम के कारण अपेक्षाकृत अधिक लवणता मिलती है । उष्ण जल धारायें महासागरों की सतह पर गर्म और अधिक खारे जल को उच्च अक्षांशों में पहुँचाती हैं, जबकि ठण्डी जल धारायें उच्च अक्षांशों से शीतल एवं कम खारे जल को मध्य अक्षांशों की ओर स्थानान्तरित करती हैं । हिन्द महासागर में लवणता के क्षैतिज वितरण में मौसमी परिवर्तन स्पष्ट दिखाई पड़ता है । इसका कारण मानसूनी हवाओं की दिशा में परिवर्तन के फलस्वरूप महासागरीय धाराओं की दिशा में होने वाला परिवर्तन है ।

## 8.3 महासागरीय जल की लवणता का ऊर्ध्वाधर (लम्बवत्) वितरण (Vertical Distribution of Salinity)-

देफाँ (Defant) ने वायुमण्डल की भाँति महासागरों को भी दो मण्डलों में विभक्त किया है : ट्रोपोस्फीयर तथा स्ट्रेटोस्फीयर । ट्रोपोस्फीयर महासागरों के उस पृष्ठीय भाग के लिये प्रयोग किया गया है, जिसका तापमान निम्न तथा मध्य में अपेक्षाकृत ऊँचा रहता है तथा जिसमें प्रबल धारायें पाई जाती हैं स्ट्रेटोस्फीयर शब्द का प्रयोग महासाग की शीतल जल राशियों के लिये हुआ है, जो गहरे और नितल वाले भागों में मिलती है । ज्ञातव्य है कि महासागरों के अधस्तलों (sublayers) में लवणता का वितरण अपेक्षाकृत जटिल होता है । ट्रोपोस्फीयर में लवणता के वितरण में काफी असमानता पाई जाती है जिसका सम्बन्ध वाष्पीकरण तथा वर्षा के पारम्परिक सम्बन्ध से होता है । इसके विपरीत, महासागरीय स्ट्रेटोस्फीयर में लवणता के वितरण में लगभग समानता पाई जाती है । यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि महासागरों में विस्तृत विभिन्न जलराशियाँ (water maves) की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं के कारण सतह के नीचे अलग-अलग गहराइयों में लवणता एवं तापमान आदि के वितरण में अत्यधिक जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं । महासागरों में लम्बवत् वितरण के विषय में किसी निश्चित नियम का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि कहीं पर लवणता गहराई के साथ घटती जाती है तो कहीं पर बढ़ती है । उदाहरण के लिए द० अटलांटिक के द० छोर पर सतह की लवणता 33% रहती है, परन्तु 200 फैदम (1200 फीट) की गहराई पर यह बढ़कर 34.50% तथा 600 फैदम (3600 फीट) की गहराई पर

34.75% हो जाती है। 20° द० अक्षांश के पास सतह की लवणता 37% रहती है, जबकि तली में घटकर 35% हो जाती है। पुनः भूमध्यरेखा पर सतह की लवणता 34% होती है, जो नीचे जाने पर बढ़कर 35% हो जाती है। इसके होते हुए भी सामान्य रूप में कहा जा सकता है कि उच्च अक्षांशों में गहराई के साथ लवणता बढ़ती है, मध्य अक्षांशों में 200 फैदम तक लवणता बढ़ती है, परन्तु पुनः घटने लगती है और भूमध्यरेखा पर लवणता बढ़ती जाती है, परन्तु पुनः गहराई में जाने पर घटने लगती है। महासागरीय भागों में जल की ऊपरी सतह में सर्वाधिक लवणता पायी जाती है। इससे नीचे जाने पर लवणता में अन्तर आता है। ऊपरी सतह की उच्चतम लवणता तथा निचले कम लवणता मण्डल का अलगाव एक संक्रमण मण्डल (transi- tional zone) द्वारा होता है जिसे तापप्रवणता मण्डल (thermochine zone) कहते हैं। इस मण्डल के ऊपर अधिक लवणता तथा नीचे अपेक्षाकृत कम लवणता पायी जाती है। परन्तु यह सामान्य नियम नहीं है क्योंकि सागरीय लवणता का लम्बवत् वितरण अत्यधिक जटिल है।

महासागरीय लवणता के लम्बवत् वितरण की निम्न प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जा सकता है:

- उच्च अक्षांशों में 300 मीटर से 1000 मीटर तक गहराई के साथ लवणता में वृद्धि होती है परन्तु 1000 मीटर गहराई के बाद लवणता लगभग स्थिर रहती है।
- निम्न अक्षांशों अर्थात् उष्णकटिबन्धी महासागरों में लवणता में 300 मीटर से 1000 मीटर की गहराई तक लवणता में ह्रास होता है परन्तु 1000 मीटर से गहरे भागों में लवणता लगभग स्थिर रहती है।
- इस तरह उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 300 से 1000 मीटर की गहराई 'लवणता में तेजी से परिवर्तन होता है (कहीं लवणता बढ़ती है तो कहीं घटती है)। इस तीव्र प्रवणता वाले लवणता मण्डल को हैलोक्लाइन कहते हैं।
- भूमध्यरेखीय भाग में महासागरों की सतह पर अत्यधिक वर्षा तथा विषुवरेखीय धाराओं द्वारा सागरीय जल के स्थानान्तरण के फलस्वरूप लवणता न्यून होती है परन्तु सागरीय ऊपरी सतह के नीचे अधिक लवणता पायी जाती है।

सामान्यतः महासागरीय जल की ऊपरी परत में अधिकतम लवणता पायी जाती है । इस तरह अधिकतम लवणता वाली ऊपरी परत तथा न्यूनतम लवणता वाली निचली परत का एक संक्रमण मण्डल द्वारा अलगाव होता है । इस तीव्र लवणता परिवर्तन वाले संक्रमण मण्डल को **हैलोक्लाइन मण्डल** कहते हैं । उल्लेखनीय इसे सामान्य स्थिति नहीं समझना चाहिए क्योंकि लवणता का लम्बवत् वितरण अत्यन्त जटिल है । जिसकी और अधिक समझ के व्यापक अध्ययन तथा आंकड़ों की आवश्यकता है ।

उल्लेखनीय है कि 300 से 1000 मीटर की गहराई पर सागरीय मण्डल में तापमान, घनत्व तथा लवणता के लम्बवत् वितरण की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं । इस मण्डल में सागरीय जल के घनत्व में तेजी से परिवर्तन होता है (निम्न अक्षांशों से बढ़ती गहराई के साथ घनत्व में वृद्धि, परन्तु उच्च अक्षांशों अर्थात् उपध्रुवी एवं ध्रुवीय क्षेत्रों में स्थिर उच्च घनत्व), इस मण्डल को पाइक्नोक्लाइन मण्डल कहते हैं । इसी 300-1000 मीटर गहराई वाले मण्डल में निम्न अक्षांशों में 1000 मीटर की गहराई तक तापमान में तेजी से गिरावट होती है । इस मण्डल को **थर्मोक्लाइन मण्डल** कहते हैं ।

## 8.4 निष्कर्ष

समुद्री लवणता के क्षैतिज एवं लम्बवत वितरण में असमानता पाई जाती है । लवणता कई कारकों के आधार पर भिन्न हो सकती है जैसे वर्षा, वाष्पीकरण और नदियों और नालों से मीठे पानी का प्रवाह । आम तौर पर, वाष्पीकरण की उच्च दर वाले क्षेत्रों, जैसे कि उष्णकटिबंधीय, में उच्च लवणता का स्तर होता है, जबकि वर्षा की उच्च दर या मीठे पानी के प्रवाह वाले क्षेत्रों, जैसे कि नदियों के मुहाने के पास, लवणता का स्तर कम होता है । समुद्र की गहराई के साथ लवणता के स्तर में बदलाव होता है ।

**अभ्यास प्रश्न**

1. महासागरीय लवणता के नियंत्रक कारकों की व्याख्या कीजिये।
2. महासागरीय जल की लवणता का ऊर्ध्वाधर (लम्बवत्) वितरण का वर्णन कीजिये।
3. हैलोक्लाइन मण्डल एवं थर्मोक्लाइन मण्डल के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिये।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 09

# लवणता का प्रादेशिक वितरण: प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिन्द महासागर

---

## इकाई की रूपरेखा


9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 लवणता का प्रादेशिक वितरण

9.3 महासागरों के अनुसार लवणता का वितरण

9.3.1 प्रशान्त महासागर में लवणता का वितरण

9.3.2 अटलाण्टिक महासागर में लवणता का वितरण

9.3.3 हिन्द महासागर में लवणता का वितरण

9.4 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 9

# लवणता का प्रादेशिक वितरण: प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिन्द महासागर

---

## 9.0 प्रस्तावना

महासागरों में लवणता के वितरण में क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है तथा कुछ महासागरों में दूसरों की तुलना में अधिक लवणता होती है। आम तौर पर, समुद्र का पानी वाष्पीकरण की उच्च दर वाले क्षेत्रों में अधिक खारा (नमकीन) होता है, जैसे कि उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय, और उन क्षेत्रों में कम खारा होता है जहां बहुत अधिक मीठे पानी का इनपुट होता है, जैसे कि नदी के मुहाने के पास या उच्च अक्षांशों पर जहां समुद्री बर्फ पिघल रही है।

महासागर में लवणता के क्षेत्रीय वितरण के कुछ सामान्य प्रतिरूप हैं। अटलांटिक महासागर तीन प्रमुख महासागरों में सबसे नमकीन है, जिसकी औसत लवणता लगभग 35.6 भाग प्रति हजार (पीपीटी) है। प्रशांत महासागर में औसत लवणता लगभग 34.7 पीपीटी है। हिंद महासागर में औसत लवणता लगभग 34.5 पीपीटी है। हिंद महासागर में मानसून के प्रभाव के कारण आमतौर पर उत्तर में लवणता अधिक और दक्षिण में कम होती है, जिससे समुद्र के उत्तरी भाग में बड़ी मात्रा में वर्षा होती है। आर्कटिक महासागर की औसत लवणता लगभग 32 पीपीटी है। अंटार्कटिका को घेरने वाले दक्षिणी महासागर की औसत लवणता लगभग 34.6 पीपीटी है। इस इकाई में तीन प्रमुख महासागरों की लवणता के स्तर का वर्णन किया गया है।

## 9.1 उद्देश्य

इकाई 9, "लवणता का प्रादेशिक वितरण: प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिन्द महासागर" के उपरांत आप:

1. प्रशांत महासागर की लवणता के वितरण का वर्णन कर सकेंगे।

2. अटलांटिक महासागर की लवणता के वितरण का वर्णन कर सकेंगे।

3. हिन्द महासागर की लवणता के वितरण का वर्णन कर सकेंगे।

## 9.2 लवणता का प्रादेशिक वितरण (Regional Distribution of Salinity)

महासागरीय सतह की लवणता के प्रादेशिक वितरण का निम्न 2 रूपों में अध्ययन किया जाता है:

- अलग-अलग महासागरों में लवणता का वितरण
- सभी महासागरों के लवणता मण्डलों में वितरण

जेनकिन महोदय ने महासागरीय सतह की लवणता में विभिन्नताओं के आधार पर महासागरों तथा सागरों को निम्न लवणता मण्डलों में विभाजित किया है:

- सामान्य से अधिक लवणता वाले प्रदेश (37% से 41% )

  1. लालसागर (37- 41%)
  2. फारस की खाड़ी (37-38%)
  3. रूम सागर (37-39%)

- सामान्य लवणता वाले प्रदेश (32-36%)

  1. कैरेबियन सागर (35-36%)
  2. बास जलडमरूमध्य (35.5%)
  3. कैलिफोर्निया की खाड़ी (35.5%)

- सामान्य से कम लवणता वाले प्रदेश (20-35%)

  1. आर्कटिक सागर
  2. उ. आस्ट्रेलिया सागर
  3. बेरिंग सागर
  4. ओखोटस्क सागर
  5. जापान सागर
  6. चीन सागर

7. अण्डमान सागर

8. उत्तरी सागर

9. इंग्लिश चैनेल

10. सेंट लारेन्स की खाड़ी

11. बाल्टिक सागर

12. हडसन की खाड़ी

## 9.3 महासागरों के अनुसार लवणता का वितरण

महासागरों में लवणता के वितरण क्षेत्र में क्षेत्रीय आधार पर भिन्नता पाई जाती है तथा कुछ महासागरों में दूसरों की तुलना में अधिक लवणता होती है। महासागर में लवणता के क्षेत्रीय वितरण के कुछ सामान्य प्रतिरूप यहाँ वर्णित हैं।

### 9.3.1 प्रशान्त महासागर में लवणता का वितरण

प्रशान्त महासागर के आकार तथा वृहद् क्षेत्रफल के कारण उसके विभिन्न भागों में लवणता में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। प्रशान्त महासागर के भूमध्य रेखीय क्षेत्र में व्यापारिक पवन पेटियों की अपेक्षा लवणता कम पाई जाती है। भूमध्यरेखा के पास लवणता 34.85% रहती है। किन्तु 15° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांश के निकट लवणता की मात्रा बढ़कर 34% से 35% तक हो जाती है। प्रशान्त महासागर में अधिकतम लवणता के क्षेत्र उसके दक्षिण - पूर्वी भाग में स्थित हैं, जहाँ लवणता की मात्रा 37% तक अंकित की जाती है। उत्तरी प्रशान्त महासागर के व्यापारिक पवनों की पेटी में लवणता की मात्रा कहीं भी 36% से अधिक नहीं है। 15º से 30º उ. अक्षांश के मध्यवर्ती क्षेत्र में उत्तरी प्रशान्त महासागर के उत्तरी-पश्चिमी भाग में 35.5%, लवणता पाई जाती है। उ० प्रशान्त महासागर में इन अक्षांशों के उत्तर में महासागर के पश्चिमी भाग में ओखोटस्क तथा मंचूरिया के पास ठण्डी धारा के कारण हिम के पिघलने से प्राप्त जल की आपूर्ति के कारण यह घटकर 31% हो जाती है। दक्षिणी प्रशान्त महासागर में 36% लवणता का क्षेत्र मिलता है। अन्टार्कटिक के निकट प्रशान्त महासागर की पृष्ठीय लवणता 34% से कम अंकित की जाती है। पूर्वी तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर की लवणता अन्तर का मुख्य कारण धाराओं में होने वाला मौसमी परिवर्तन माना जाता है। दक्षिणी प्रशान्त महासागर के अयनवर्ती क्षेत्र में लवणता

की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। मध्य अमेरिका, कैलिफोर्निया तथा पीरू तट के पास जल के स्थानान्तरण तथा नीचे से जल के ऊपर आने के कारण लवणता कम पायी जाती है। कोलम्बिया तट के पास 28% तथा चिली तट के पास 33% की लवणता पायी जाती है। नदियों के मुहाने के पास कम लवणता (यलो नदी 30 % तथा यांगटिसीक्यांग 33%) पायी जाती है।

### 9.3.2 अटलाण्टिक महासागर में लवणता का वितरण

उत्तरी अटलान्टिक में पृष्ठीय जल की लवणता 20° से 30° उत्तरी अक्षांश के मध्य विश्व के किसी भी महासागर की तुलना में अधिक है (37%)। अटलाण्टिक महासागर की औसत लवणता 35.67%है। ज्ञातव्य है कि उत्तरी अटलान्टिक में सतही जल की औसत लवणता 35.5% है, जबकि दक्षिणी अटलान्टिक का औसत 34.5% है। इस महासागर के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में लवणता में पाये जाने वाले अन्तर का मुख्य कारण भूमध्य सागर में होने वाला तीव्र वाष्पीकरण है। इस महासागर में यद्यपि लवणता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध महासागरीय धाराओं से है, फिर भी उस पर वाष्पीकरण तथा वृष्टि का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

भूमध्यसागर का अत्यधिक खारा जल जिब्राल्टर जलडमरूमध्य से होता हुआ उत्तरी अटलान्टिक के पृष्ठीय जल में मिल जाता है, जिससे उसकी लवणता का स्तर किसी भी खुले महासागर की अपेक्षा ऊँचा बना रहता है। साधारणतौर पर इस महासागर की 5° चौड़ी अक्षान्तरीय पेटी की औसत लवणता उस पेटी में होने वाले वाष्पन तथा वर्षा के अन्तर की समानुपाती होती है। इस महासागर के भूमध्य रेखीय क्षेत्र में वर्षा के द्वारा स्वच्छ जल की आपूर्ति वाष्पन से हुए जल के ह्रास से सर्वदा अधिक रहने से पृष्ठीय जल की औसत लवणता 35% रहती है। इसके विपरीत, 20°-25° उत्तरी तथा 20° दक्षिणी अक्षांश के निकट वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक होने के कारण विस्तृत क्षेत्रों में लवणता 37% रहती है अयनवर्ती क्षेत्रों से ध्रुवों की ओर एक बार फिर वाष्पन की अपेक्षा वर्षा अधिक प्रभावशाली हो जाती है। अतः पृष्ठीय जल की लवणता क्रमशः कम होने लगती है। उच्च अक्षांशों के विस्तृत क्षेत्रों में लवणता 35% पाई जाती है।

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि लवणता के वितरण की उपर्युक्त विशेषताओं पर विशेष रूप से उत्तरी अटलान्टिक में महासागरीय प्रभाव अध्यारोपित हो जाता है जिसके फलस्वरूप लवणता के सामान्य वितरण में कुछ विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। गल्फस्ट्रीम गर्म जल धारा है, जो अपने साथ

35% लवणता वाली जल राशि को बहाकर 78° उत्तरी अक्षांश पर स्थित स्पिट्जबर्गेन तक ले जाती है। इसी गर्म जल धारा तथा इसकी अन्य शाखाओं के प्रभाव से उत्तरी सागर, नार्वे के तटवर्ती सागर आदि में लवणता अधिक हो जाती है। दूसरी ओर आर्कटिक सागर का 34% लवणता वाला जल ठण्डी जल धाराओं द्वारा 45° उ. अक्षांश तक बहा कर पहुँचा दिया जाता है। इन्हीं धाराओं के प्रभाव के फलस्वरूप 40° उ. अक्षांश के उत्तर समलवण रेखायें लगभग उत्तर-दक्षिण हो जाती हैं, जब कि 45" दक्षिणी अक्षांश से दक्षिण ये रेखायें पूर्व से पश्चिम की ओर होती हैं। ध्रुवीय क्षेत्रों में समुद्रों में लवणता की मात्रा घट कर 30% से 33% तक पाई जाती है।

तटवर्ती क्षेत्रों के लैगूनों तथा छिछले समुद्रों में लवणता 34% से कम होती है। न्यूफाउन्डलैंड के निकट अटलान्टिक महासागर की पृष्ठीय लवणता 34% से भी कम पाई जाती है। इसका कारण सेन्ट लारेंस नदी तथा लैब्रेडोर की नदियों से महासागर में लाये जाने वाले स्वच्छ जल के अतिरिक्त हिमखण्डों तथा हिमशैलों (icebergs) के पिघलने से प्राप्त स्वच्छ एवं कम खारेपन वाला जल है। हिम के पिघलने से प्राप्त जल में सागरीय जल की अपेक्षा लवणता कम होती है, जब कि प्लावी हिमशैलों से प्राप्त जल में लवणता का सर्वथा अभाव होता है। अटलांटिक महासागर के मध्य में लगभग 25° उत्तरी अक्षांश के निकट स्थित सारगेसो सागर में ग्रीष्मकालीन लवणता 57% से अधिक होती है।

अफ्रीका के पश्चिमी तट पर उपोष्ण कटिबन्ध में स्थित होने के बावजूद गिनी की खाड़ी में लवणता कम पाई जाती है, क्योंकि यहाँ शीतल जल राशि का उठावाह (upwelling) होता है। दक्षिणी अटलांटिक महासागर के पूर्वी भाग की अपेक्षा पश्चिमी भाग में अधिक लवणता पाई जाती है। ऐसा 10 से 30° दक्षिणी अक्षांश के मध्य विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। ज्ञातव्य है कि इन्हीं अक्षांशों में पूर्वी तट के निकट महासागर की गहराइयों से शीतल और कम खारे जल का उत्प्रवाह होता है। इसके अतिरिक्त, अटलांटिक में गिरने वाली सभी बड़ी नदियों के मुहाने के निकट पृष्ठीय लवणता कम हो जाती है। अमेजन, कांगो, नाइजर तथा सेनेगल नदियों के मुहाने के निकट लवणता की मात्रा क्रमशः 15%, 34%, 20% तथा 34% पायी जाती है। अटलांटिक महासागर के आंशिक बन्द सागर आंशिक रूप से बन्द सीमान्त सागरों में लवणता के वितरण का भिन्न प्रारूप देखने को मिलता है। उच्च अक्षांशों में कम लवणता होते हुए भी उत्तरी सागर में उच्च लवणता (34) पायी जाती है, क्योंकि इसमें गल्फस्ट्रीम के कारण लवण का समावेश कर दिया जाता है। इसके विपरीत बाल्टिक सागर में न्यून लवणता पायी जाती

है, क्योंकि इसमें नदियों तथा वर्षा के स्वच्छ जल की आपूर्ति होती रहती है और उत्तर जाने पर लवणता घटती जाती है रूजेन द्वीप के पास लवणता 7 से 80 तथा बोधनिया को खाड़ी में मात्रा 2006 पायी जाती है। द० स्वीडन के पूर्व में लवणता केऊव के पास 1100 तथा बोर्नहोम के पास 800 रहती है। रूमसागर में अत्यधिक वाष्पीकरण तथा अटलाण्टिक महासागर के साथ कम सम्पर्क के कारण लवणता अधिक पायी जाती है। पश्चिमी भाग में 36.59/go तथा पूर्वी भाग में 39 लवणता पायी जाती है। कृष्ण सागर में नदियों द्वारा जल की आपूर्ति के कारण लवणता घट 17-18/6 ही रह जाती है। कैरेबियन सागर में 300/c लवणता पायी जाती हैं, उत्तरी भूमध्यरेखीय गर्म धारा के कारण इसमें खारा जल लाया जाता है।

**9.3.3 हिन्द महासागर में लवणता का वितरण**

अटलान्टिक तथा प्रशान्त महासागर की तुलना में हिन्द महासागर में लवणता के सम्बन्ध में किए गए प्रेक्षणों की संख्या बहुत कम है। इस महासागर के उत्तरी पश्चिमी भाग में अधिक लवणता पाई जाती है। यहाँ पृष्ठीय जल की लवणता 32% से 37% तक है। इस उच्च लवणता का कारण लाल सागर तथा फारस की खाड़ी का अत्यधिक खारा जल है, जो सतह पर प्रवाहित होता हुआ हिन्द महासागर के पश्चिमोत्तर भाग में पहुँचता है। भूमध्य रेखीय क्षेत्र तथा अरब प्रायद्वीप के मध्य लवणता 37% से भी अधिक मिलती है। इसके विपरीत, इस महासागर के पूर्वोत्तरी भाग में लवणता की मात्रा कम है (32% से 34%)। इस भाग में न केवल अधिक वर्षा होती है, बल्कि महासागर में गिरने ( वाली बड़ी-बड़ी नदियों से भारी मात्रा में स्वच्छ जल की आपूर्ति भी होती है। 40° दक्षिणी अक्षांश से अन्टार्कटिक महाद्वीप के किनारे तक लवणता क्रमशः घटती जाती है। लवणता की मात्रा 35% से घटकर 33.5% तक पहुँच जाती है, जिसका मुख्य कारण अन्टार्कटिक महाद्वीप पर फैली हिम चादरों तथा हिम खण्डों के पिघलने से प्राप्त स्वच्छ जल है। हिन्द महासागर के शेष भाग की पृष्ठीय लवणता की औसत मात्रा 35% के आसपास होती है। इस महासागर के पश्चिमी भाग में पूर्वी भाग की अपेक्षा लवणता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। दक्षिणी हिन्द महासागर में आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के निकटवर्ती भाग में जलवायु शुष्क होने के कारण वाष्पन दर तीव्र होती है, जिससे लवणता में वृद्धि हो जाती है। महासागरों तथा सागरों में लवणता के क्षैतिज वितरण को समलवण रेखा (isohaline) द्वारा प्रदर्शित करते हैं। समलवण रेखाएं वे रेखाएं होती हैं, जो कि सागरों की सतह पर समान लवणता वाले क्षेत्रों को (मानचित्र पर) मिलाती हैं।

इस भाग में समलवण रेखायें भूमध्य रेखा के लगभग समानान्तर होती हैं। ज्ञातव्य है उत्तरी हिन्द महासागर में गिरने वाली बड़ी-बड़ी नदियों के मुहाने के निकट स्वच्छ जल की भारी मात्रा के कारण महासागरीय जल की पृष्ठीय लवणता कम हो जाती है जैसे, गंगा, ईरावदी तथा दजला-फरात नदियों के मुहाने के निकट लवणता क्रमशः 30%, 20% तथा 35% पाई जाती है।

इस महासागर के आंशिक रूप से घिरे समुद्रों में लवणता में विभिन्नता विशेष उल्लेखनीय है। लाल सागर में तीव्र वाष्पीकरण, अल्प वृष्टि तथा मिश्रण के कारण लवणता की अधिकतम मात्रा पाई जाती है। फारस की खाड़ी के शीर्ष भाग में लवणता 37.0% तथा आन्तरिक भाग में लगभग 40% होती है, जब कि स्वेज की खाड़ी के निकट लवणता 41% हो जाती है।

## 9.4 सारांश

महासागरों में लवणता के वितरण में क्षेत्रीय आधार पर भिन्नता पाई जाती है तथा कुछ महासागरों में दूसरों की तुलना में अधिक लवणता होती है। आम तौर पर, समुद्र का पानी वाष्पीकरण की उच्च दर वाले क्षेत्रों में अधिक खारा (नमकीन) होता है, जैसे कि उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय, और उन क्षेत्रों में कम खारा होता है जहां बहुत अधिक मीठे पानी का इनपुट होता है, जैसे कि नदी के मुहाने के पास या उच्च अक्षांशों पर जहां समुद्री बर्फ पिघल रही है। अटलांटिक महासागर तीन प्रमुख महासागरों में सबसे नमकीन है, जिसकी औसत लवणता लगभग 35.6 भाग प्रति हजार (पीपीटी) है। प्रशांत महासागर में औसत लवणता लगभग 34.7 पीपीटी है। हिंद महासागर में औसत लवणता लगभग 34.5 पीपीटी है।

## अभ्यास प्रश्न

1. प्रशांत महासागर में लवणता के वितरण का वर्णन कीजिये।
2. अटलांटिक महासागर में लवणता के वितरण का वर्णन कीजिये।।
3. हिन्द महासागर में लवणता के वितरण का वर्णन कीजिये।

## सन्दर्भ ग्रन्थ


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 10: महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति तथा धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारक

## इकाई की रूपरेखा


10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 महासागरीय धाराओं की अवधारणा तथा प्रकार

10.3 गहराई के आधार पर महासागरीय धाराओं के प्रकार

10.3.1 महासागरीय सतह की धारायें

10.3.1.1 जल के तापमान आधार पर महासागरीय धाराओं के प्रकार

10.3.1.1.1 गर्म महासागरीय धाराएँ

10.3.1.1.2 ठंडी महासागरीय जलधाराएँ

10.3.1.2 जलराशियों के आयतन, गति तथा प्रवाह दिशा के आधार पर महासागरीय धाराओं के प्रकार

10.3.1.2.1 प्रवाह

10.3.1.2.2 धारा

10.3.1.2.3 विशाल धारा

10.3.2 गहरे जल की महासागरीय धारायें

10.4 महासागरीय धाराओं की विशेषतायें

10.5 महासागरीय धारायें प्रभाव तथा महत्व

10.5.1 तटीय क्षेत्रों के मौसम एवं जलवायु पर प्रभाव

10.5.2 सागरीय जीवों पर प्रभाव

10.5.3 मत्स्य उद्योग पर प्रभाव

10.5.4 व्यापार पर प्रभाव

10.6 महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारक

10.6.1 वायुमण्डलीय परिसंचरण से सम्बन्धित कारक

10.6.1.1 ग्रहीय हवायें तथा वायु कर्षण

10.6.1.2 पृथ्वी का परिभ्रमण तथा कोरिआलिस बल (विक्षेपण बल)

10.6.2 पवन-कर्षण एवं कोरिआलिस बल (विक्षेपण बल) के परिणाम

10.6.2.1 संचरण भंवर

10.6.2.1.1 उत्तरी अटलाण्टिक उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

10.6.2.1.2 दक्षिणी अटलाण्टिक उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

10.6.2.1.3 उत्तरी प्रशान्त महासागर का उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

10.6.2.1.4 दक्षिणी प्रशान्त महासागर का उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

10.6.2.1.5 हिन्द महासागर का उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

10.6.3 एकमैन स्पाइरल एवं परिवहन

10.6.4 भूविक्षेपी संचरण ( धारा)

10.6.5 पश्चिमी सीमा तीव्रीकरण

10.7 महासागरों से सम्बन्धित कारक

10.7.1 सागरीय तापमान की विषमता

10.7.2 सागरीय लवणता में विभिन्नता

10.7.3 सागरीय जल के घनत्व में विभिन्नता

10.8 वायुमण्डल-महासागर अन्तक्रिया से सम्बन्धित कारक

10.8.1 वाष्पीकरण तथा वर्षा

10.9 धाराओं की दिशा में परिवर्तन के कारक

10.9.1 तट की दिशा तथा आकार

10.9.2 तलीय आकृतियाँ

10.9.3 मौसमी परिवर्तन

10.9.4 पृथ्वी का परिभ्रमण

10.10 महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारकों का सारांश

10.11 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 10

# महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति तथा धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारक

## 10.0 प्रस्तावना

महासागरीय धारायें, महासागरों की सबसे महत्वपूर्ण गतियाँ है जो महासागरों में तापमान के वितरण सहित उनके प्रत्येक पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। प्रस्तुत इकाई में महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति तथा धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारकों का वर्णन किया गया है।

## 10.1 उद्देश्य

इकाई 10 "महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति तथा धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारक" के अध्ययन के उपरान्त आप:

1. महासागरीय धाराओं की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. महासागरीय धाराओं के प्रकार बता सकेंगे।
3. महासागरीय धाराओं की सामान्य विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे ।
4. महासागरीय धारायें प्रभाव तथा महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।
5. महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारकों की व्याख्या कर सकेंगे।

## 10.2 महासागरीय धारायें अवधारणा तथा प्रकार

जैसा कि पिछली इकाइयों में वर्णित किया गया है, वायुमण्डल तथा महासागरों में गहरा सम्बन्ध है। दोनों में विभिन्न प्रकार की गतियां (motions) होती है। वायुमण्डल तथा महासागरों के बीच अन्तक्रियाओं (interactions) का जलवायु महत्व होता है साथ ही साथ ये महाद्वीपों, द्वीपों तथा समुद्रों में जीवन को प्रभावित करती हैं। महासागरीय सतह की धारायें वायुमण्डल को महासागरों की सतह से अन्तर्क्रिया का

प्रत्यक्ष परिणाम हैं क्योंकि अधिकांश महासागरीय धारायें वायु द्वारा कर्षण (wind-drag) द्वारा उत्पन्न होती है।

महासागरों में जलराशियों के एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने की गति को महासागरीय धारा कहते हैं जो धरातलीय भाग पर प्रवाहित होने वाली नदियों के समान ही होती है। वास्तव में महासागरीय धारायें महासागरीय जल की राशियां होती हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होती हैं। इस प्रवाह में सागरीय विशाल जलराशि की बहुत कम जलराशि सम्मिलित होती है। जलराशियों का यह प्रवाह सागरीय सतह पर हो सकता है या सतह के नीचे गहराई पर।

महासागरीय सतह की धाराओं की जलाराशियां गर्म या ठंडी हो सकती हैं। इस आधार पर 2 प्रकार की धाराओं की उत्पत्ति होती है गर्म एवं ठंडी महासागरीय धारायें। उल्लेखनीय है कि महासगारीय धारायें सभी प्रकार की महासागरीय गतियों (यथा सागरीय तरंग, महासागरीय ज्वारा तरंग, महासागरीय धारा आदि) में सर्वाधिक शक्तिशाली होती हैं क्योंकि ये महासागरीय जल को हजारों किलोमीटर तक बहा ले जाती हैं। याद रहे, सागरीय तरंगों (waves) में जलकण कक्षीय वृत्त (orbital circle) में गतिशील होते हैं, अतः सागरीय जल आगे नहीं बढ़ता है बल्कि केवल तरंग रूप (wave form) ही आगे बढ़ता है, परन्तु महासागरीय धाराओं (currents) में समस्त जलराशि आगे बढ़ती है। एक तरफ ज्वारीय तरंगें सामयिक घटना (periodic phenomena) हैं तो महासागरीय धारायें वर्षपर्यन्त सक्रिय रहती हैं।

**10.3 सागरीय जल की गहराई** के आधार पर महासागरीय धाराओं को निम्न 2 प्रकारों में विभाजित करते हैं:

- महासागरीय सतह की धारायें (surface ocean currents)
- गहरे जल की महासागरीय धारायें (deep ocean currents)

### 10.3.1 महासागरीय सतह की धारायें

यद्यपि महासागरीय सतह की धाराओं में समस्त महासागरीय जल का मात्र 10 प्रतिशत जल ही सम्मिलित होता है परन्तु ये सर्वाधिक महासागरीय सतह को आच्छादित करती हैं तथा अधिकांश महासागरीय जीवों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती। महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति महासागरीय सतह पर वायु की रगड़ (friction) से होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महासागरीय

सतह की धारायें वायुमण्डल तथा महासागरों की अन्तर्क्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम हैं। इसी कारण से इन धाराओं को वायु-चांलित महासागरीय धारा (wind-driven ocean currents) कहते हैं। उल्लेखनीय है कि वायुमण्डल- महासागर अन्तर्क्रिया (interactions) द्वारा केवल 2 प्रतिशत पवन ऊर्जा का महासागरीय सतह पर स्थानान्तरण हो पाता है परन्तु यह स्वल्प ऊर्जा भी महासागरीय धाराओं को महासागरीय जल के 10 प्रतिशत आयतन के परिवहन करने में समर्थ बना देती है। इन वायु-चालित महासागरीय धाराओं द्वारा निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों तक ऊष्मा की ऊर्जा का भी परिवहन होता है।सामान्य तौर पर महासागरीय सतह की धाराओं के क्रम एवं भूमण्डलीय वायु मेखलाओं (व्यापारिक, पछुवा तथा ध्रुवीय) में सामन्जस्य पाया जाता है परन्तु यह क्रम इतना सरल भी नहीं होता है, वरन् इसमें कोरिआलिस बल तथा स्थलखंडो के कारण जटिलता आ जाती है।

**10.3.1.1 जल के तापमान आधार पर महासागरीय धाराओं के प्रकार**

महासागरीय सतह की धाराओं को उनके जल के तापमान आधार पर निम्न 2 प्रकारों में विभाजित किया जाता है। विशाल धारा (Stream)

गर्म धारा

महासागरीय सतह की धारायें

ठंडी धारा

गर्म धारायें सामान्यतया ग्रहीय हवाओं (व्यापारिक तथा पछुवा हवायें) की दिशा का अनुसरण करती हैं तथा निम्न अक्षांशों से मध्य तथा उच्च अक्षांशों की ओर प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार गर्म धारायें उष्णकटिबन्धी महासागरों से ऊष्मा का ध्रुवों की ओर परिवहन करती हैं। दूसरी तरफ ठंडी धारायें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-दक्षिण एवं दक्षिण गोलार्द्ध में दक्षिण-उत्तर दिशा में प्रवाहित होती हैं। इस तरह ठंडी धारायें ठंडी जलराशियों की उपोष्ण एवं उष्णकटिबन्धी महासागरों तक परिवहन कर लाती है एवं जायर (gyre) के निर्माण में सहायक होती है।

**10.3.1.2 जलराशियों के आयतन, गति तथा प्रवाह की दिशा के आधार** पर महासागरीय सतह की धाराओं को निम्न 3 प्रकारों में विभाजित किया जाता है:

- प्रवाह (drift)
- धारा (current)
- विशाल धारा (stream)

### 10.3.1.2.1 प्रवाह (Drift)

जब पवन वेग से प्रेरित होकर सागर की सतह का जल आगे की ओर अग्रसर होता है तो उसे प्रवाह कहते हैं। इसकी गति तथा सीमा निश्चित नहीं होती है । गति मन्द होती है तथा केवल ऊपरी जल ही गतिशील होता है। इसके प्रमुख उदाहरण उत्तरी अटलांटिक प्रवाह तथा अटलांटिक प्रवाह है।

### 10.3.1.2.2 धारा (Current)

जब सागर का जल एक निश्चित गति सीमा के साथ सुनिश्चित दिशा की ओर तीव्र गति से अग्रसर होता है तो उसे धारा कहते हैं। इसकी गति प्रवाह से अधिक होती है।

### 10.3.1.2.3 विशाल धारा (Stream)

जब सागर का अत्यधिक जल भूतल की नदियों के समान एक निश्चित दिशा में गतिशील होता है तो उसे विशाल धारा कहते हैं। इसकी गति प्रवाह तथा धारा से अधिक होती है। खाड़ी की धारा या गल्फस्ट्रीम इसका प्रमुख उदाहरण है।

## 10.3.2 गहरी महासागरीय धारायें (Deep Ocean Currents)

पाइक्नोक्लाइन परत (300 से 1000 मीटर की गहराई तक वाले महासागरीय मण्डल को पाइक्लोक्लाइन परत कहते हैं. जिसमें जल के घनत्व में तेजी से परिवर्तन होता है) के नीचे चलने वाली महासागरीय धाराओं को गहरी धारायें (deep currents) कहते हैं। इन धाराओं की उत्पत्ति गहराई में सागरीय जल के घनत्व में विभिन्नता के कारण होता है । चूंकि महासागरीय जल का घनत्व तापमान एवं लवणता का प्रतिफल होता है अतः इन गहरी धाराओं को थर्मोहेलाइन धारा भी कहते हैं। इन गहरी धाराओं में महासागरीय जल का 90 प्रतिशत सम्मिलित रहता है। चूंकि गहरी धाराओं की उत्पत्ति अधिक घनत्व वाले जल के नीचे जाने (sinking) या अवप्रवाह (down welling) के कारण भी होती है, अतः इन्हें अवप्रवाह महासगरीय धारायें (down-welling ocean currents) भी कहते हैं।

## 10.4 महासागरीय धाराओं की विशेषतायें

महासागरीय धाराओं की निम्न विशेषतायें महत्वपूर्ण हैं:

- सागरीय तरंगों के विपरीत महसागरीय धाराओं में समस्त जलराशि आगे बढ़ती है।
- वायु ऊर्जा का केवल 2 से 4 प्रतिशत भाग ही घर्षण (friction) द्वारा महासागरीय जल की सतह पर स्थानान्तरित होता है। उदाहरण के लिए यदि वायु 60 किमी प्रति घण्टा की गति से प्रवाहित हो रही है तो वायु-चालित (wind- driven) महासागरीय धाराओं की गति मात्र 1.2 से 2.4 किमी० प्रतिघण्टा ही होगी (60 किमी० का 2 से 4 प्रतिशत)।
- महासागरीय सतह की धाराओं में समस्त महासागरीय जल के आयतन का मात्र 10 प्रतिशत जल ही रहता है, जबकि गहरी महासागरीय धारायें शेष 90 प्रतिशत जल का प्रतिनिधित्व करती हैं।
- महासागरीय सतह की धारायें पाइक्नोक्लाइन परत के ऊपर तथा गहरी महासगरीय पाइक्नोक्लाइन परत नीचे प्रवाहित होती हैं। अर्थात् महासागरीय सतह से 1000 किमी० की गहराई तक का जल इन धाराओं के साथ प्रवाहित होता है, जबकि गहरी महासगरीय धारायें पाइक्नोक्लाइन परत के नीचे यानी 1000 मीटर के नीचे चलती हैं। महासागरीय धारायें निश्चित दिशाओं में प्रवाहित होती हैं, जिनका निर्धारण कई कारकों यथा प्रचलित वायु 8 कोरिआलिस बल, दाब प्रवणता (pressure gradient), घनत्व में विभिन्नता, अभिसरण तथा अपसरण आदि द्वारा होता है।
- महासागरीय सतह की धाराओं तथा महासागरीय सतह पर प्रवाहित होने वाली प्रचलित हवाओं में घनिष्ट सम्बन्ध होता है क्योंकि अधिकांश महासागरीय धारायें भूमण्डलीय वायु की मेखलाओं (व्यापारिक, पछुवा तथा ध्रुवीय हवायें) का अनुसरण करती हैं। इस सम्बन्ध में अटलाण्टिक महासागर अपवाद है क्योंकि यहां पर धारायें वायु प्रतिरूपों का अनुसरण नहीं करती हैं।
- अधिकांश महासागरीय सतह की धारायें उपोष्ण महासागरों में जलीय गति के वृत्तीय प्रतिरूप (circular pattern) का निर्माण करती हैं, जिसे वृत्ताकार गति या जायर (gyre) कहते हैं (चित्र 10.1)।
- अण्टार्कटिका एक ही धारा, जिसे परि-ध्रुवीय महासागरीय धारा कहते हैं, से चारों तरफ से घेरे हुए है।
- उत्तरी गोलार्द्ध में महाद्वीपों के पूर्वी तटों से होकर प्रवाहित होने वाली धरायें अपेक्षाकृत कम चौड़ी होती हैं परन्तु तेज गति (40 से 120 किमी० प्रतिघण्टा) से प्रवाहित होती हैं. इनमें एक किलोमीटर की

गहराई तक का जल सम्मिलित होता है तथा ये सर्वाधिक लम्बी दूरी का सफर करती हैं। उदाहरण: गल्फस्ट्रीम तथा उत्तरी अटलाण्टिक ड्रिफ्ट, उत्तरी प्रशान्त महासागर में क्यूरोशिवा आदि।

- महासागरीय सतह की धारायें कोरिआलिस बल के कारण प्रचलित हवाओं की दिशा के उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बांयी ओर मुड़ जाती हैं।
- 300 से 1000 मीटर मोटी पाइक्नोक्लाइन परत महासागरीय सतह की धाराओं तथा गहरी महासागरीय धाराओं को अलग करती है।
- गहरी महासागरीय धारायें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-दक्षिण तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-उत्तर दिशा में प्रवाहित होती हैं तथा सतह की धाराओं के विपरीत भूमध्य रेखा को भी पार करती हैं।
- महासागरीय सतह की धाराओं की तुलना में गहरी धारायें मन्द गति से प्रवाहित होती हैं।
- गहरी महासागरीय धारायें ठंडे भारी जल के अवप्रवाह (downwelling) के कारण उत्पन्न होती हैं, अतः ये ठंडी जलराशि की धारा होती हैं तथा महासागरीय तली पर होकर भूमध्य रेखा की ओर प्रवाहित होती हैं।
- गहरी सागरीय धाराओं को ठंडी जलराशियों का उष्ण कटिबन्धी महासगारों के पूर्वी किनारों या महाद्वीपों की पश्चिमी सीमा के पास उत्प्रवाह (upwelling) होता है जिस कारण नीचे गहराई से पोषक तत्व ऊपर आ जाते हैं। ये पोषक तत्व सागरीय जीवों, खासकर मछलियों के लिए अति लाभदायक होते हैं।

## 10.5 महासागरीय धारायें प्रभाव तथा महत्व

महासागरीय धारायें सागरीय जीवों के साथ-साथ मानव समुदाय के लिए अति महत्वपूर्ण होती हैं। इसके अलावा महसागरीय धारायें स्थानीय एवं प्रादेशिक मौसम एवं जलवायु को प्रभावित करती हैं तथा उनमें बदलाव एवं परिमार्जन (modification) भी करती हैं। महासागरीय धारायें निम्न पक्ष को प्रभावित करती हैं :

- तटीय भागों के मौसम एवं जलवायु में परिमार्जन
- सागरीय जीवन एवं मत्स्य उद्योग
- व्यापार

### 10.5.1 तटीय क्षेत्रों के मौसम एवं जलवायु पर प्रभाव

- महासागरीय धारायें एक तरह से तापीय नियंत्रक (thermal regulator) होती है क्योंकि ये तापमान का स्थानान्तरण करती हैं।
- महासागरीय धाराएं जिन तटीय भागों से होकर गुजरती हैं, वहाँ की मौसम सम्बन्धी दशाओं में पर्याप्त संशोधन करती हैं। इनका प्रभाव सबसे अधिक तटीय भागों के तापक्रम पर होता है। यह प्रभाव लाभप्रद तथा हानिकर दोनों प्रकार का हो सकता है। गर्म धाराएं जब ठंडे भागों में पहुंचती हैं तो वहाँ का तापमान कम नहीं होने देती है तथा सर्दियों में उन्हें अपेक्षाकृत गर्म रखती हैं। उ० प० यूरोप के तटीय देशों की आदर्श जलवायु का राज गल्फस्ट्रीम का बढ़ा भाग उत्तरी अटलांटिक धारा ही है। सर्दियों में इन तटीय देशों (ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, हालैण्ड आदि) का तापमान अपेक्षाकृत अधिक रहता है। परन्तु यही गर्म धारा (गल्फस्ट्रीम) संयुक्त राज्य अमेरिका के तटीय भागों में ग्रीष्म काल में गर्म लहर (heat waves) को जन्म देकर तापमान को अचानक ऊँचा कर देती है, जिस कारण मौसम कष्टप्रद हो जाता है। शरदकाल में भी पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका इस धारा से लाभ नहीं उठा पाता है, क्योंकि इस समय हवाएँ स्थल से जल की ओर चलती हैं।
- गर्म धाराएं उष्ण कटिबंधीय उच्च तापमान को उच्च अक्षांशों की ओर ले जाकर तापमान के वितरण में समानता लाने का प्रयास करती हैं। इस तरह पृथ्वी के क्षैतिज ऊष्मा संतुलन (horizontal heat balance) को स्थापित करने में गर्म धाराएं पर्याप्त मदद करती हैं, क्योंकि निम्न अक्षांशों की अतिरिक्त ऊष्मा को उच्च अक्षांशों की ओर स्थानान्तरित करती हैं।
- ठंडी धाराएं जहाँ से गुजरती हैं, वहाँ का तापमान अत्यन्त नीचा कर देती हैं, जिस कारण हिमपात की स्थिति आ जाती है। क्यूराइल, लेब्राडोर, फाकलैण्ड की ठंडी धाराएं प्रभावित क्षेत्रों में भारी हिमपात के लिए पूर्णतया जिम्मेदार हैं।
- गर्म धाराओं के ऊपर चलने वाली हवाएं नमी धारण कर लेती हैं तथा प्रभावित क्षेत्रों को वर्षा प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए उत्तर पश्चिम यूरोप के तटीय भागों में उत्तरी अटलाण्टिक धारा तथा जापान के पूर्वी भाग में क्यूरोशियो धारा के कारण वर्षा होती है। उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट की वर्षा कुछ अंश तक गर्म जलधारा के कारण होती है। इसके विपरीत ठण्डी धाराएं वर्षा रोकती हैं।

उदाहरण के लिए द० अफ्रीका के पश्चिम तट पर कालाहारी तथा द० अमेरिका के पश्चिमी तट पर अटाकामा मरुस्थलों के आविर्भाव में क्रमश: बेंगुला तथा पीरू की ठंडी धाराओं का पर्याप्त हाथ है।

- गर्म तथा ठण्डी धाराओं के मिलन स्थल पर कुहरा पड़ता है, जो कि जलयानों के लिए हानिकारक होता है। न्यूफाउण्डलैण्ड के पास लेब्राडोर ठण्डी धारा तथा गल्फस्ट्रीम गर्म धारा के मिलने से **तापव्यतिक्रम** (inver- sion of temperature) होने से घना कुहरा पड़ता है। इसी तरह जापान के पास क्यूराइल ठण्डी धारा तथा क्यूरोशिवो गर्म धारा के मिलने से भी कुहरा पड़ता है।
- पेरू तट के पास तथा समीपवर्ती भागों में एल निनो के प्रबल होने पर सामान्य से 4 से 6 गुनी अधिक वर्षा होती है परन्तु पश्चिमी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है (यथा इण्डोनेशिया, भारत, बांगलादेश आदि) ला निना के प्रबल होने पर पश्चिमी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में सामान्य से अधिक वर्षा होती है।

### 10.5.2 सागरीय जीवों पर प्रभाव

- महासागरीय धारायें तलस्थ (बेन्थस) जीवों के लिए अति महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि ध्रुवीय क्षेत्रों में ठंडी जलराशियों के नीचे बैठने (अवप्रवाह downwelling) के कारण ऊपरी सतह की आक्सीजन भी नीचे आ जाती है। नीचे आने के बाद यह आक्सीजन सागरीय तली पर क्षैतिज रूप में फैल जाती है। इस प्रकार ऊपरी सागरीय सतह से नीचे आयी इस आक्सीजन से गहराई पर स्थित सागरीय तली पर विभिन्न सागरीय जीवों का विकास एवं संवर्द्धन होता है।
- गहरी महासागरीय बेसिनों से जलराशियों के उत्प्रवाह (upwelling) के कारण नीचे से पोषक तत्व ऊपर आ जाते हैं। सागरीय ऊपरी सतह के फाइटोप्लैकटन तथा जन्तुप्लैंकटन इन पोषक तत्वों का सेवन करते हैं। यही कारण है कि दक्षिणी अमेरिका के **इक्वेडोर** तथा पेरू तट के पास पूर्वी प्रशान्त महासागर का सीमान्त भाग एक महत्वपूर्ण मछली उत्पादक क्षेत्र हो गया है।
- गर्म एवं ठंडी महासागरीय धाराओं के महाद्वीपों के पूर्वी तटीय क्षेत्रों के पास अभिसरण (convergence) के कारण दो विपरीत जलराशियों का मिश्रण होने से पोषक तत्वों की सुलभता बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप वहां पर मछलियां अधिक पायी जाती हैं। उदाहरण: न्यूफाउण्डलैण्ड के पास ठंडी लेब्राडोर तथा गर्म गल्फस्ट्रीम धाराओं के मिलने से ग्राण्डबैंक महत्वपूर्ण मत्स्य केन्द्र बन गया है।

### 10.5.3 मत्स्य उद्योग पर प्रभाव

धाराएं मछलियों के जीवित रहने के लिए आवश्यक तत्व, आक्सीजन तथा भोजन को वितरित करने का कार्य करती हैं। धाराओं द्वारा एलेकटन नामक घास को लाया जाना मछलियों के लिए आदर्श स्थिति पैदा करता है। गल्फस्ट्रीम द्वारा यह प्लॅकटन न्यूफाउण्डलैण्ड तथा उ० प० यूरोपीय तट पर पहुँचाया जाता है, जिस कारण वहाँ पर मत्स्य उद्योग अत्यधिक विकसित हो गया है। परन्तु पीरू तट पर एलनिनो धारा के कारण प्लॅकटन के अदृश्य हो जाने पर मछलियाँ मर जाती हैं और मत्स्य उद्योग को क्षति उठानी पड़ती है। इसके विपरीत एल नीनो के कमजोर पड़ने पर नीचे से ठंडे जल का ऊपर की ओर उत्प्रवाह (upwelling) होने से पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व आ जाते हैं। परिणामस्वरूप मछलियों, खासकर ऍंकोवी, की भरमार हो जाती है। ऐंकोवी मछली का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक मूल्य होता है। यही कारण है कि पेरू तट विश्व का महत्त्वपूर्ण मत्स्य केन्द्र हो गया है। शीत क्षेत्रों में पैदा होने वाली खाद्य मछलियाँ ठंडी धाराओं के साथ गर्म प्रदेशों में आ जाती हैं। गर्म और ठण्डी धाराएं भी मिलकर विभिन्न प्रकार की मछलियों को जन्म देती हैं।

### 1.5.4 व्यापार पर प्रभाव

महासागरीय धाराएं जलमार्गों को निश्चित करती हैं, जिसके सहारे व्यापारिक जलयानों का परिवहन किया जाता है। परन्तु धाराओं का यह प्रभाव प्राचीन काल में ही अधिक था, क्योंकि वर्तमान समय में शक्तिचालित जहाज हवा तथा धाराओं की दिशा की परवाह नहीं करते हैं। जहाँ पर गर्म एवं ठण्डी धाराएं मिलती है, यहाँ पर कुहरा पड़ता है जो कि सामुद्रिक जहाजों के परिवहन में बाधा उपस्थित करता है (न्यूफाउण्डलैण्ड तथा पान तट के पास इसी तरह के कुहरे के कारण जलयानों को अपार क्षति उठानी पड़ती है)। ठण्डी धाराओं द्वारा बड़ी-बड़ी हिम शिलाएं निम्न अक्षांशों की ओर लायी जाती हैं जिनके टकराने के कारण जलयान क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। गर्म धाराओं के कारण ठण्डे स्थानों के बन्दरगाह साल भर खुले रहते हैं।

### 10.6 महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारक

महासागरों में धाराओं की उत्पत्ति कई कारकों के सम्मिलित प्रयास के फलस्वरूप सम्भव होती है। इनमें से कुछ कारक महासागरीय जल की विभिन्न विशेषताओं से सम्बन्धित हैं, कुछ कारक पृथ्वी की परिभ्रमण क्रिया तथा उसके गुरुत्वाकर्षण बल से सम्बन्धित हैं तथा कुछ बाह्य कारक हैं। इनके अलावा

कुछ ऐसे कारक भी हैं जो धाराओं में परिवर्तन लाते हैं। इन्हें रूप परिवर्तन कारक (modifying factors) कहते हैं। महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति, उनकी दिशा में विक्षेप (deflection) तथा उनमें परिमार्जन (modification) के कारकों का निम्न रूपों में वर्गीकरण किया जा सकता है :

(A) महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारक

**1 वायुमण्डलीय परिसंचरण से सम्बन्धित कारक**

i. वायुदाब

ii. ग्रहीय हवायें (वायुकर्षण एवं घर्षण बल)

2. **वायुमण्डलीय आर्द्रता से सम्बन्धित कारक**

i. वाष्पीकरण

ii. वर्षण (precipitation) (जलवर्षा तथा हिमद्रवित जल)

**3. महासागरीय जल से सम्बन्धित कारक**

i. दाब प्रवणता (pressure gradient)

ii. तापमान में विभिन्नता

iii. लवणता में विभिन्नता

**(B) महासागरीय धाराओं की दिशा में विक्षेपण के कारक (पृथ्वी के घूर्णन (rotation) से सम्बन्धित कारक)**

**1.** महासागरीय जलराशि का संयोजन (pooling)

**2.** कोरिऑलिस विक्षेपण (deflection)

- महासागरीय भंवर (gyre)
- एकमैन स्पाइरल तथा एकमैन परिवहन
- ज्योस्ट्राफिक संचरण (circulation)
- पश्चिमी सीमा तीव्रीकरण (western bound-Ary intensification)

**(C) महासागरीय धाराओं में परिमार्जन (modification) के कारक**

1. सागर तटरेखा का आकार (shape) एवं दिशा (orientation)
2. महासागरीय बेसिनों के नितल के उच्चावच्च

3. ऋत्विक विभिन्नता (seasonal variation)

4. पृथ्वी का घूर्णन (कोरिआलिस विक्षेपण)

### 1.6.1.1 ग्रहीय हवायें तथा वायु कर्षण (Planetary Winds and Wind Drag)

प्रचलित अथवा ग्रहीय (सनातनी) हवायें धाराओं की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जब वायु सागरीय जल के ऊपर से एक निश्चित दिशा में लम्बी अवधि तक चलती है तो वह सागरीय जल के अणुओं (molecules) से टकराती है- जिससे रगड़ (friction) उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप वायु जल के अणुओं को आगे की ओर घसीट (कर्षणबल, drag) ले जाती है। इस प्रक्रिया के दौरान वायु ऊर्जा का 2-4 प्रतिशत जल के अणुओं में स्थानान्तरित हो जाता है। इस वायु ऊर्जा के सागरीय जल के अणुओं में स्थानान्तरण की प्रक्रिया को वायु कर्षण (wind drag) कहते हैं। इस तरह पवन कर्षण के कारण सागरीय जल की सतह तरंगणित (undulating) हो जाती है और अन्ततः स्वेल का निर्माण हो जाता है। यह स्वेल धीरे-धीरे वायु की दिशा में आगे बढ़ता है। आगे चलकर इन्हीं स्वेल से धाराओं की उत्पत्ति होती है।

उल्लेखनीय है कि प्रचलित हवायें (यथा व्यापारिक, पछुवा तथा ध्रुवीय हवायें) न केवल महासागरीय सतह की धाराओं को उत्पन्न करती है वरन् उनको गति भी निश्चित करती हैं। उदाहरण के लिए यदि वायु 40 किमी० प्रतिघण्टा की गति से चल रही है तो उससे उत्पन्न महासागरीय धारा की गति 1.2 से 1.6 किमी प्रतिघण्टा होगी। कार्ल जोपरिज ने क्रमशः हवाओं तथा धाराओं की दिशा के बीच तथा हवाओं एवं धाराओं की गति के बीच निश्चित अनुपात बताया है तथा उनका परिकलन गणित के आधार पर किया है।

**कार्ल जोपरिज** ने बताया कि हवायें सागरीय जल को तली तक आंदोलित करती है, अर्थात् हवाओं से उत्पन्न धाराओं में सागरीय सतह से लेकर तली तक का जल सामूहिक रूप से आ बढ़ता है। परन्तु प्रयोगों के आधार पर फिण्डले ने बताया कि वायु-जनित धारायें सागरीय जल को 30-36 फीट की गहराई तक ही आंदोलित करती हैं। गहराई के बढ़ते जाने के साथ सागरीय जल का घनत्व भी बढ़ता जाता है, परिणामस्वरूप वायु भारी जल को गतिशील नहीं कर पाती है।

महासागरीय सतह की धारायें भूमण्डलीय पवन मेखलाओं यथा : व्यापारिक, पछुवा तथा ध्रुवीय हवाओं, का अनुसरण करती हैं। उल्लेखनीय है कि पृथ्वी के घूर्णन से जनित कोरिआलिस विक्षेप बल (coriolis

deflective force) इन हवाओं को उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बांयी ओर विक्षेपित (मोड़) कर देता है। यह बल महासागरीय धाराओं की दिशा परिवर्तन में भी क्रियान्वित होता है। इसका आगे उल्लेख किया जायेगा। उदाहरण के लिए व्यापारिक हवाओं के प्रभाव में ही विषुवत रेखीय धारायें पूर्व से पश्चिम दिशा में चलती हैं। अटलाण्टिक महासागर में गल्फस्ट्रीम तथा प्रशान्त महासागर में क्यूरोसिवो धारा पछुवा हवा की दिशा का ही अनुसरण करती हैं। हिन्द महासागर में मानसून हवाओं को दिशा में वर्ष में दो बार परिवर्तन के कारण धाराओं की दिशा में 16 महीने के बाद परिवर्तन हो जाता है।

### 10.6.1.2 पृथ्वी का परिभ्रमण तथा कोरिआलिस विक्षेपण (Rotation of the Earth and Coriolis Deflection)

पृथ्वी के अपनी अक्ष पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन के कारण विक्षेप बल या कोरिऑलिस बल जनित होता है जिसके द्वारा प्रचलित हवाओं तथा महासागरीय धाराओं का सामान्य दिशा में विक्षेपण (deflection) हो जाता है। कोरिऑलिस बल का नामकरण प्रसिद्ध वैज्ञानिक जी० जी० कोरिऑलिस के नाम पर किया गया है। वास्तव में कोरिआलिस बल अपने आप में कोई बल नहीं है, बल्कि यह पृथ्वी के घूर्णन का प्रभाव है, अत: इसे कोरिऑलिस प्रभाव भी कहते हैं। कोरिऑलिस प्रभाव के निम्न उपलक्षक (characteristic features) हैं :

- कोरिऑलिस बल अपने आप में कोई बल नहीं है अपितु यह पृथ्वी की घूर्णन गति (rotational movement)का प्रभाव है।
- किसी भी ऐसी वस्तु जो गतिशील (in motion) है, पर कोरिऑलिस बल प्रभावी हो जाता है, उदाहरण के लिए पवन, उड़ते पक्षी, उड़ान भरती हवाई जहाज, हवा में फायर की गयी गोली, बैलिस्टिक मिसाइल, हवा में फेंके गये कंकड़-पत्थर आदि गतिमान वस्तुओं पर कोरिऑलिस बल के प्रभाव के कारण इनकी दिशायें प्रभावित होती हैं। कोरिऑलिस बल वायु की दिशा प्रभावित करता है न कि उसके वेग को क्योंकि यह बल हवा की दिशा को वास्तविक मार्ग से विक्षेपित कर देता है (अन्य गतिमान वस्तुओं की दिशा को भी विक्षेपित करता है)।
- कोरिऑलिस बल के परिमाण (magnitude) का निर्धारण पवन वेग द्वारा किया जाता है। जितना ही पवन वेग अधिक होगा उतना ही कोरिआलिस बल पवन की दिशा में विक्षेप महासागरीय संचरण की

उत्पत्ति होती है, यथा अधिक होगा। इस तरह स्पष्ट है कि पवन वेग एवं विक्षेप बल के प्रभाव (कोरिऑलिस बल के प्रभाव) के बीच सीधा या धनात्मक सम्बन्ध होता है।

- ध्रुवों पर पृथ्वी की न्यूनतम घूर्णन गति के कारण कोरिआलिस बल (प्रभाव) भी सर्वाधिक होता है जबकि यह भूमध्यरेखा पर शून्य हो जाता है।
- कोरिआलिस बल क्षैतिज रूप में गतिमान पवन (अन्य गतिमान वस्तुएं भी) के समकोण पर कार्य करता है। इसका कुल परिणाम यह होता है कि क्षैतिज प्रवाही हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर **तथा दक्षिणी गोलार्द्धपृथ्वी के पूर्णन का परिणाम होता है** कोरिऑलिस विशेषण बल का जनन, जो अन्ततः महासागरीय सतह की धाराओं की दिशा को विशेषित कर देता है। उदाहरण के लिए विषुवत रेखा से उत्तरी ध्रुव की ओर या उत्तरी ध्रुव से विषुवत रेखा की ओर प्रवाहित होने वाली धारायें अपनी दाहिनी ओर मुड़ जाती हैं जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बांयी ओर मुड़ जाती है।

पृथ्वी के घूर्णन के कारण विषुवत रेखा के दोनों ओर महासागरीय जल घूर्णन दिशा (पश्चिम से पूर्व ) के विपरीत दिशा, अर्थात् पूर्व- पश्चिम में गतिशील होता है जिससे विषुवत रेखीय धाराओं की उत्पत्ति होती है। ये धारायें पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हैं। पछुवा हवाओं के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में महासागरीय जल उत्तर-पूर्व दिशा में प्रवाहित होता है, यथा गल्फस्ट्रीम एवं उ० पू० अटलाण्टिक ड्रिफ्ट तथा प्रशान्त महासागर में किरोसिवो एवं किरोसियो विस्तार की धारायें।

### 10.6.2 पवन-कर्षण एवं कोरिऑलिस विक्षेष के परिणाम (Resultants of Wind Drag and Coriolis Deflection)

पवन कर्षण, दाबप्रवणता तथा कोरिआलिस विक्षेप के कारण महासागरीय जल के विशिष्ट प्रकार के प्रवाह तथा महासागरीय संचरण की उतपत्ति होती है, यथा:

(1) संचरण भंवर (circulation gyre)

(2) एकमैन परिवहन

(3) पश्चिमी सीमा तीब्रीकरण (western boundary Intensification)

#### 10.6.2.1 संचरण भंवर (gyre)

सामान्य भाषा में महासागरीय संचरण भंवर महासागरीय सतह की धाराओं का न्द सिस्टम होता है जिसके मध्य में महासागर का विस्तृत क्षेत्र होता है। यह चारों तरफ से महासागरीय धाराओं से घिरा होता

है। मध्यवर्ती भाग महासागरीय जल के उच्च स्तर (level) के कारण गुम्बद के आकार का होता है जिसका पश्चिमी ढाल तीव्र एवं पूर्वी ढाल मन्द होता है। समुद्र विज्ञान में सागरीय सतह की दावप्रवणता (pressure gradient) का अर्थ होता है महासागरीय जल की सतह की ऊंचाई में क्षैतिज विभिन्नता महासागरीय सतह के जल प्रवाह के अभिसरण (convergence) के कारण जहां कहीं भी जल का भण्डारण (pilling) होता है तो उसे जल का टीला (water mound) या जल की पहाड़ी कहते हैं जिसकी दाब प्रवणता भी होती है। इस तरह के जल के टीले की ऊंचाई 1 मीटर होती है। इसके विपरीत महासागरीय जल के अपसरण (divergence) क्षेत्रों को महासागरीय जल की घाटियां कहते हैं। महासागरीय जल की पहाड़ियों के शीर्षों एवं घाटियों की तलियों के बीच ऊंचाई में अन्तर सामान्यतया एक मीटर से अधिक नहीं होता है।

उष्णकटिबन्धी अटलाण्टिक महासागर, प्रशान्त महासागर तथा हिन्द महासागर में दोनों गोलार्द्धों में संचरण भंवर का विकास हुआ है। इन संचरण भंवरों के चारों तरफ 4 महासागरीय सतह की धाराओं का घेरा है, 1. पश्चिम दिशा में चलने वाली विषुवत रेखीय धारा, 2. पश्चिमी सीमा धारा, 3. पछुवा हवाओं के प्रभाव में पूर्व दिशा में प्रवाहित होने वाली धारा तथा 4. पूर्वी सीमा धारा। इस तरह अपने चारों ओर से महासागरीय धाराओं से घिरे उष्णकटिबन्धी महासागरों में कुल 5 संचरण भंवरों का निर्माण हुआ है: प्रशान्त महासागर में 2, हिन्द महासागर में 1 तथा अटलाण्टिक महासागर में 2 संचरण भंवर। इनके अलावा 2 कम विकसित संचरण भंवर भी हैं उपध्रुवीय संचरण भंवर तथा परिअण्टार्कटिक संचरण भंवर।

### 10.6.2.1.1 उत्तरी अटलाण्टिक उपोष्ण कटिबन्धी भंवर (gyre)

इस भंवर का निर्माण उत्तरी विषुवत रेखीय धारा गल्फस्ट्रीम की पश्चिमी सीमा धारा, उत्तरी अटलाण्टिक धारा तथा कनारी ठंडी धारा (पूर्वी सीमा धारा) से हुआ है।

### 10.6.2.1.2 दक्षिणी अटलाण्टिक उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

इस भंवर का निर्माण दक्षिणी विषुवत रेखीय गर्म धारा, ब्राजील गर्म धारा (पश्चिमी सीमा धारा), पश्चिमी वायु ड्रिफ्ट तथा बेंगुला ठंडी धारा (पूर्वी सीमा धारा) से हुआ है।

### 10.6.2.1.3 उत्तरी प्रशान्त महासागर का उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

यह भंवर उत्तरी विषुवत रेखीय गर्म धारा, क्यूरोसियो गर्म धारा (पश्चिमी सीमा धारा), उत्तरी पैसफिक गर्म धारा तथा कैलिफोर्निया ठंडी धारा (पूर्वी सीमा धारा) से घिरा है।

#### 10.6.2.1.4 दक्षिणी प्रशान्त महासागर का उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

यह भंवर गर्म दक्षिणी विषुवत रेखा धारा, पूर्वी आस्ट्रेलिया गर्म धारा (पश्चिमी सीमा धारा), पश्चिमी पवन प्रवाह (ड्रिफ्ट) तथा ठंडी पेरू धारा (पूर्वी सीमा धारा) से आवृत्त है।

#### 10.6.2.1.5 हिन्द महासागर का उपोष्ण कटिबन्धी भंवर

यह भंवर गर्म द० विषुवत रेखा धारा, अगुलहास गर्म धारा (पश्चिमी सीमा धारा), पश्चिमी पवन प्रवाह तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया ठंडी धारा से आवृत्त है।

उपर्युक्त सभी भंवरों (gyres) के मध्य में महासागरीय जल का टीला (पहाड़ी) पाया जाता है। इसके शिखर की ऊंचाई समीपी भागों से 1 मीटर से अधिक होती है। इस प्रकार दाब प्रवणता भंवर के शिखर से चारों तरफ परिधि की ओर होती है। इस कारण भंवर के केन्द्र से चारों तरफ जल का संचलन (movement) होता है। बाहर वाले अपेक्षाकृत कम ऊंचे जलस्तर वाले भाग को जलघाटी (water valley) कहते हैं।

### 10.6.3 एकमैन स्पाइरल एवं परिवहन (Ekman Spiral and Transport)

स्कैण्डिनेविया के भौतिकशास्त्री वी० वालफ्रिड एकमैन ने सन् 1902 में कोरिआलिस विक्षेपण (deflection) के कारण वायु के सापेक्ष महासागरीय सतह की धाराओं की दिशा में विक्षेपण के परिकलन के लिए एक गणितीय मॉडल विकसित किया। आगे चलकर इस मॉडल का नामकरण एकमैन स्पाइरल तथा एकमैन परिवहन किया गया। यह सैद्धान्तिक मॉडल महासागरीय धाराओं को उत्पत्ति के कारक वायु की दिशा से उनकी दिशा के विचलन (devation) या विक्षेपण को दर्शाता है। एकमैन के अनुसार वायु द्वारा चालित महासागरीय सतह का जल सम्बन्धित वायु की दिशा से उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बांयी ओर $40^0$ कोण पर विक्षेपित हो जाता है। इस मॉडल के अनुसार सागरीय सतह के नीचे प्रत्येक क्रमिक निचली परत के जल की संचलन गति कम होती जाती है क्योंकि नीचे जाने पर धारा-जनक वायु द्वारा रगड़ (Inction) भी कम होती जाती है। 100 से 200 मीटर की गहराई पर वायु का रगड़ बल लगभग शून्य हो जाता है, अतः महासागरीय सतह के जल का संचलन रुक जाता है।इस प्रक्रिया के कारण सर्पिल धाराओं (spiraling current) का आविर्भाव होता है जिसे एकमैन स्पाइरल कहते हैं।

इस तरह ऊपर दिये गये विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक क्रमिक निचली सागरीय जल की परत पवन ऊर्जा को नीचे की ओर स्थानान्तरित करती जाती है परन्तु यह ऊर्जा नीचे की ओर घटती जाती है। परिणामस्वरूप प्रत्येक क्रमिक निचली परत के जल की गति भी घटती जाती है। प्रत्येक क्रमिक निचली परत के जल की गति की दिशा ऊपरी परत के सन्दर्भ में उ० गोलार्द्ध में दाहिने ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बांयी ओर विक्षेपित हो जाती है। उल्लेखनीय है कि विभिन्न परतों का जल विभिन्न दिशाओं में गतिमान होता है परन्तु 100-200 मीटर की गहराई तक सभी परतों की समस्त जलराशि की गति की दिशा, धारा उत्पन्न करने वाली वायु के समकोण (90°) पर होती है। इसे बल्क परिवहन या नेट परिवहन कहते हैं। महासागरीय सतह की धारा की समस्त जलराशि के इस प्रकार के परिवहन को एकमैन परिवहन कहते हैं। एकमैन परिवहन धारा उत्पन्न करने वाली वायु की दिशा से 70° कोण पर होता है।|

### 10.6.3 भूविक्षेपी संचरण (धारा) (Geostrosphic Circulation)

भूविक्षेपी समुद्री धारायें उपोष्ण कटिबन्धी भंवरों (gyres) की गौण सतहीय धारायें होती हैं, जो कोरिआलिस विक्षेप, एकमैन परिवहन तथा दाब प्रवणता के सम्मिलित प्रभावों का परिणाम होती हैं । उपोष्ण महासागरों में महासागरीय सतह की धाराओं के वृत्तीय संचलन के कारण उत्पन्न भंवरों में उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के अनुरूप (clockwise) तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में विपरीत (anti-clockwise) जल का संचरण होता है। इसे भूविक्षेपी समुद्री धारा कहते हैं।

उल्लेखनीय है कि एकमैन परिवहन उत्तरी गोलार्द्ध में जलराशि को व्यापारिक हवाओं के दाहिने ओर (उत्तर की ओर) तथा द० गोलार्द्ध में बांयी ओर (दक्षिण की ओर) मोड़कर गतिशील कर देता है। पछुवा हवायें समुद्री जलराशि को उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण की ओर (अर्थात् भूमध्य रेखा की ओर) तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर की ओर (अर्थात् भूमध्यरेखा को और) जलराशियों को मोड़ देती हैं । इस तरह भंवर संचरण (gyre circulation) में जल के विपरीत दिशाओं में संचरण (circulation) के फलस्वरूप जलराशियों के अभिसरण (convergence) के कारण भंवर के मध्य में समुद्री जल का संग्रह (piling) हो जाता है। इसे समुद्री जल का टीला (sea water mound) या जल पहाड़ी कहते हैं।

दाब प्रवणता का अनुसरण करते हुए समुद्री जल के टीले से सागरीय जल गुरुत्व बल के प्रभाव में जल के टीले के ढाल के सहारे नीचे की ओर गतिशील होता है परन्तु कोरिऑलिस बल जल को दाहिनी ओर विक्षेपित कर देता है। इस तरह गुरुत्व बल सदा समुद्री जल को जल के टीले के डाल के सहारे नीचे की

ओर गतिशील करता है अर्थात् जल को टीले से दूर करने का प्रयास करता है। दूसरी तरफ कोरिआलिस बल समुद्री जल को वक्र मार्ग से सदा जलटीले (water mounds) में धकेलता रहता है। इस तरह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि दो विरोधी बल (कोरिआलिस तथा गुरुत्व बल) समुद्री जल को जलटीले से दूर करने (गुरुत्व बल) तथा जलटीले की ओर धकेलने (कोरिऑलिस बल) में सदैव लगे रहते हैं। जब ये दोनों बल बराबर हो जाते हैं (सन्तुलित हो जाते हैं) तो समुद्री जल जलपहाड़ी (water hill या mound) के कण्टूर के सहारे बहने लगता है। भंवर (gyre) के मध्य में विकसित जलपहाड़ी के चारों ओर वृत्ताकार मार्ग से जल की गति को भूविक्षेपी संचरण (geostrophic circulation) या भूविक्षेपी धारा कहते हैं। उल्लेखनीय है कि सिद्धान्त रूप में भूविक्षेपी संचरण में जल कण भंवर (gyre) के मध्य विकसित जलपहाड़ी के कण्टूर के समानान्तर गतिशील होते हैं परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है।

### 10.6.4 पश्चिमी सीमा तीव्रीकरण (Western Boundary Intensification)

जलटीला (water mound) या जलपहाड़ी (water hill) का शीर्ष, भंवर (gyre) के मध्य में न होकर भंवर की पश्चिमी सीमा या महासागरों की पश्चिमी सीमा के निकट है क्योंकि जलटीले की आकृति असममित (asymmetrical) है। अर्थात जलपहाड़ी का पश्चिमी ढाल तीव्र तथा पूर्वी ढाल मन्द है। इस स्थिति के कारण पश्चिमी सीमा सतहीय धाराओं की चौड़ाई कम किन्तु प्रवाह गति अधिक होती है। उदाहरण के लिए गल्फस्ट्रीम धारा में। इसके विपरीत जलटीले के पूर्वी पार्श्व का ढाल मन्द होता है। परिणामस्वरूप समुद्री धाराओं के लिए अधिक स्थान सुलभ हो जाता है। इस कारण पूर्वी सीमा सतहीय धाराओं की चौड़ाई अधिक किन्तु प्रवाह गति कम होती है। इस तरह सभी महासागरों के उपोष्ण भंवरों (gyres) को पश्चिमी सीमा सतहीय धाराओं को उच्च प्रवाह गति को पश्चिमी सीमा तीव्रीकरण या मात्र पश्चिमी तीव्रीकरण कहते हैं।

## 10.7 महासागरों से सम्बन्धित कारक

महासागरीय जल के निम्न 3 गुण (properties) महासागरीय धाराओं को उत्पत्ति में सहायक होते हैं

- सागरीय तापमान की विषमता
- सागरीय लवणता में विभिन्नता
- सागरीय जल के घनत्व में विभिन्नता

### 10.7.1 सागरीय तापमान में विभिन्नता

पृथ्वी पर सूर्यातप के वितरण में पर्याप्त असमानता पायी जाती है। विषुवतरेखीय भागों में सूर्य की किरणें वर्ष भर लम्बवत् चमकती हैं, जिस कारण अत्यधिक सूर्याताप के कारण जल का तापमान ऊँचा हो जाता है। परिणामस्वरूप जल का घनत्व अत्यधिक कम हो जाता है और विषुवतरेखीय जल धारा के रूप में गतिशील हो जाता है। इस तरह विषुवतरेखा पर जल की आपूर्ति के लिए ध्रुवों की ओर से विषुवत् रेखा की ओर अध: प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है।

### 10.7.2 सागरीय लवणता में विभिन्नता

सागरीय लवणता से सागरीय जल का घनत्व प्रभावित होता है तथा घनत्व में अन्तर के कारण धाराएं उत्पन्न होती हैं। यदि दो क्षेत्रों का तापमान समान है, परन्तु दोनों क्षेत्रों की लवणता में अन्तर है तो अधिक लवणता वाले भाग में जल का घनत्व अधिक हो जायेगा, जिस कारण जल नीचे बैठता है, जबकि कम लवणता वाले भाग में जल का घनत्व अपेक्षाकृत कम होगा, जिस कारण कम खारे भाग से जल अधिक खारे भाग की ओर गतिशील हो जाता है। ऊपरी सतह के नीचे अधिक खारे भाग का जल कम खारे भाग की ओर अधः प्रवाह के रूप में चलने लगता है। इस तरह की धाराएं खुले तथा बन्द सागरों के मध्य चला करती हैं। अटलांटिक महासागर (अपेक्षाकृत कम खारा) से जिब्राल्टर जलडमरूमध्य से होकर रूम सागर की ओर धारा चलने का यही कारण है। रूम सागर की सतह के नीचे का जल अधः प्रवाह के रूप में अटलांटिक महासागर की ओर चलने लगता है। इस तरह की धाराएं लाल सागर (अधिक खारा) तथा अरब सागर के बीच में चलती है। बाल्टिक सागर से उत्तरी सागर की ओर तथा उत्तरी सागर से बाल्टिक सागर को और अधः प्रवाह निश्चय ही लवणता में विभिन्नता के कारण उत्पन्न होता है।

### 10.7.3 सागरीय जल के घनत्व में विभिन्नता

वास्तव में सागरीय जल के घनत्व में अन्तर महासागरीय तापमान धाराओं के रूप में सागरीय जल के संचलन का प्रमुख कारण है, जबकि सागरीय जल का घनत्व, सागरीय जल के लवणता तथा सागरीय सतह पर वायुदाब का प्रतिफल होता है। नियमानुसार सागरीय जल का संचलन कम घनत्व वाले क्षेत्र से अधिक घनत्व के क्षेत्र की ओर होता है। ऊपर तापमान एवं लवणता के कारण उत्पन्न घनत्व में भिन्नता के कारण धाराओं की उत्पत्ति की विवेचना की जा चुकी है। ध्रुवीय क्षेत्रों में हिम के पिघलने से प्राप्त जल के कारण भी सागरीय जल का घनत्व कम हो जाता है, अतः कुछ क्षेत्रों से ठंडा सागरीय जल ठंडी धारा

के रूप में ध्रुवीय क्षेत्रों से भूमध्यरेखा की ओर चलने लगता है। पूर्वी ग्रीनलैण्ड ठंडी धारा इसका प्रमुख उदाहरण है।

उल्लेखनीय है कि वायुदाब, तापमान, लवणता तथा घनत्व के कारकों को एक साथ देखना चाहिए, अर्थात् महासागरीय धारायें इनके सम्मिलित प्रभाव का परिणाम होती हैं। कम घनत्व वाला जल हल्का होता है, इस कारण वह फैलता है तथा उच्च घनत्व वाले जल के क्षेत्रों की ओर गतिशील होता है, क्योंकि अधिक घनत्व वाला सागरीय जल नीचे बैठता है।

## 10.8 वायुमण्डल-महासागर अन्तक्रिया से सम्बन्धित कारक

महासागरीय धारायें सामान्यतया वायुमण्डलीय दशाओं यथा : वायुमण्डलीय दबाव एवं उत्पन्न दाब प्रवणता, पवन दिशा तथा पवन गति, वाष्पीकरण, वर्षा आदि द्वारा प्रभावित एवं नियंत्रित होती हैं। वायुमण्डलीय दबाव एवं पवन संचरण (air Circulation) के धाराओं पर पड़ने वाले प्रभावों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

समुद्र विज्ञान में दाव प्रवणता (pressure gradient) का सम्बन्ध सागरीय जल की सतह की ऊंचाइयों में अन्तर से होता है। महासागरीय जल की सतह समतल न होकर असमान होती है, अर्थात् उस पर जल टीला (water mounds) या जल पहाड़ी होती है (सागरीय जल का ऊपर उठा भाग) जिनके बीच में जल घाटी (water valley) होती हैं। सरल शब्दों में सागरीय जल की सतह के ऊंचे उठे भाग को जल टीला तथा निचले भाग को जलघाटी कहते हैं। जल टीले एवं जलघाटियों के मध्य एक मीटर की ऊंचाई का अन्तर होता है। इस तरह दवाव जल टीले के शीर्ष से जल घाटियों की तरफ होता है। इसे दाव प्रवणता कहते हैं। इस दाव प्रवणता के कारण जल टीलों से सागरीय जल का जलघाटियों की ओर संचलन होता है। इस तरह की स्थिति सभी संचरण भंवरों (circulation gyres) में होती है।

### 10.8.1 वाष्पीकरण तथा वर्षा

जिन भागों में वर्षा अधिक होती है तथा वाष्पीकरण कम होता है, वहाँ पर अत्यधिक जलराशि के कारण जल का तल ऊँचा हो जाता है। इसके विपरीत जहां पर वर्षा तो कम होती है, परन्तु वाष्पीकरण अधिक होता है, वहाँ पर जल का तल नीचा हो जाता है। वास्तव में वर्षा तथा वाष्पीकरण का सागरीय लवणता एवं घनत्व से भी सम्बन्ध होता है। कम वाष्पीकरण के साथ उच्च वर्षा के कारण लवणता कम हो जाती है और सागरीय जल का घनत्व कम हो जाता है, परिणामस्वरूप जल का तल ऊँचा हो जाता है। इसके

विपरीत अत्यधिक वाष्पीकरण के साथ न्यून वर्षा के कारण लवणता तथा घनत्व में वृद्धि हो जाती है, जिस कारण जल का तल नीचा हो जाता है। इस तरह उच्च जल तल से निम्न जलतल की ओर धाराएं चलने लगती हैं। विषुवतरेखा पर उच्च वर्षा एवं न्यून वाष्पीकरण के कारण उच्च जलतल होने से उच्च अक्षांशों की ओर धाराएं चलने लगती हैं। इसी तरह ध्रुवीय भागों में कम वाष्पीकरण किन्तु हिम के पिघलने से प्राप्त जल की अधिकता के कारण धाराएं मध्य अक्षांशों की ओर चलने लगती हैं, रूम सागर में उच्च तापमान के कारण अपेक्षाकृत अधिक वाष्पीकरण के कारण सागरीय लवणता में वृद्धि हो जाती है, परिणामस्वरूप घनत्व बढ़ जाता है तथा अटलांटिक महासागर से रूम सागर की ओर धारा चलने लगती है।

## 10.9 धाराओं की दिशा में परिवर्तन के कारक

धाराओं की दिशा में प्रचलित पवन तथा पृथ्वी की परिभ्रमण गति का पर्याप्त प्रभाव होता है। इन प्रभावों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अलावा महाद्वीपों के तटों की आकृति तथा बनावट एवं महासागरीय तली की रूपरेखा का धाराओं की दिशा के निर्धारण में अधिक महत्व होता है।

### 10.9.1 तट की दिशा तथा आकार

जब महाद्वीपीय भाग सागरीय धाराओं की दिशा में लम्बवत् रूप से पाये जाते हैं, तो धाराओं के मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा धाराएं महाद्वीपीय तट के समानान्तर चलने लगती हैं। विषुवत् रेखीय धारा ब्राजील तट से टकराने पर दो भागों में विभक्त हो जाती है। उत्तरी शाखा खाड़ी की धारा के नाम से संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट के सहारे चलने लगती है तथा दक्षिणी शाखा ब्राजील की धारा के नाम से ब्राजील तट के सहारे दक्षिण की ओर चलने लगती है। हिन्द महासागर में मानसून धाराएं भारतीय तट के अनुरूप प्रवाहित होती हैं।

### 10.9.2 तलीय आकृतियाँ

महासागरीय तली की असमानताएं धाराओं के मार्ग को प्रभावित करती हैं। जब इन धाराओं के मार्ग में अन्त:सागरीय कटक (submarine ridges) होते हैं तो धाराएं कुछ दाहिनी ओर मुड़ जाती है। उदाहरण के लिए गल्फ स्ट्रीम स्काटलैण्ड के पास जब विविलटामसन कटक को पार करती हैं तो वह दाहिनी ओर मुड़ जाती है। इसी तरह उत्तरी विषुवत् रेखीय धारा मध्य अटलांटिक कटक को पार करते समय दाहिनी ओर मुड़ जाती है।

### 10.9.3 मौसमी परिवर्तन

कई स्थानों पर बदलते मौसम के साथ धाराओं की दिशा में भी परिवर्तन हो जाता है। मानसूनी हवाओं का मौसमी दिक् परिवर्तन हिन्द महासागर की धाराओं में दिशा परिवर्तन करता है। शरद कालीन उ० पू० मानसून के समय मानसूनी धाराओं की तट के सहारे दिशा पूर्व से पश्चिम होती है, जब कि ग्रीष्मकालीन द० प० मानसून के समय धाराओं की दिशा बदलकर उ० पू० हो जाती है।

**10.9.4 पृथ्वी का परिभ्रमण** – पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन के कारण धाराओं का मार्ग प्रायः गोलाकार हो जाता है । पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण धाराएं उत्तरी गोलार्द्ध में अपने दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती हैं।

### 10.10 महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारकों का सारांश

- महासागरीय जल की सतह की धाराओं की उत्पत्ति का सर्वप्रमुख कारक वायु द्वारा सागरीय जल की सतह पर उत्पन्न कर्षण (wind drag) एवं रगड़ (friction) है।
- ग्रहीय हवायें (व्यापारिक, पछुवा तथा ध्रुवीय हवायें) न केवल महासागरीय सतह की धाराओं को उत्पन्न करती हैं वरन् उसकी गति भी निर्धारित करती हैं।
- पृथ्वी के घूर्णन (rotation) से उत्पन्न कोरिआलिस विक्षेप बल के कारण महासागरीय धारायें उत्तरी गोलार्द्ध में पवन की दिशा के दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बांयी ओर मुड़ जाती हैं।
- पवन-कर्षण (wind drag) एवं कोरिआलिस विक्षेप के कारण प्रशान्त, अटलाण्टिक एवं हिन्द महासागरों के उपोष्ण कटिबन्धी भागों के मध्य में संचरण भंवर (circulation gyres) का निर्माण होता है।
- इन संचरण भंवरों के चारों ओर कोरिआलिस विक्षेप के कारण विषुवतरेखीय धारा, पश्चिमी सीमा धारा तथा पूर्वी सीमा धाराओं का घेरा विकसित हो जाता है।
- कोरिऑलिस बल के कारण वायु की दिशा में विक्षेपण तथा सागरीय धाराओं में विक्षेपण के कारण सर्पिल धाराओ spiraling currents) की उत्पत्ति होती है। इसे एकमैन स्पाइरल कहते हैं ।

- एकमैन परिवहन उत्तरी गोलार्द्ध में सागरीय जलराशि को व्यापारिक हवाओं के दहिनी (उत्तर की ओर) तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बांयी ओर (दक्षिण की ओर) 70° कोण पर मोड़कर गतिशील कर देता है।
- उपोष्ण महासागरीय संचरण भंवरों में महासागरीय सतह की धाराओं के वृत्ताकार संचलन (circular movement) के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में धाराओं का घड़ी की सूइयों के अनुरूप तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रतिकूल दशा में संचलन होता है।
- उपोष्ण संचरण भंवर (subtropical circulation gyres) के मध्य में विकसित जल टीले (water mounds) के कारण पश्चिमी सीमा तीव्रीकरण (western boundary intensifi cation) के फलस्वरूप पश्चिमी सीमा की धाराओं की कम चौड़ाई तथा पूर्वी सीमा धाराओं की अधिक चौड़ाई होती हैं। जबकि पश्चिमी सीमा धारा की प्रवाह गति पूर्वी सीमा धारा की अपेक्षा अधिक हो जाती है।
- सागरीय तापमान, लवणता तथा घनत्व में क्षेत्रीय विभिन्नतायें, महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति में सहायक होती हैं।
- अत्यधिक जलवर्षा के क्षेत्रों में सागरीय जल की सतह कम जलवर्षा वाले क्षेत्रों की तुलना में ऊंची हो जाती है। इस तरह की स्थिति विषुवत रेखीय प्रदेशों में होती है। परिणामस्वरूप भूमध्य रेखा से उत्तरी गोलार्द्ध में सागरीय जल उत्तर की ओर गतिशील होता है परन्तु पृथ्वी के घूर्णन एवं कोरिआलिस बल के कारण वह पश्चिम दिशा में चलने लगता है।
- सागरीय तटों का आकार तथा दिशा महासागरीय धाराओं के मार्ग को परिवर्तित कर देती हैं। उदाहरण के लिए विषुवत रेखीय धारा ब्राजील तट से टकराने पर दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। उत्तरी शाखा खाड़ी की धारा के नाम से संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट के सहारे गल्फस्ट्रीम के रूप में चलने लगती है जबकि दक्षिणी शाखा ब्राजील धारा के नाम से ब्राजील तट के सहारे दक्षिण की ओर चलने लगती है।
- महासागरीय नितल (तली) की असमानतायें धाराओं के मार्ग को प्रभावित करती हैं। जब इन धाराओं के मार्ग में अन्तः सागरीय कटक (submarine ridges) होते हैं तो धारायें कुछ दाहिनी

ओर मुड़ जाती हैं। उदाहरण के लिए गल्फस्ट्रीम जब स्काटलैण्ड के पास विविल टामसन कटक को पार करती है तो वह दाहिनी ओर मुड़ जाती है। इसी तरह उत्तरी विषुवत रेखीय धारा मध्य अटलाण्टिक कटक को पार करते समय दाहिनी ओर मुड़ जाती है।

- मौसमी जलवायु वाले प्रदेशों में बदलते मौसम के साथ धाराओं की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। मानसून हवाओं का मौसमी दिक् परिवर्तन हिन्द महासागर की धाराओं में दिशा परिवर्तन करता है। शरदकालीन उ० पू० मानसून के समय धाराओं की तट के सहारे दिशा पूर्व से पश्चिम होती है, जबकि ग्रीष्मकालीन द० प० मानसून के समय धाराओं की दिशा बदल कर उ० पू० हो जाती है।

## 10.11 सारांश

महासागरीय धारायें, महासागरों की सबसे महत्वपूर्ण गतियाँ है जो महासागरों में तापमान के वितरण सहित उनके प्रत्येक पक्ष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। महासागरों में जलराशियों के एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने की गति को महासागरीय धारा कहते हैं जो धरातलीय भाग पर प्रवाहित होने वाली नदियों के समान ही होती है। वास्तव में महासागरीय धारायें महासागरीय जल की राशियां होती हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होती हैं। महासागरीय सतह की धाराओं की जलाराशियां गर्म या ठंडी हो सकती हैं।यद्यपि महासागरीय सतह की धाराओं में समस्त महासागरीय जल का मात्र 10 प्रतिशत जल ही सम्मिलित होता है परन्तु ये सर्वाधिक महासागरीय सतह को आच्छादित करती हैं तथा अधिकांश महासागरीय जीवों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती। गर्म धारायें सामान्यतया ग्रहीय हवाओं (व्यापारिक तथा पछुवा हवायें) की दिशा का अनुसरण करती हैं तथा निम्न अक्षांशों से मध्य तथा उच्च अक्षांशों की ओर प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार गर्म धारायें उष्णकटिबन्धी महासागरों से ऊष्मा का ध्रुवों की ओर परिवहन करती हैं। दूसरी तरफ ठंडी धारायें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-दक्षिण एवं दक्षिण गोलार्द्ध में दक्षिण-उत्तर दिशा में प्रवाहित होती हैं। महासागरीय धारायें एक तरह से तापीय नियंत्रक (thermal regulator) होती है क्योंकि ये तापमान का स्थानान्तरण करती हैं।

**अभ्यास प्रश्न**

1. महासागरीय धाराओं की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उनसे जुड़े हुए महत्वपूर्ण तथ्यों का वर्णन कीजिये।
2. महासागरीय धाराओं के प्रमुख प्रकार समुचित उदाहरण सहित बताइए।
3. महासागरीय धाराओं की सामान्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
4. महासागरीय धाराओं के प्रभाव तथा महत्व की व्याख्या कीजिये।
5. महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारकों की व्याख्या कीजिये।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 11

# विभिन्न महासागरों की प्रमुख जलधाराएँ

## इकाई की रूपरेखा


11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 अटलान्टिक महासागर की धारायें

11.2.1 उत्तरी अटलान्टिक महासागर की धारायें

11.2.1.1 उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा

11.2.1.2 गल्फ स्ट्रीम जलधारा प्रणाली

11.2.1.2.1 फ्लोरिडा धारा

11.2.1.2.2 गल्फ स्ट्रीम

11.2.1.2.3 उत्तरी अटलान्टिक ड्रिफ्ट

11.2.1.3 कनारी ठंडी धारा

11.2.1.4 लैब्रेडोर धारा

11.2.1.5 सारगैसों सागर

11.2.1.6 विषुवत् रेखीय प्रति धारा

11.2.2 दक्षिणी अटलान्टिक महासागर की धाराय

11.2.2.1 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा

11.2.2.2 ब्राजील धारा

11.2.2.3 फाकलैंड धारा

11.2.2.4 दक्षिणी अटलान्टिक धारा

11.2.2.5 बेंगुला धारा

11.3 प्रशान्त महासागर की धारायें

11.3.1 मध्य प्रशान्त महासागर की धाराय

11.3.1.1 उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा

11.3.1.2 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा

11.3.1.3 भूमध्य रेखीय प्रति धारा

11.3.2 उत्तरी प्रशान्त महासागर की धारायें

11.3.2.1 क्यूरोशियो प्रणाली

11.3.2.1.1 क्यूरोशिवो (मुख्य) धारा

11.3.2.1.2 सूशिमा धारा

11.3.2.1.3 क्यूरोशिवो की उत्तरी शाखा

11.3.2.1.4 क्यूरोशिवो प्रतिधारा

11.3.2.2 ओयाशिवो ठंडी धारा

11.3.2.3 उत्तरी प्रशान्त धारा

11.3.2.4 अल्यूशियन धारा

11.3.2.5 कैलीफोर्नियाँ की ठंडी धारा

11.3.3 दक्षिणी प्रशान्त महासागर की धारायें

11.3.3.1 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा

11.3.3.2 भूमध्य रेखीय प्रति धारा

11.3.3.3 पीरू की ठंडी धारा

11.3.3.4 एल निनो तथा ला निना धारा

11.3.3.5 पूर्वी आस्ट्रेलिया धारा

11.3.3.6 पछुवा पवन प्रवाह

11.4 हिन्द महासागर की धारायें

11.4.1 उत्तरी हिन्द महासागर की धारायें

11.4.1.1 शीत कालीन मानसून प्रवाह

11.4.1.2 दक्षिण-पश्चिमी मानसून प्रवाह

11.4.1.3 सोमाली धारा

11.4.2 दक्षिणी हिन्द महासागर की धारायें
11.4.2.1 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा
11.4.2.2 पछुवा पवन प्रवाह
11.4.2.3 पश्चिमी आस्ट्रेलिया की ठंडी धारा
11.5 सारांश
अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 11

# विभिन्न महासागरों की प्रमुख जलधाराएँ धारायें

## 11.0 प्रस्तावना

महासागरीय धाराएँ महासागरों के भीतर जल के बड़े पैमाने पर प्रवाह को नियंत्रित करती हैं। महासागरीय धाराएँ तापमान, लवणता और पृथ्वी के घूर्णन जैसे विभिन्न कारकों द्वारा संचालित होती हैं। इस इकाई में विभिन्न महासागरों की प्रमुख महासागरीय धाराओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

## 11.1 उद्देश्य

इकाई 11, "विभिन्न महासागरों की प्रमुख जलधाराएँ" के अध्ययन के उपरान्त आप:

1. अटलान्टिक महासागर की धाराओं का वर्णन कर सकेंगे।
2. गल्फ-स्ट्रीम धारा प्रणाली को समझ सकेंगे।
3. प्रशांत महासागर की धाराओं का वर्णन कर सकेंगे।
4. क्यूरोशिवो धारा प्रणाली को समझ सकेंगे।
5. हिन्द महासागर की धाराओं का वर्णन कर सकेंगे।

## 11.2 अटलान्टिक महासागर की धारायें

उत्तरी एवं दक्षिणी में अटलांटिक महासागर में धाराओं का एक जटिल तथा बृहद तंत्र विकसित हुआ है जिसका वर्णन आगे किया जायेगा। चित्र 1 विश्व की प्रमुख महासागरीय धाराओं को प्रदर्शित करता है।

### 11.2.1 उत्तरी अटलान्टिक महासागर की धारायें

भूमध्य रेखा के उत्तर में अर्थात उत्तर अटलांटिक महासागर की धाराओं का वर्णन निम्नानुसार है:

#### 11.2.1.1 उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा (North Equatorial Current)

यह एक गर्म जलधारा है जो उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा एक चौड़ी पेटी में प्रवाहित होती है। इसका अक्षांश रेखीय विस्तार 10° उ. से लगभग 30° उ. अक्षांश तक है। इस धारा की उत्पत्ति व्यापारिक पवनों से होती है। एक छिछली धारा है जो सतह से 200 मीटर गहराई तक के जल को प्रभावित करती है। इसका

प्रवाह पश्चिम की ओर मन्द गति से होता है। 20° उ. अक्षांश के दक्षिण इस धारा का औसत वेग 15 से 17 समुद्री मील प्रतिदिन होता है, किन्तु इस अक्षांश के उत्तर इसका वेग परिवर्तनशील होता है।

उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका के तट से चलने वाली कनारी जलधारा का जल इसे ढकेलता है जिससे इसकी उत्पत्ति होती है। तथा व्यापारिक पवनों के साथ के यह पश्चिम की ओर बहना शुरू करती हैं। वास्तव अफ्रीका के तट से दूर जाने पर ही इस धारा की सारी विशेषताओं का विकास होता है।

उत्तरी भूमध्य रेखीय विस्तृत जलधारा पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हुई सीधे मार्ग का अनुसरण नहीं करती। शूमाकर (Schumacher) के अनुसार 15° उ. अक्षांश के उत्तर यह धारा मध्य- अटलान्टिक कटक तक पहुँचने से पहले दायी ओर मुड़कर उत्तर की ओर चल पड़ती है। किन्तु उपर्युक्त कटक के ऊपर से गुजरने के पश्चात् यह बायीं ओर मुड़कर दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। यद्यपि मध्य-अटलान्टिक कटक समुद्र की सतह से 3000 मीटर नीचे स्थित है, तथापि उसके ऊपर से चलते समय इसमें उत्तर की ओर झुकाव सर्वाधिक होता है। अटलान्टिक महासागर के पश्चिमी भाग में यह धारा दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा की उस शाखा से मिल जाती है जो भूमध्य रेखा को पार करके उत्तर की ओर पहुँचती है।

जब उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा 60° पश्चिमी देशान्तर रेखा पर पहुँचती है, तब यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। पहली शाखा कैरेबियन सागर में पहुँचती है जिसे कैरिबियन धारा के नाम से जाना जाता है। तथा दूसरी शाखा वेस्टइन्डीज के उत्तर प्रवाहित होती हुई 8° उत्तरी अक्षांश के निकट पहली शाखा से मिल जाती है जिसे एंटीलीज की धारा के नाम से जाना जाता है। आगे चलकर ये जलधाराएँ पुन: मिल जाती हैं। इन धाराओं के द्वारा मैक्सिको की खाड़ी में छोड़े गए जल से खाड़ी के जल-स्तर में वृद्धि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप 'गल्फ स्ट्रीम' नामक धारा प्रणाली (Gulf Stream system) की उत्पत्ति होती है।

**चित्र 1: विश्व की प्रमुख महासागरीय धाराओं**

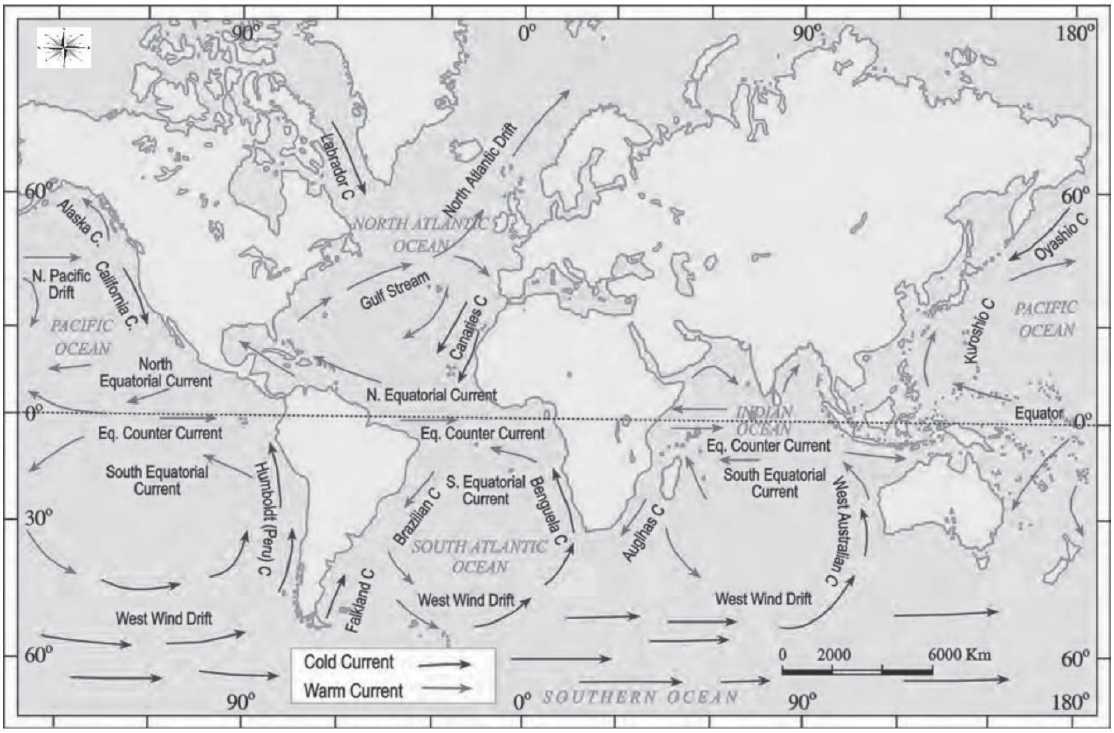


## 11.2.1.2 गल्फ स्ट्रीम जलधारा धारा प्रणाली (Gulf Stream Current System)

यह धारा 20° उत्तरी अक्षांश के पास मेक्सिको की खाड़ी से उत्पन्न होकर उ० पू० दिशा की ओर 70° उ० अक्षांश तक पश्चिमी यूरोप के प० तट तक प्रवाहित होती है। मेक्सिको की खाड़ी में उत्पन्न होने के कारण इसे खाड़ी की धारा (Gulf Stream) के नाम से जाना जाता है जिसमें तीन धाराओं को सम्मिलित किया नाता है :

- **फ्लोरिडा धारा,** फ्लोरिडा जलडमरूमध्य से हेटरस अन्तरीप के बीच।
- **गल्फस्ट्रीम,** हेटरस अन्तरीप से ग्राण्ड बैंक के बीच।
- **उत्तरी अटलाण्टिक धारा,** ग्राण्डबैंक के पूर्व तथा प०- यूरोपियन तट तक।

### 11.2.1.2.1 फ्लोरिडा धारा

फ्लोरिडा जलडमरूमध्य से हेटरास अन्तरीप (Cape Hatteras) के मध्य उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली धारा को फ्लोरिडा पारा कहा जाता है। इस धारा का प्रारम्भ वास्तव में यूकाटन चैनल से माना जाता है, क्योंकि इस जल धारा से होकर प्रवाहित होने वाली जल-राशि का एक बड़ा भाग मैक्सिको की

खाड़ी में प्रवेश करता है । आगे चलकर यही जलराशि फ्लोरिडा धारा में मिल जाती है। फ्लोरिडा जलडमरूमध्य से निकलने के उपरान्त फ्लोरिडा धारा और एन्टिलीज धारा परस्पर मिल जाती हैं, फिर भी इस सम्मिलित धारा को हेटरास अन्तरीप तक फ्लोरिडा धारा ही कहा जाता है ।

फ्लोरिडा धारा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यद्यपि अनेक मत प्रचलित हैं, किन्तु मैक्सिको की खाड़ी तथा अटलान्टिक महासागर तट के जल स्तर का अन्तर ही इस धारा की उत्पत्ति का मूल कारण माना जाता है । खाड़ी के जल-स्तर को ऊँचा बनाये रखने में व्यापारिक पवनों का योगदान होता है । इसके अतिरिक्त, मिसौरी-मिसीसिपी नदियों के द्वारा खाड़ी में भारी मात्रा में जल छोड़ा जाता है जो जल स्तर में अन्तर उत्पन्न करता है । मान्टगोमरी की गणनानुसार इस धारा का वेग फ्लोरिडा के सँकरे जल जमरूमध्य से निकलते समय 193 से.मी./सेकन्ड होता है, जो इस धारा के मध्यवर्ती भाग के वेग से निश्चित रूप से अधिक है । इस धारा की बायीं ओर तटवर्ती महासागरीय जल उपला एवं शान्त रहता है तथा फ्लोरिडा धारा और इस शान्त जल के मध्य एक स्पष्ट सीमा रेखा दिखाई पड़ती है । फ्लोरिडा जल डमरूमध्य से निकलने वाली इस सँकरी धारा की चौड़ाई में आगे बढ़ने पर उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है । फ्लोरिडा जलडमरूमध्य में जहाँ इस धारा की चौड़ाई 48 किलोमीटर है, चार्ल्सटन तक पहुँचकर इसकी चौड़ाई लगभग 240 किलोमीटर तक हो जाती है। इसी प्रकार तट से इस धारा की दूरी भी सर्वत्र एक समान नहीं पायी जाती ।

### 11.2.1.2.2 गल्फ स्ट्रीम (The Gulf Stream)

गल्फ स्ट्रीम की खोज सर्वप्रथम पोंस डी लिओन द्वारा 1513 में की गई थी । मैक्सिको की खाड़ी में उत्पन्न धारा प्रणाली का मध्यवर्ती भाग, जो हेटरास अन्तरीप से ग्रान्ड बैंक के पूर्वी भाग के बीच में प्रवाहित होता है 'गल्फ स्ट्रीम' नाम से अभिहित किया जाता है । इस उष्ण धारा की चौड़ाई अपेक्षाकृत कम है तथा इसकी सीमायें सुस्पष्ट हैं । स्टॉमेल (Stommel) ने गल्फ स्ट्रीम को इस प्रकार परिभाषित किया है: "यह धारा जल की एक ऐसी सॅकरी पट्टी है जो बिल्कुल भिन्न प्रकार की दो जलराशियों के मध्य सीमा बनाती है"। इस धारा के कारण सारगेसो सागर का उष्ण जल तट के निकटवर्ती शीतल और अधिक घनत्व वाले जल के ऊपर प्रवाहित नहीं होने पाता । गल्फ स्ट्रीम के पृष्ठ भाग के तापमान एवं महाद्वीप के

तटवर्ती सागर के तापमान में भारी अन्तर अंकित किया जाता है। उदाहरणार्थ, धारा के दक्षिणी भाग का तापमान शीत ऋतु में लगभग 20° से. रहता है, जब कि तटवर्ती जल का तापमान मात्र $14^0$ से होता है।

किंग (Cuchlaine A. M. King) के अनुसार ऊर्ध्वाधर काट (vertical section) में गल्फ स्ट्रीम को तीन स्पष्ट परतों में विभाजित किया जा सकता है। (i) ऊपरी परत जो कुछ मीटर मोटी होती है तथा जिसमें ऋतुओं के साथ-साथ तापमान में भारी परिवर्तन होता है; (ii) ऊपरी परत के ठीक नीचे वाली परत जिसमे गहराई के साथ तापमान में भारी गिरावट अंकित की जाती है, तथा (iii) सबसे नीचे की तीसरी मोटी परत जो 1500 मीटर से अधिक नीचे तक फैली होती है तथा जिसमे ठण्डी जलराशि पाई जाती है।

ज्ञातव्य है कि गल्फ धारा में अधिक वेग से होने वाला प्रवाह ऊपरी परत तक ही सीमित होता है। साधारणतौर पर गल्फ स्ट्रीम की सतह पर जल प्रवाह बड़े वेग से होता है। इसलिन (Iselin ) की गणनानुसार इस धारा का वेग 120 से 140 सेन्टीमीटर प्रति सेकन्ड तक होता है। इस धारा के पूरब तथा पश्चिम असमान जल राशियाँ पाई हैं।

गल्फ स्ट्रीम के प्रवाह मार्ग पर अन्तः समुद्री उच्चावच का विशेष प्रभाव देखा जाता है। उत्तरी अक्षांश तक ब्लेक पठार साथ-साथ यह धारा 800 मीटर गहराई तक प्रवाहित होती है, किन्तु आगे बढ़ने साथ ही महासागर की गहराई 4000 से 50000 मीटर तक हो जाती है, अतः ऐस में उच्चावच का प्रभाव नगण्य जाता है।

गल्फ स्ट्रीम की सीमाओं को इसके पृष्ठीय जल की विशेषताओं द्वारा निर्धारित किया जाता है, जिनमें जल के रंग में परिवर्तन तथा सारगेसम (Sargassum) नामक समुद्री वनस्पति की पंक्तिबद्ध उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त जल का तापमान एवं उसकी लवणता आधार पर भी इस धारा का सीमांकन किया जाता।

गल्फ स्ट्रीम का 'उण क्रोड' (warm core) इसके दायीं और अवस्थित वह भाग है जिसमें जल का तापमान समान गहराई स्थित जल के तापमान से अधिक होता है। गल्फ स्ट्रीम की एक अन्य विशेषता यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका पूर्वी तट पर समुद्र तल में उत्तर की ओर क्रमशः वृद्धि होती

जाती है। फ्लोरिडा की अपेक्षा हेलीफैक्स का समुद्र तल लगभग 35 सेमी अधिक ऊँचा है। समुद्र तल की इस इस असमानता कारण तट तथा महाद्वीपीय तट के जल में उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित वाली शीतल धारा उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार गल्फ स्ट्रीम की बायीं की ओर वाली सीमा अधिक तापान्तर के कारण बिल्कुल स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है जिसका तटवर्ती जल गल्फ स्ट्रीम की तुलना में अधिक ठण्डा होने के कारण इसे 'ठंडी दीवाल' (cold wall) की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस तरह गल्फ स्ट्रीम के दायीं ओर गर्म सेक्टर तथा बायीं और ठंडा सेक्टर होता होता है।

गल्फ स्ट्रीम तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट के बीच अपेक्षाकृत ठण्डे जल की उत्पत्ति सम्बन्ध अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मानना है कि महाद्वीप की नदियों द्वारा बहाकर लाये जल तापमान कम होता है जो तट के साथ साथ दक्षिण की ओर चला आता है। इसी प्रकार सेन्ट की खाड़ी का ठंडा जल भी इस ठण्डे जल की राशि वृद्धि करता है। यह भी मान्यता है कि शीतकाल में महाद्वीप का भीतरी अत्यधिक सर्द हो जाने से तटवर्ती जल पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। किन्तु वैज्ञानिकों का स्पष्ट मानना है कि पछुवा हवाओं के द्वारा तट निकट से उष्ण जल पूर्व की और स्थानान्तरित दिया जाता और उसके स्थान पर नितल का ठण्डा जल ऊपर उठकर आ जाता है। इसके अतिरिक्त, लेब्राडोर की ठण्डी धारा, उच्च अक्षांशों की ठण्डी जल राशि अपने साथ हेटरास अन्तरीप तक बहा कर ले आती है। वास्तव गल्फ स्ट्रीम का प्रवाह क्षेत्र हेटरास अन्तरीप से ग्रान्डबैंक तक सीमित है। इस भाग में गल्फ स्ट्रीम अमेरिका के तट का अनुसरण करते हुए चलती है। 40° उ. अक्षांश को पार करने पर धारा की दिशा में परिवर्तन हो जाता है जहाँ यह पछुवा पवनों के प्रभाव में पूरब की ओर चलती है। धारा की दिशा में यह परिवर्तन पछुवा पवनों के अतिरिक्त पृथ्वी घूर्णन से उत्पन्न विक्षेपक बल (कोरियालिस बल) के कारण भी होता है।

### 11.2.1.2.3 उत्तरी अटलान्टिक ड्रिफ्ट

पछुआ पवनों के प्रभाव से हेलीफैक्स के दक्षिण में गल्फ स्ट्रीम बिल्कुल पूरब की ओर मुड़ जाती है। गल्फ स्ट्रीम प्रणाली के इस विस्तार को उत्तरी अटलान्टिक प्रवाह (North Atlantic Drift) भी कहते हैं। इस प्रवाह की मुख्य विशेषता यह है कि यह वेग में प्रवाहित होने वाली जलधारा की एक संकरी पट्टी न होकर अनेक विस्तृत जलधाराओं से मिलकर बना हुआ है। उत्तरी अटलान्टिक धारा स्थूल रूप से

दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है- उत्तरी शाखा तथा पूर्वी शाखा। इनमें से प्रत्येक कई उपशाखाओं में विभक्त होकर विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती है।

**उत्तरी शाखा** की एक उपशाखा मुख्य रूप से पूर्व-उत्तर-पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है तथा पुनः छोटी-छोटी जलधाराओं में विभक्त हो जाती है। एक शाखा वीविल-थामसन कटक (Wyville-Thomson Ridge) को पार करके नार्वे सागर तक पहुँचती है। स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप के तट के सहारे चलने वाली इस धारा को **नार्वे की धारा** (Norwegian Current) कहते हैं। यह धारा बेरेण्ट्स सागर से होती स्पिट्जबर्गेन द्वीप तक चली जाती है। गल्फ स्ट्रीम प्रणाली की एक शाखा आइसलैंड के उत्तरी तट के सहारे आगे बढ़कर नार्वे सागर में प्रवेश करती है। आर्कटिक सागर में प्रवेश करने पर इन धाराओं का जल अत्यधिक ठंडा और कम खारा हो जाता है। यही जल डेनमार्क जलडमरूमध्य से होकर ठण्डी जलधारा के रूप में ग्रीन लैण्ड के पूर्वी किनारे दक्षिण की ओर प्रवाहित होता है। इसे **पूर्वी ग्रीनलैण्ड धारा** कहते हैं। इस धारा के जल का तापमान तथा लवणता कम होती है। इसी धारा की एक छोटी शाखा दक्षिण-पूर्व जाकर **पूर्वी-आइसलैंड आर्कटिक धारा** (East Iceland Arctic Current) नाम से प्रवाहित होती हैं। उत्तरी अटलान्टिक प्रवाह की एक अन्य शाखा उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ जाती है जो आइसलैंड के दक्षिणी तट के निकट प्रवाहित होती है। इसे **इरमिंगर धारा** कहा जाता है। इस धारा का कुछ जल आइसलैण्ड के पश्चिमी तट की ओर प्रवाहित होता है, किन्तु इसका अधिकांश भाग दक्षिण की ओर चला जाता है जहाँ यह पूर्वी ग्रीनलैंड धारा से मिल जाती है।

उत्तरी अटलान्टिक प्रवाह की **पूर्वी शाखा** मध्य अटलान्टिक कटक (the Mid- Atlantic Ridge) को लगभग 45° उ. अक्षांश पर पार करके दायीं ओर मुड़ जाती है तथा फ्रांस एवं स्पेन के तट के समीप पहुँच जाती है। हेलैन्ड-हैन्सेन तथा नैन्सेन (Helland-Hansen and Nansen) के अनुसार इस क्षेत्र में स्पष्ट रूप से महासागरीय धाराओं का अभाव उल्लेखनीय है, फिर भी महासागर से जल की एक सतही धारा जिब्राल्टर के तंग जल मार्ग से भूमध्य सागर में प्रवेश करती है। इसके विपरीत, भूमध्य सागर के नितल के समीप से अत्यधिक खारा जल जिब्राल्टर जलडमरूमध्य के निचले भाग से प्रवाहित होता हुआ अटलान्टिक महासागर की मध्यम गहराइयों में फैल जाता है। मध्यम गहराई के इस खारे जल का उत्तरी तथा दक्षिणी अटलान्टिक महासागर पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उत्तरी अटलान्टिक धारा से कुछ जल

बिस्के की खाड़ी में प्रवेश कर जाता है। ज्ञातव्य है कि पूर्वी शाखा का अधिकांश जल दक्षिण की ओर प्रवाहित होता हुआ अन्त में उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा में समाहित हो जाता है।

### 11.2.1.3 **कनारी ठंडी धारा** (Canary Cold Current)-

उत्तरी अटलान्टिक धारा की पूर्वी शाखा की दक्षिणी उपशाखा स्पेन के निकट दक्षिण मुड़कर स्पेन, पुर्तगाल तथा उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी तट के समानान्तर प्रवाहित होती है । कनारी द्वीप के समीप प्रवाहित होने के कारण इसका नाम कनारी धारा रखा गया । उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी तट की ओर मडीरा से वर्ड अन्तरीप (Cape Verde) के मध्य यह ठण्डी धारा प्रवाहित होती है । इस धारा की उत्पत्ति के मुख्य रूप से दो कारण है- पहला, व्यापारिक हवाओं के द्वारा तट के निकट का महासागरीय जल बहाकर तट से दूर ले जाया जाता है जिससे वहाँ समुद्र की सतह नीची हो जाती है । दूसरा, इसकी क्षतिपूर्ति के लिये समुद्र की गहराइयों से ठण्डा जल ऊपर उठ जाता है जिससे ठण्डे जल की आपूर्ति निरन्तर होती रहती है । उत्तरी अटलान्टिक धारा की एक शाखा जो स्पेन के तट से दक्षिण की ओर मुड़ जाती है, इस ठण्डी धारा के लिये जल की आपूर्ति में सहायक होती है । कनारी धारा आगे चलकर उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा में विलीन हो जाती हैं। इस प्रकार उत्तरी अटलांटिक महासागर के दक्षिणी भाग में धाराओं की चक्राकार प्रणाली पूरी हो जाती है । इस ठंडी धारा की एक शाखा दक्षिण की ओर आगे बढ़ कर अफ्रीका के पश्चिमी तट पर स्थित गिनी की खाड़ी में प्रवेश करती है । इसे **गिनी की धारा** कहा जाता है।

### 11.2.1.4 **लैब्रेडोर धारा**

लैब्रेडोर धारा एक ठंडी जलधारा है जो बेफिन की खाड़ी तथा डेविस जलडमरूमध्य से होकर दक्षिण में संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट पर कॉड अन्तरीप (Cape Cod) तक चलती है । इसके आगे यह धारा समुद्र की गहराइयों में डूब कर अधस्तलीय धारा के रूप में कुछ दूर तक पहुँचती है । यह एक अत्यधिक ठण्डी जलधारा है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति आर्कटिक सागर में होती है । साथ ही साथ इसमें ग्रीनलैंड हिमनदों से टूट कर अनेक प्लावी हिमशैल (icebergs) प्रवाहित होते हैं । बसंत ऋतु में प्लावी हिमशैल की संख्या में विशेष रूप से वृद्धि हो जाती है । प्लावी हिमशैल इस धारा के साथ न्यूफाउण्डलैंड तट के

समीप चले आते हैं। न्यूफाउण्डलैंड एवं ग्रांडबैंक के निकट इन हिमशैलों की उपस्थिति से जहाजों के आवागमन का खतरा बना रहता है। इस कारण धारा का तापमान नीचे गिर जाता है । इसका प्रभाव मेसाचुसेट्स तक देखा जाता है। महासागर की सतह नीचे इस ठण्डी धारा का प्रभाव काफी दूर तक पड़ता है । ग्रान्डबैंक निकट लॅब्रेडोर की ठण्डी धारा, गल्फ स्ट्रीम की गर्म जल धारा से मिल जाती है। इन मिलन स्थल के निकट विभिन्न वायुराशियों के मिलने से घना कुहरा छाया रहता है जिसके परिणामस्वरूप समुद्री यातायात में व्यवधान पड़ता है।

### 11.2.1.5 सारगैसों सागर (Sargasso Sea)

यद्धपि सरगैसो सागर समुद्री धारा नहीं है लेकिन उत्तरी अटलांटिक महासागर की धाराओं की पूर्ण समझ के लिए इसका अध्ययन बेहद महत्वपूर्ण है । उत्तरी अटलांटिक महासागर के मध्यवर्ती भाग में उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा, गल्फ स्ट्रीम तथा कनारी की ठंडी धारा द्वारा विशाल अंडाकार क्षेत्र निर्मित हो जाता है। ये सभी धारायें घड़ी सुई की दिशा के अनुरूप (clockwise) प्रवाहित होती है। इस लगभग वृत्ताकार क्षेत्र भीतर महासागर शान्त एवं स्थिर होता अथवा प्रवाह अत्यधिक मन्दगति से होता है। इस शान्त समुद्र की सतह पर सारगेसम (sargassum) नामक विशेष घास (sea weed) प्रचुर मात्रा में पायी जाती जिसके कारण इस वृत्ताकार क्षेत्र का नाम सारगेसो सागर रखा गया। किनारों की अपेक्षा इस सागर के मध्य में इस वनस्पति की मोटाई अधिक हैं । ऐसा अनुमान कि यह विशेष घास लगभग 11000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई है। ज्ञातव्य है कि सारगेसो नामक घास जड़विहीन होने के कारण केवल महासागर पृष्ठ भाग तक ही सीमित है। किसी भी अन्य महासागर में ऐसी घास नहीं पायी जाती।

सारगेसो सागर की सीमायें भी सर्वमान्य नहीं है तथा सामान्य रूप से इसका विस्तार 20° से 40° उ. अक्षांश तथा 35° प. 75° प. देशान्तर तक है। उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायु दाब क्षेत्र स्थित होने कारण यहाँ उच्च लवणता तथा वाष्पीकरण की तीव्र दर पायी जाती है। चारों ओर धाराओं घिरे होने के कारण इस सागर में अटलांटिक महासागर के अपेक्षाकृत कम लवणता वाले जल का मिश्रण नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त, यहाँ हिम के पिघलने से प्राप्त जल एवं वर्षा अथवा नदियों के द्वारा लाये गये ताजे पानी की आपूर्ति भी नहीं हो पाती । इस प्रकार सारगेसो सागर में लवणता की मात्रा सदैव थोड़ी अधिक बनी

रहती है। कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के अण्डे देने के लिये यह समुद्र विशेष उपयोगी पाया गया है। समुद्री पक्षियों का अभाव इसकी एक अन्य विशेषता है।

### 11.2.1.6 विषुवत् रेखीय प्रति धारा (Equatorial Counter Current)

विषुवत् रेखीय प्रति धारा की उत्पत्ति उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवत् रेखीय धाराओं के मध्य होती है। यह धारा उपर्युक्त दोनों धाराओं की विपरीत दिशा पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। इसीलिये इसे **विपरीत विषुवत् रेखीय धारा अथवा विषुवत् प्रति रेखीय धारा** कहा जाता है। उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवन के द्वारा अटलान्टिक महासागर के भूमध्य रेखीय क्षेत्र में निरन्तर जल का बहाव पश्चिमी तट की ओर होता रहता है। अतः पश्चिमी तट के निकट जल की भारी मात्रा एकत्रित हो जाने से समुद्र तल ऊँचा हो जाता है। इसके फलस्वरूप समुद्र तल पश्चिम से पूरब की ओर ढालुआं हो जाता है। समुद्र तल का यह ढलान प्रति 1000 किलोमीटर में लगभग 4 सेमी होता है। स्पष्ट है कि पूर्वी तट पर जल-स्तर की कमी को दूर करने हेतु विषुवत् रेखीय प्रति धारा, क्षतिपूरक धारा (compensation current) के रूप में प्रवाहित होती है। ज्ञातव्य है कि इस धारा की उत्पत्ति भूमध्य रेखीय प्रशान्त मण्डल (Doldruma) में होती है जहाँ समुद्र की सतह पर पवनों का प्रभाव नगण्य होता है।

यह धारा ग्रीष्म ऋतु में सर्वाधिक शक्तिशाली होती है तथा शीत ऋतु में यह धारा क्षीण हो जाती है और इसका पूर्ण विकास नहीं हो पाता। वर्ष भर इस धारा के दो स्पष्ट भाग दिखायी पड़ते हैं- पश्चिमी भाग तथा पूर्वी भाग। पश्चिमी भाग में यह धारा कम चौड़ी तथा कमजोर होती है। शीतऋतु के प्रारम्भिक दिनों में इस धारा का विकास होता है। विषुवत रेखीय प्रतिधारा के पूर्वी भाग को वर्ष भर देखा जा सकता है। इस धारा का पूर्वी भाग अफ्रीका के पश्चिमी तट पर गिनी की खाड़ी तक प्रवाहित होता है जहाँ इसे गिनी की धारा (Guinea Current) कहते हैं। ग्रीष्मऋतु में उपर्युक्त दोनों भागों के मिल जाने से एक अत्यधिक शक्तिशाली धारा का विकास होता है। इस धारा की उत्पत्ति दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी तट के निकट 50° पश्चिमी देशान्तर के पश्चिम में होती है। चौड़ाई में इस धारा का विस्तार 3" उ. से 10° उ. अक्षांश तक पाया जाता है। पूर्ण विकसित अवस्था में इस धारा के केन्द्रीय भाग में अभिसरण क्षेत्र बन जाता है, जहाँ उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर से महासागरीय जल का प्रवाह होने लगता है।

### 11.2.2 दक्षिणी अटलान्टिक महासागर की धारायें (Currents of the South Atlantic)

भूमध्य रेखा के दक्षिण में अर्थात दक्षिणी अटलांटिक महासागर की धाराओं का वर्णन निम्नानुसार है:

#### 11.2.2.1 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा

दक्षिणी अटलांटिक महासागर में प्रचलित दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवनों के द्वारा दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा की उत्पत्ति होती है। यह धारा पूरब से पश्चिम की ओर पश्चिमी अफ्रीका के तट से दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट तक प्रवाहित होती है। इसका अक्षांश रेखीय विस्तार 4° उ. से 20° दक्षिणी अक्षांश तक होता है। यह धारा उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली तथा अधिक स्थिर होती है। जून तथा जुलाई में इस धारा का वेग 20 समुद्री मील प्रति दिन से अधिक होता है। चूँकि तापीय भूमध्यरेखा (Thermal Equator) भौगोलिक भूमध्य रेखा (Geographical Equator) से कुछ दूर उत्तर में स्थित है, अतः दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा का विस्तार वर्ष के अधिकांश महीनों में भूमध्य रेखा के उत्तर तक होता है।

जब यह धारा ब्राजील के पूर्वी तट के निकट पहुँचती है, तब वहाँ साओ रोक अन्तरीप (Cape Sao Roque) के पास इसकी दो शाखायें हो जाती हैं- उत्तरी शाखा उत्तर-पश्चिम की दिशा में कैरेबियन सागर की ओर अग्रसर होती हुई अन्त में उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा से मिल जाती है, जब कि दक्षिणी शाखा दक्षिण की ओर मुड़ कर ब्राजील तट के समानान्तर प्रवाहित होती है। इसे ब्राजील धारा कहा जाता है।

#### 11.2.2.2 ब्राजील धारा (Brazil Current)

जैसा कि पहले बताया गया है, ब्राजील धारा की उत्पत्ति दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा की एक शाखा के रूप में होती है। यह अत्यधिक गर्म और अधिक लवणतायुक्त धारा है। विषुवत् रेखा की ओर से प्रवाहित होने वाली यह धारा अपने समीपवती जलराशि से अधिक गर्म होती है। 30° द. अक्षांश तक चलने के उपरान्त यह धारा फाकलैंड की ठंडी धारा से मिल जाती है। इस धारा के द्वारा प्रवाहित होने वाले जल की मात्रा गल्फ स्ट्रीम द्वारा प्रवाहित जलराशि की मात्रा का 10% ही होती है। 30 द. अक्षांश के निकट पवन

के प्रभाव तथा पृथ्वी के आवर्तन से उत्पन्न होने वाले कोरियालिस बल के कारण ब्राजील धारा अपनी बायी ओर मुड़ कर पूरब दिशा में प्रवाहित होने लगती है।

### 11.2.2.3 फाकलैंड धारा (Falkland Current) –

यह एक ठंडी धारा है जो अण्टार्कटिक सागर में उत्पन्न होकर दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट के सहारे उत्तर दिशा में प्रवाहित होती है। इस धारा की उत्तरी सीमा 30° द. अक्षांश रेखा है। अपनी उत्तरी सीमा पर यह धारा ब्राजील धारा से मिलकर तथा पछुवा पवनों के प्रभाव से पूरब की ओर प्रवाहित होती है। इस सम्मिलित धारा को **पश्चिम अटलांटिक पछुवा पवन प्रवाह** (West Atlantic Drift) कहते हैं।

### 11.2.2.4 दक्षिणी अटलान्टिक धारा (South Atlantic Current) –

यह पछुवा पवनों की पेटी में पश्चिम से पूरब की ओर दक्षिणी अटलान्टिक महासागर के पूर्वी तट की ओर प्रवाहित होने वाली ठंडी धारा है। इस धारा को **दक्षिणी अटलान्टिक धारा, पछुवा पवन प्रवाह, पश्चिम अटलांटिक पछुवा पवन प्रवाह, अंटार्कटिक प्रवाह** आदि नामों से जाना जाता है। इसके द्वारा दक्षिणी अटलान्टिक महासागर में पायी जाने वाली वामावर्त जल संचार प्रणाली (anticlockwe circulation) पूरी हो जाती है।

### 11.2.2.5 बेंगुला धारा (Benguela Current)

अफ्रीका के पश्चिमी तट के समानान्तर उत्तर की प्रवाहित होने वाली ठंडी धारा को बेंगुला धारा के नाम से जाना जाता है। उत्तम आशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) तथा 17-18° द. अक्षांश के मध्य यह धारा पूर्णतया विकसित रूप में प्रवाहित होती है। अफ्रीका के तट के समीप ठण्डा महासागरीय जल नीचे से उठ कर सतह तक आता है जिससे मिलने से यह धारा अधिक ठंडी हो जाती है। 20 द. अक्षांश को पार करने पर यह धारा तट से दूर हटकर प्रवाहित होती है और आगे जाकर दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा में मिल जाती है। इस के कारण भूमध्य रेखा तक ठण्डी जलराशि का प्रसार हो जाता है।

## 11.3 प्रशान्त महासागर की धारायें (Currents of the Pacific Ocean)

महासागरीय धाराओं के अध्ययन हेतु प्रशांत महासागर को तीन हिस्सों में बांटकर अध्ययन किया जाता है। यथा- मध्य प्रशान्त महासागर की धारायें, उत्तरी प्रशान्त महासागर की धारायें तथा दक्षिणी प्रशान्त महासागर की धारायें।

### 11.3.1 मध्य प्रशान्त महासागर की धारायें (Currents of the Mid-Pacific Ocean)

#### 11.3.1.1 उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा (North Equatorial Current )-

इस धारा की उत्पत्ति में उत्तरी पूर्वी व्यापारिक पवनों से मेक्सिको तट के निकट प्रशान्त के भूमध्य रेखीय क्षेत्र में होती है। यह धारा पूरब से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हुई फिलीपीन्स द्वीप तक पहुँचती है। भूमध्य रेखीय क्षेत्र में प्रशान्त महासागर की चौड़ाई अन्य महासागरों की अपेक्षा अधिक होने के कारण इस धारा में प्रवाहित जल की मात्रा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

यह एक चौड़ी और गहरी धारा है, किन्तु इसका वेग बहुत तीव्र नहीं है। शीत ऋतु में इस धारा की दक्षिणी सीमा 6-7°उ. अक्षांश के मध्य तथा ग्रीष्म ऋतु में 9-11° उ. अक्षांश के मध्य पाई जाती है। शीत ऋतु में यह धारा बहुत शक्तिशाली हो जाती है। इस धारा की दिशा और वेग दोनों में वर्ष भर स्थिरता देखी जाती है। मैक्सिको तट के समीप इसमें कैलिफोर्नियाँ धारा का कुछ जल मिल जाता है। फिलीपीन्स द्वीप के निकट मिन्डनाओं के उत्तर में इसकी कई शाखायें हो जाती हैं। एक शाखा उत्तर की ओर अग्रसर होती हुई क्यूरोशिवो धारा में मिल जाती है, जबकि दूसरी शाखा दक्षिण मुड़कर भूमध्य रेखीय प्रतिधारा में विलीन हो जाती है।

#### 11.3.1.2 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा (South Equatorial Current)

दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा का विस्तार दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवनों की पेटी में लगभग 5° उ. अक्षांश से 40° द. अक्षांश तक पाया जाता है। इस धारा की उत्तरी सीमा पर 5° उ. से 5° द. अक्षांश के मध्य धारा का वेग सर्वाधिक होता है। इन्हीं अक्षांशों में इस धारा की स्थिरता भी अन्य भागों की अपेक्षा अधिक होती है। दक्षिणी प्रशांत महासागर में पूरब से पश्चिम तक कुल 13600 किलोमीटर तक की दूरी यह धारा तय करती है। दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के समीप बहने वाली **पीरू की ठंडी धारा** उत्तर

की ओर बढ़ का दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा में मिल जाती है। यह धारा उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा से अधिक शक्तिशाली होती है।

ज्ञातव्य है कि इस धारा की बायीं ओर से इसमें अनेक छोटी धारायें मिल जाती हैं। इस धारा के पश्चिमी भाग में अन्तःसमुद्री पठारों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप इसके दक्षिणी किनारे से अनेक शाखायें निकलती है। इस धारा के दक्षिणी भाग के अनेक शाखाओं में विभक्त होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण मध्य और पश्चिमी प्रशान्त महासागर में छोटे-बड़े द्वीपों की बहुत बड़ी संख्या है। दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा के पश्चिमी छोर से एक शाखा न्यूगिनी के उत्तरी तट के सहारे प्रवाहित होती हुई प्रतिभूमध्य रेखीय धारा में मिल जाती है। अन्य दो प्रमुख शाखायें आस्ट्रेलिया के उत्तरी तथा पूर्वी तट की ओर अग्रसर होती हैं। आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के सहारे चलने वाली धारा को पूर्वी आस्ट्रेलिया धारा कहते हैं।

### 11.3.1.3 भूमध्य रेखीय प्रति धारा (Equatorial Counter Current)-

उपर्युक्त उत्तरी तथा दक्षिणी भूमध्य रेखीय धाराओं के बीच के क्षेत्र में वर्ष भर पूर्ण विकसित प्रति भूमध्य रेखीय धारा पश्चिम से पूरब की ओर प्रवाहित होती है। इस विपरीत धारा की उत्पत्ति के वही सब कारण हैं जो अटलान्टिक महासागर में प्रतिधारा उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी है। दोनों गोलार्द्धों से चलने वाली व्यापारिक पवनें मध्य प्रशान्त महासागर के पश्चिमी तट की ओर अपने द्वारा प्रवाहित जल ले जाकर समुद्र तल ऊँचा कर देती है जिससे समुद्र की सतह का ढाल पश्चिम से पूरब की ओर हो जाता है। अतः क्षतिपूर्ति के लिये पश्चिम से पूरब की ओर इन प्रतिधाराओं का चलना प्रारम्भ हो जाता है। स्मरण रहे कि ये धारायें छिछली होती है। मिन्डनाओं के निकट उत्पन्न होने वाली यह विपरीत धारा पूरब में पनामा तट तक चलती है।

## 11.3.2 उत्तरी प्रशान्त महासागर की धारायें (Currents of the North Pacific Ocean)

### 11.3.2.1 क्यूरोशियो प्रणाली (Kuroshio System):

क्यूरोशिवो प्रणाली उत्तरी प्रशान्त महासागर में गर्म जल धाराओं का समूह है जिसकी तुलना उत्तरी अटलान्टिक महासागर की गल्फ स्ट्रीम प्रणाली से की जा सकती है। इस प्रणाली में क्यूरोशिवो (मुख्य)

धारा, सूशिमा धारा, क्यूरोशिवो की उत्तरी शाखा, ओयाशिवो धारा के अतिरिक्त क्यूरोशिवो प्रति धारा शामिल है।

### 11.3.2.1.1 क्यूरोशिवो (मुख्य) धारा (Kuroshio Main Current)

वास्तव में क्यूरोशिवो मुख्य धारा उत्तरी विषुवतरेखीय धारा का ही विस्तार है। इस धारा की जो शाखा उत्तरी फिलीपीन्स तथा फार्मेसा के पूर्वी तट के सहारे उत्तर दिशा में आगे बढ़ती है, उसी से क्यूरोशिवो नामक गर्म धारा की उत्पत्ति होती है। यह धारा फार्मोसा से रिक्यू (Riukiu) तक उत्तर पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। 30° उ. अक्षांश के निकट क्यूरोशिवो धारा पहले पूरब की ओर, फिर उत्तर-पूर्व की मुड़ कर जापान के पूर्वी तट के सहारे 35° उ. अक्षांश तक चली जाती है। इसकी तुलना गल्फ स्ट्रीम तंत्र की फ्लोरिडा धारा से की जा सकती है। इस धारा का प्रभाव 700 मीटर गहराई तक पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में समुद्र की सतह पर इस धारा का वेग 90 सेमी प्रति सेकन्ड अंकित किया जाता है, जब कि शीत ऋतु में वेग कम होकर 61 सेमी प्रति सेकेन्ड रह जाता है। इसका तापमान फ्लोरिडा धारा के समान लगभग 8° सेल्सियस तथा लवणता अपेक्षाकृत कम (35%) पायी जाती है। इस धारा के तापमान में वार्षिक परिवर्तन पाया जाता है। शीत ऋतु में अपतट पवनों (offshore winds) के चलने से इसका तापमान घट जाता है। इस धारा की एक अन्य विशेषता यह है कि सतह से कुछ गहराई पर 10 सेमी/सेकन्ड की गति से विपरीत धारा प्रवाहित होती है। इसकी दिशा दक्षिण की ओर होती है।

### 11.3.2.1.2 सूशिमा धारा (Tsushima Current)

यह एक गर्म धारा है जो क्यूरोशिवो धारा की बायीं ओर से निकलती है। जापान के पश्चिमी तट के सहारे प्रवाहित होती हुई यह धारा उत्तर में जापान सागर में प्रवेश करती है। इस धारा का तापमान ऊँचा तथा इसकी लवणता अपेक्षाकृत अधिक होती है। सुशिमा धारा के बायीं ओर से पुनः एक उपधारा की उत्पत्ति होती है जो पूर्वीचीन तथा यलो सागर में प्रवाहित होती है।

### 11.3.2.1.3 क्यूरोशिवो की उत्तरी शाखा (Kuroshio North Extension)

जापान के उत्तरी-पूर्वी तट आकृति के फलस्वरूप 36° उत्तर अक्षांश के निकट क्यूरोशियो की मुख्य धारा पूरब की ओर मुड़ कर तट से दूर चली जाती है। धारा की दिशा में इस आकस्मिक परिवर्तन का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण पछुवा पवन भी है। यहाँ क्यूरोशियो दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। इनमें से एक शाखा की यात्रा पूर्व दिशा में 16° पश्चिम देशान्तर तक जारी रहती है, जब कि दूसरी शाखा उत्तर-पूर्व की ओर 42° उत्तर अक्षांश के निकट तक चली जाती है। इस अक्षांश पर यह धारा भी पूरब की ओर मुड़ जाती है तथा इसमें उत्तर से आने वाली ओयाशिवो ठंडी धारा का जल मिल जाता है। क्यूरोशियो की मुख्य शाखा का विस्तार 172° पू. देशान्तर तक पाया जाता है।

जिस प्रकार गल्फ धारा तथा लेब्राडोर की ठंडी धारा के मिलने के साथ ही अनेक गर्तचक्रों अथवा जलावर्तो (vertices) की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार ओयाशिवो और क्यूरोशिवो विस्तार के मिलने पर उत्तरी प्रशान्त महासागर के इस क्षेत्र में अनेक जलावर्तो की उत्पत्ति हो जाती है। इन दोनों के तापमान एवं लवणता में, विशेष रूप से शीतकाल में भारी अन्तर पाया जाता है।

### 11.3.2.1.4 क्यूरोशिवो प्रतिधारा (Kuroshio Counter Current)

क्यूरोशिवो धारा की दायीं ओर उत्तरी प्रशान्त महासागर के मध्य भाग में एक बहुत बड़ा जलावर्त (whirl) पाया जाता है। इस जलावर्त का पूर्वी भाग क्यूरोशिवी प्रतिधारा कहलाता है जो जापान के पूर्वी तट से लगभग 650 किलोमीटर की दूरी पर प्रवाहित होता है। 155° तथा 160° पू. देशान्तर के मध्य जल की अपार राशियाँ दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर मुड़ कर क्यूरोशिवो प्रतिधारा के एक भाग का निर्माण करती हैं। इस प्रतिधारा के द्वारा विपरीत दिशा में भारी मात्रा में जल का स्थानान्तरण किया जाता है।

### 11.3.2.2 ओयाशिवो ठंडी धारा (Oyashio Cold Current)

इस ठंडी धारा की तुलना लैब्रेडोर की ठंडी धारा से की जाती है। इस धारा में जल की आपूर्ति ओखोटस्क सागर तथा बेरिंग सागर से होती है। ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त दोनों सागरों का तापमान उनकी भौगोलिक स्थिति के कारण काफी नीचा रहता है। स्मरण रहे कि आर्कटिक महासागर और प्रशान्त महासागर का सम्पर्क केवल बेरिंग के सँकरे जलडमरूमध्य के द्वारा ही होता है, जब कि अटलान्टिक

महासागर का विस्तृत क्षेत्र आर्कटिक महासागर से मिला हुआ है। अतः बेरिंग जलडमरूमध्य से होकर कमचटका प्रायद्वीप के पूर्वी किनारे के समीप से ठंडी जल धारा प्रवेश करती है। इस ठंडी धारा में लवणता की मात्रा अपेक्षाकृत कम (33.5%) पाई जाती है।

ओयाशिवो धारा उत्तर से दक्षिण की ओर जापान के उत्तरी पूर्वी तट के समीप प्रवाहित होती हुई लगभग 35° उ. अक्षांश तक चलती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 35°-41° उ. अक्षांश के मध्य ओयाशिवो तथा क्यूरोशियो धाराओं का जल मिश्रित हो जाता है। इसी मिश्रित जल से उतरी पश्चिमी प्रशान्त महासागर की विशेष जलराशि का निर्माण होता है, जिसे **उत्तरी प्रशान्त महासागर की उप आर्कटिक जलराशि** संज्ञा प्रदान की जाती है।

ओयाशिवो ठंडी धारा को उत्तर में **'क्यूराइल धारा'** भी कहते हैं। कमचटका प्रायद्वीप के समीप बहने वाली इस धारा को **कमचटका धारा** भी कहा जाता है। यह धारा होकडो के पूर्वी तट के निकट क्यूरोशियो धारा की उत्तरी शाखा में विलीन हो जाती है।

### 11.3.2.3 उत्तरी प्रशान्त धारा (The North Pacific Current)

उत्तरी प्रशान्त महासागर में 160° पू. देशान्तर के आगे क्यूरोशियों के विस्तार को उत्तरी प्रशान्त धारा कहा जाता है। यह धारा 150° पश्चिमी देशान्तर तक जाती है जहाँ पर इसमें से कई शाखायें निकल पड़ती है। मुख्य शाखा 150° तथा 135° प. देशान्तर के बीच दक्षिण की और घूम जाती है और एक अन्य छोटी शाखा आगे बढ़कर हवाई द्वीप समूह तथा उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट के मध्य दक्षिण की और प्रवाहित होती है। उत्तरी प्रशान्त धारा की जो शाखा दक्षिण की ओर मुड़ जाती है. आगे बढ़ने पर उसका कुछ भाग कैलीफोर्नियों की ठण्डी धारा से मिल जाता है तथा शेष भाग ऊष्ण कटिबन्धीय अभिसरण क्षेत्र में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा में विलीन हो जाता है। इस प्रकार उत्तरी प्रशान्त महासागर में धारायें दक्षिणावर्त (clockwise) प्रवाह के द्वारा एक बड़े वृत्ताकार क्षेत्र का निर्माण करती हैं। उत्तरी प्रशान्त धारा की उत्पत्ति में पछुवा पवनों तथा पृथ्वी के आवर्तन से उत्पन्न विक्षेपक बल (कोरियालिस बल) का सम्मिलित योगदान होता है।

### 11.3.2.4 अल्यूशियन धारा (Alentian Current)

क्यूरोशियो प्रणाली के उत्तर में अल्यूशियन धारा पूरब की ओर प्रवाहित होती है। इस धारा में क्यूरोशिवो की गर्म धारा तथा ओयाशियो की ठंडी धारा के जल का सम्मिश्रण पाया जाता है। उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट से कुछ दूर यह धारा दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक शाखा पश्चिमोत्तर दिशा में मुड़कर अलास्का की खाड़ी में चली जाती है। जिसे **अलास्का धारा** कहते हैं। चूंकि यह धारा दक्षिण से उत्तर की ओर चलती है, अतः इसका तापमान अपेक्षाकृत ऊँचा होता है जिससे समीपवर्ती स्थल खण्डों की जलवायु पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़ कर उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट के सहारे अग्रसर होती है और अन्ततः कैलीफोर्नियाँ की ठंडी धारा में मिल जाती है।

अल्यूशियन धारा की एक अन्य शाखा उत्तर की ओर मुड़कर बेरिंग सागर में प्रवेश करती है। यह शाखा अल्यूशियन द्वीपसमूह के उत्तरी किनारे पर प्रवाहित होती हुई वामावर्त दिशा में (anti-clockwise) बेरिंग सागर का चक्कर काटती है। बेरिंग सागर में यह धारा काफी ठंडी हो जाती है जिसे **बेरिंग धारा** के नाम से जाना जाता है। बेरिंग सागर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती हुई यह धारा जापान के उत्तरी भाग में ओयाशिवो ठंडी धारा के रूप में पहुँचती है।

### 11.3.2.5 कैलीफोर्नियाँ की ठंडी धारा (California cold Current)

उत्तरी प्रशान्त महासागर में चलने वाली अल्यूशियन धारा की जो शाखा दक्षिण मुड़ कर उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट के सहारे प्रवाहित होती है, वह 48° से 23° उ. अक्षांश के मध्य कैलीफोर्नियाँ धारा कही जाती है। यह एक ठंडी जल धारा है जिसकी तुलना पीरू अथवा कनारी की ठंडी धाराओं से की जा सकती है। कैलीफोर्नियाँ के तट के निकट से उत्तरी पूर्वी व्यापारिक पवनें महासागर की सतह से भारी मात्रा में जल बहाकर पश्चिमी भाग में संचित करती रहती है। कैलीफोर्नियाँ धारा जल की इसी क्षति की पूर्ति करती है। ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त अक्षान्तरीय पेटी में उप-आर्कटिक जल राशि तथा भूमध्यरेखीय जल राशि में सम्मिश्रण हो जाता है।

वर्ष के गर्म भाग में अर्थात् मार्च से जुलाई के अन्त तक कैलीफोर्नियाँ तट के समीप महासागर की गहराइयों से सतह की ओर ठंडा जल ऊपर उठता रहता है जिसे उत्स्रवण (upwelling) कहते हैं। इन उत्स्रवण क्षेत्रों से न्यून तापमान वाले ठण्डे जल का प्रसार पट्टियों में तट से समुद्र में दक्षिण की ओर होता

है। स्वईप तथा फ्लेमिंग के अनुसार मात्र 200 मीटर की गहराई से ठण्डे जल का उत्स्रवण होता है। ठण्डे जल के उत्स्रवण के प्रमुख क्षेत्र 35° तथा 41° उ. अक्षांश पर पाये जाते हैं। उपर्युक्त महीनों में कैलीफोर्नियाँ के तट के समीप लगभग 200 मीटर से अधिक गहराई पर एक प्रतिधारा चलती है जिसमें भारी मात्रा में भूमध्य रेखीय जल का स्थानान्तरण उत्तर की ओर होता है। ग्रीष्मऋतु के अन्त में तट के निकट अनेक जलावर्त (eddies) उत्पन्न हो जाते हैं जो तटवर्ती जल को महासागर में दूर तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

शीत ऋतु में जब ठण्डे जल का ऊपर उठना समाप्त हो जाता है, तब केलीफोर्निया धारा और मध्य समुद्र की सतह पर एक प्रतिधारा चलने लगती है। जिसे 'डेविडसन धारा' (Davidson Current) कहते हैं।

### 11.3.3 दक्षिणी प्रशान्त महासागर की धारायें (Currents of the South Pacific Ocean)

#### 11.3.3.1 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा (South Equatorial Current)

दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा की उत्पत्ति का प्रमुख कारण दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवने हैं। दक्षिणी प्रशान्त महासागर के विस्तृत क्षेत्र ने 5° उत्तरी अक्षांश से 40° द. अक्षांश रेखाओं के मध्य यह धारा प्रवाहित होती है। 5° उत्तरी अक्षांश से 5° दक्षिणी अक्षांश के बीच उत्तरी किनारे पर इस धारा का वेग तथा इसकी स्थिरता सर्वाधिक होती है। यह धारा 13600 किलोमीटर की दूरी तय करती है। दक्षिणी प्रशान्त के पूर्वी भाग में पीरू की ठंडी धारा उत्तर की ओर अग्रसर होकर भूमध्यरेखीय गर्म धारा में विलीन हो जाती है। यह धारा उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा की तुलना में अधिक शक्तिशाली होती है। इसका औसत वेग 32 किलोमीटर प्रतिदिन तथा अधिकतम वेग 160 किलोमीटर प्रतिदिन अंकित किया गया है। इस धारा की मुख्य विशेषता यह है कि इसका विस्तार उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों में है, जब कि उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा उत्तरी गोलार्द्ध में ही सीमित रहती है। यह धारा काफी दूर तक दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के समानान्तर प्रवाहित होती हुई भूमध्य रेखा के समीप पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। जून से अगस्त तक यह धारा न्यूगिनी के उत्तरी तट के अनुरूप प्रवाहित होती है और 5° उ. अक्षांश के निकट यह उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा से मिल जाती है। इसके विपरीत, दिसम्बर से जनवरी तक उत्तरी भूमध्य

रेखीय धारा की एक शाखा दक्षिण-पूर्व की ओर न्यूगिनी के उत्तरी तट के सहारे प्रवाहित होती हुई दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा से मिल जाती है।

दक्षिणी प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भाग में अनेक अन्तःसमुद्री पठारों तथा द्वीपों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप यह धारा अनेक शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इस विस्तृत धारा के दक्षिणी किनारे से निकल कर एक शाखा आस्ट्रेलिया के उत्तरी तट की ओर तथा दूसरी उसके पूर्वी तट की और प्रवाहित होती है । उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु में दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा न्यूगिनी तथा सालोमन द्वीपों के पश्चिम की ओर हल्महेरा (Halmahera) तक एक प्रचण्ड धारा के रूप में प्रवाहित होती हैं और भूमध्यरेखीय प्रतिधारा के लिये भारी मात्रा में जलापूर्ति करती है। यह धारा **आस्ट्रेलिया की धारा** को जन्म देती है।

### 11.3.3.2 भूमध्य रेखीय प्रति धारा (Counter Equatorial Current)

वर्ष के बारह महीने उत्तरी तथा दक्षिणी भूमध्य रेखीय धाराओं के बीच में एक प्रतिधारा पश्चिम से पूरब की ओर प्रवाहित होती है । इसका विस्तार दोनों गोलार्द्धों की व्यापारिक पवनों के बीच के शान्त क्षेत्र में होता है । पूरब की ओर पनामा की खाड़ी तक इस प्रतिधारा का प्रवाह होता है। इस प्रतिधारा की उत्पत्ति का प्रमुख कारण महासागर के पश्चिमी भाग में व्यापारिक पवनों द्वारा संचित जल राशि है । इसके फलस्वरूप समुद्र की सतह की ढाल पश्चिम से पूरब की ओर हो जाती है । अतः इसी ढाल के अनुरूप इस प्रतिधारा का प्रवाह पूरब की ओर होता है । अटलान्टिक महासागर की तरह प्रशांत महासागर में भी ये धारायें क्षतिपूरक धाराओं के रूप में चला करती हैं। इस धारा का अधिकतम वेग 50 सेमी प्रति सेकन्ड नापा गया है।

### 11.3.3.3 पीरू की ठंडी धारा (Peru Current)

यह एक ठंडी धारा है जिसे **हम्बोल्ट धारा** के नाम से भी जाना जाता है । यह धारा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के किनारे दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है । चिली और पीरू के तट के निकट जब यह धारा प्रवाहित होती है, यहाँ इसे पीरू धारा नाम दिया जाता है । तट समीप इस धारा

को **पीरू तटवर्ती धारा** (Peru Coastal Current) तथा तट से अधिक दूरी पर **पीरू महासागरीय धारा** (Pern Oceanic Current) कहा जाता है।

इस धारा की उत्पत्ति अंटार्कटिका के समीपवर्ती क्षेत्रों में होती है। पछुवा पवनों के द्वारा अन्टार्कटिक क्षेत्र की ठंडी जलराशि, पूरब की ओर बहाये जाने पर दक्षिणी अमेरिका के तट के पास बायीं ओर मुड़ कर उत्तर की ओर प्रवाहित होती हुई पीरू धारा को जन्म देती है। 'डिसकवरी' नामक जहाज द्वारा किये गए निरीक्षणों के आधार पर इस जलधारा द्वारा प्रवाहित जलराशि की कुल मात्रा 10-15 मिलियन घन मीटर/सेकण्ड पायी गई है। इस धारा की चौड़ाई अधिक है। 35° द. अक्षांश के पास इस धारा विस्तार तट से 900 किलोमीटर तक है। भूमध्य रेखा से कुछ पहले ही पीरू धारा पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। इस धारा का वेग भी अपेक्षाकृत कम होता है।

पीरू की तटवर्ती धारा में प्रचलित पवन के कारण समुद्र की गहराइयों से होने वाला उत्स्रवण (upwelling) इसकी एक अन्य विशेषता है। यह उत्स्रवण सर्वत्र समान नहीं होता है। कुछ क्षेत्रों में ठंडा जल बड़ी तीव्रता से सतह पर आता रहता है, जब कि बीच-बीच में ऐसे क्षेत्र है जहाँ उत्स्रवण किया अत्यधिक मन्द गति से होती है। अत्यधिक उत्स्रवण वाले क्षेत्र 5° तथा 15° द. अक्षांश पर स्थित हैं।

पीरू तथा चिली के तटवती समुद्र में एक प्रतिधारा (counter current) उत्तर से दक्षिण की ओर 100 मीटर से कम गहराई पर प्रवाहित होती है। स्मरण रहे कि नितल से ऊपर उठने वाले ठंडे जल के कारण सतह पर जल की लवणता में कमी पाई जाती है। 25 द. अक्षांश से उत्तर में वाष्पीकरण की तीव्रता के कारण लवणता में वृद्धि हो जाती है।

पीरू तटवर्ती धारा की उत्तरी सीमा के निकट ऋतुओं के अनुसार कुछ विशेषतायें पायी जाती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु में यह धारा विषुवत् रेखा को पार कर जाती है, जहाँ यह विषुवत् रेखीय प्रति धारा से मिल जाती है। किन्तु शीत ऋतु में विषुवत रेखीय प्रति धारा दक्षिण की ओर बढ़कर इक्वाडोर के तट के निकट प्रवाहित होने लगती है और वहीं पीरू की तटवर्ती धारा से मिल जाती है।

### 11.3.3.4 एल निनो तथा ला निना धारा (El Nino and La Nino Current)

सामान्यतया जनवरी और फरवरी के मध्य में, किन्तु कभी-कभी मार्च अथवा अप्रैल महीने में भूमध्य रेखीय प्रति धारा की धुरी अपनी औसत स्थिति से (जो भूमध्य रेखा के उत्तर मानी जाती है) दक्षिण की और विस्थापित हो जाती है। इसके फलस्वरूप इक्वाडोर के तट के समीप प्रवाहित होने वाला उष्ण एवं खारा जल भूमध्य रेखा के दक्षिण आकर उत्तर की और प्रवाहित होने वाली पीरू की ठंडी धारा से मिल जाता है। दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली इस गर्म धारा को एल निनो (EI Nino) कहा जाता है। कुछ वैज्ञानिक इसे प्रतिधारा (counter current) की संज्ञा प्रदान करते हैं।

'एल निनो' का शाब्दिक अर्थ होता है, शिशु (the child) जिसका लाक्षणिक अर्थ होता है 'शिशु ईसामसीह'। कभी-कभी इस धारा का विस्तार 14" द. अक्षांश तक हो जाता है। अनेक विद्वानों की राय में इस विशेष धारा का सम्बन्ध वायुमण्डलीय परिसंचरण में होने वाले परिवर्तनों से होता है। विशेष रूप से दक्षिण एशिया के मानसून पर इसके प्रभाव को स्वीकार किया जाता है।

विशेष वर्षों में (1891 तथा 1925) एल निनो का विस्तार पीरू के तट के समीप 12° द. अक्षांश तक हुआ था। सामान्यतः 5° द. और 15° द. अक्षांशों के बीच महासागर के सतही जल की लवणता 35.% पायी जाती है, किन्तु एल निनो धारा में लवणता की मात्रा 33% और 24% के बीत रहती है। लवणता में न्यूनता का कारण कदाचित् एल निनो जलधारा और पीरू ठंडी धारा का मिश्रण होता है। दक्षिण की ओर बढ़ने पर एल निनो धारा का तापमान भी घट जाता है। इसका कारण भी तटवर्ती ठंड जल से इस धारा का मिश्रण माना जाता है। गर्म और ठण्डी धाराओं के सम्मिश्रण से महासागर के इस भाग में प्लैंकटन से लेकर मछलियों तक का भारी पैमाने पर विनाश हो जाता है। सड़ी हुई मछलियाँ महासागर के तट के रेतीले भागों पर विखरी पड़ी मिलती हैं जिनकी दुर्गन्ध से वायु तथा जल दोनों प्रभावित होते हैं। इस प्रकार अपने भोजन के अभाव में गुआन प्रदान करने वाले पक्षियों की या तो मृत्यु हो जाती है अथवा वे अन्यत्र पलायन कर जाते हैं। इससे गुआनो उद्योग को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

एल निनो के कारण पेरू तट के स्थलीय भागों तथा सागरीय भागों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक वृष्टि के कारण तटीय रेगिस्तानी स्थलीय भाग हरे-भरे हो जाते हैं। कपास, नारियल तथा केला की खेती होने लगती है। परन्तु सागरीय भाग का जैविक सर्वनाश (Oceanic biological disaster) हो जाता है। ज्ञातव्य है कि पेरू का तटवर्ती महासागरीय जल सागरीय जीवों के लिए विश्व में सर्वाधिक

उत्पादक है क्योंकि यहाँ पर सागर के नितल से पोषक तत्वों से युक्त ठंडी जलराशि का ऊपर की तरफ आगमन (upwelling of nutrient rich cold waters) होता रहता है जो प्लैंकटन (जो मछलियों का भोजन है) की वृद्धि में सहायक होता है। एल निनो के सक्रिय होने पर यह प्रक्रिया बन्द हो जाती है जिस कारण पोषक तत्वों के अभाव के कारण पेरू तट का प्राथमिक उत्पादन (हरे पौधों का उत्पादन, यथा-प्लॅंकटन) के अत्यधिक कम हो जाने के कारण सागरीय आहार श्रृंखला (food chain) भंग हो जाती है, परिणामस्वरूप सागरीय जीव, खासकर मछलियाँ, या तो मर जाती हैं या अन्यत्र पलायन कर जाती हैं।

ज्ञातव्य है कि जिस वर्ष एल निनो प्रबल होती है उस साल पूर्वी प्रशान्त महासागर के पूर्वी उष्ण कटिबंधी भाग में जलवृष्टि में औसत से चार-छ गुनी वृद्धि हो जाती है जबकि पश्चिमी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में सूखे की स्थिति हो जाती है जिस कारण इण्डोनेशिया, भारत, बांगलादेश आदि सूखे की चपेट में आ जाते हैं। 1997-98 में इण्डोनेशिया के वनों में लगी भीषण आग की घटना को एल निनो के कारण जनित सूखे का प्रतिफल मान्य से बहुत बताया गया है।

**ला निना** भी एक प्रतिसागरीय धारा (counter ocean current) है। इसका आविर्भाव पश्चिमी प्रशान्त महासागर के पास ठंड में उस समय होता है जबकि पूर्वी प्रशान्त महासागर में एल निनो का प्रभाव समाप्त हो जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि पश्चिमी प्रशान्त महासागर में एल निनो द्वारा जनित अति सूखे की स्थिति को ला निना बदल देती है तथा आर्द्र मौसम को जन्म देती है। ला निना के आविर्भाव के साथ पश्चिमी प्रशान्त के उष्णकटिबंधीय भाग में तापमान में वृद्धि होने से वाष्पीकरण अधिक होने लगता है जिससे इण्डोनेशिया एवं उसके समीपवर्ती भागों में अधिक जलवर्षा होती है। भारत में भी ग्रीष्मकालीन मानसून अधिक सक्रिय हो जाता है। 1998 में ला निना के अधिक सक्रिय होने के कारण सामान्य से बहुत अधिक जलवृष्टि होने से चीन, भारत तथा बांग्लादेश में प्रचण्ड बाढ़ की स्थिति पैदा हो गयी थी।

### 11.3.3.5 पूर्वी आस्ट्रेलिया धारा (Rast Australian Current)

आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के समीप उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली गर्म जलधारा को पूर्वी आस्ट्रेलिया धारा (East Australian Current) कहा जाता है। दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा न्यूगिनी के समीप अनेक शाखाओं में विभक्त हो जाती है, जिनमें पूर्वी आस्ट्रेलिया धारा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

न्यूगिनी के उत्तरी तट के समानान्तर बहती हुई यह धारा दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के सहारे प्रवाहित होती है। अन्त में यह धारा न्यूजीलैंड को अपने घेरे में लेती हुई 40° दक्षिणी अक्षांश के निकट पूरब की ओर मुड़कर दक्षिणी प्रशान्त धारा में विलीन हो जाती है। इस धारा की दिशा में परिवर्तन के दो कारण हैं- पहला, पछुवा हवाओं का प्रभाव, तथा दूसरा, पृथ्वी का विक्षेपक बल। ज्ञातव्य है कि भूमध्य रेखा की ओर से चलने के कारण यह धारा अपने समीपवर्ती महासागरीय जल से अधिक गर्म होती है तथा इसमें लवणता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है।

### 11.3.3.6 पछुवा पवन प्रवाह (West Wind Drift)

यह एक ठंडी जलधारा है। दक्षिणी प्रशान्त महासागर के उच्च्च अक्षांशों में अर्थात् 40° द. से 55° द. अक्षांश के बीच पछुवा हवायें स्थलखण्ड के अवरोध के अभाव में प्रचण्ड वेग से चला करती हैं। इन्हीं पछुवा हवाओं के द्वारा उत्पन्न पश्चिम से पूरब की ओर प्रवाहित होने वाली ठण्डी धारा को **पछुवा पवन प्रवाह** (West Wind Drift) अथवा **दक्षिणी प्रशान्त धारा** (South Pacific Current) कहते हैं। वास्तव में यह ठण्डी धारा, अन्टार्कटिक परिध्रुवीय धारा (Antarctic Circumpolar Current) का ही एक भाग है। इसका विस्तार आस्ट्रेलिया के दक्षिण में स्थित तस्मानियाँ द्वीप तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के मध्य में पाया जाता है। इस धारा का वेग गरजते चालीसा (Roaring Forties) अर्थात 40° दक्षिण अक्षांश से नियंत्रित होता है। 45° दक्षिणी अक्षांश के निकट यह धारा दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है इनमें से एक शाखा केपहार्न के दक्षिण में प्रवाहित होती हुई दक्षिणी अटलान्टिक महासागर में प्रवेश करती है, तथा दूसरी शाखा दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट के सहारे उत्तर की ओर चली जाती है और पीरू तट के समीप पीरू की ठण्डी धारा में मिल जाती है।

## 11.4 हिन्द महासागर की धारायें (Currents of the Indian Ocean)

हिन्द महासागर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण प्रशान्त अथवा अटलान्टिक महासागर से भिन्न है। अटलान्टिक तथा प्रशान्त महासागर का विस्तार आर्कटिक महासागर से अन्टार्कटिक महासागर तक है। किन्तु हिन्द महासागर के उत्तर में एशिया का विशाल महाद्वीप स्थित है, जिसके फलस्वरूप इस महासागर का भूमध्य रेखा से उत्तर वाला भाग धाराओं के संबन्ध में विश्व के अन्य सभी महासागरों से भिन्न है।

दक्षिणी हिन्द महासागर की धारायें प्रायः दक्षिणी अटलान्टिक महासागर की धाराओं के समान हैं। उत्तरी हिन्द महासागर मानसूनी हवाओं के नियंत्रण में रहता है। अतः इसकी धाराओं पर भी ग्रीष्मकालीन तथा शीतकालीन मानसून का प्रभाव पड़ता है। मानसूनी हवाओं के प्रभाव के कारण ही उत्तरी हिन्द महासागर में चलने वाली धाराओं की दिशा में वर्ष के आधे भाग में पूर्णरूप से परिवर्तन हो जाता है। इसके विपरीत, दक्षिणी हिन्द महासागर के उत्तरी भाग में धाराओं तथा पवनों का अन्तर्सम्बन्ध बहुत ही प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट दिखाई पड़ता है; ऐसा किसी अन्य महासागर में नहीं मिलता। उत्तरी हिन्द महासागर में मानसूनी हवाओं के प्रभाव तथा दक्षिणी हिन्द महासागर में उनके अभाव के कारण ही इनकी धाराओं का अलग-अलग विवरण प्रस्तुत किया गया है।

### 11.4.1 उत्तरी हिन्द महासागर की धारायें (Currents of the North Indian Ocean)

मानसूनी हवाओं के प्रभाव के कारण उत्तरी हिन्द महासागर की धारायें प्रचलित पवनों से नियंत्रित होती हैं। 10° दक्षिणी अक्षांश के उत्तर में धाराओं की दिशा में ऋतुओं के साथ परिवर्तन होता रहता है। हिन्द महासागर के उत्तरी भाग में मानसूनी हवाओं के द्वारा उत्पन्न निम्नलिखित धाराये प्रवाहित होती है।

#### 11.4.1.1 शीत कालीन मानसून प्रवाह (Winter Monsoon Drift)

इसे उत्तर-पूर्व मानसून प्रवाह भी कहा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध की शीत ऋतु में एशिया महाद्वीप के विस्तृत भूखण्ड से हिन्द महासागर की और उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक पवन चला करती है। अतः फरवरी तथा मार्च के महीने में उत्तरी-पूर्वी मानसून प्रवाह पूर्ण विकसित रूप में श्रीलंका के दक्षिण-पूरब से पश्चिम की ओर चला करता है। बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में धाराये प्रचलित पवनों के साथ उत्तर-पूर्व से चलती है। इस प्रकार शीतकालीन मानसून की अवधि में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में धाराओं का प्रवाह घड़ी की सुई की विपरीत दिशा (counter-clockwise) में होता है। इस ऋतु में उत्तर-पूर्वी मानसून प्रवाह अपने साथ भारी मात्रा में जल बहाकर अफ्रीका के पूर्वी तट की ओर एकत्रित कर देता है।

समुद्र वैज्ञानिकों की राय में उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा का सर्वाधिक विकास शीतकालीन मानसून की अवधि में होता है जिसके फलस्वरूप 7° दक्षिणी अक्षांश के आसपास भूमध्य रेखीय प्रतिधारा (Equatorial Counter Current) की उत्पत्ति होती है। यह प्रतिधारा 2° से 8° द. अक्षांश के मध्य

पश्चिम से पूरब की ओर 40 सेमी/सेकन्ड के वेग से प्रवाहित होती है । यह धारा जन्जीबार से प्रारम्भ होकर पूरब की ओर सुमात्रा द्वीप तक प्रवाहित होती है। इस धारा में जल की आपूर्ति उत्तरी-पूर्वी मानसून प्रवाह से की जाती है जो अफ्रीका के पूर्वी तट के किनारे दक्षिण की ओर मुड़कर भूमध्यरेखीय प्रतिधारा से मिल जाती है।

अरब सागर की धाराओं पर शीतकालीन मानसून का पूर्ण नियंत्रण होता है। नवम्बर से मार्च तक इस सागर के ऊपर उत्तर-पूर्व से हवायें चलती हैं जिनके प्रभाव से समुद्री धारायें भारतीय तट के समानान्तर दक्षिण की ओर प्रवाहित होती हैं । ज्ञातव्य है कि 10° उ० अक्षांश के निकट धारायें पश्चिम की ओर मुड़ जाती हैं। इनकी एक शाखा अदन की खाड़ी की ओर चली जाती है तथा दूसरी दक्षिण की ओर सोमाली तट के समानान्तर प्रवाहित होती हुई उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा में मिल जाती है।

### 11.4.1.2 दक्षिण-पश्चिमी मानसून प्रवाह (Southwest Monsoon Drift )

उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु में दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी हवाओं के चलने के कारण उत्तरी हिन्द महासागर की धाराओं की दिशा में आमूल परिवर्तन हो जाता है । जुलाई से सितम्बर तक दक्षिण-पश्चिमी मानसून प्रवाह की दिशा पश्चिम से पूरब की ओर हो जाती है । इस अवधि में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा का लोप हो जाता है और इसके स्थान पर दक्षिण-पश्चिमी मानसून प्रवाह पश्चिम से पूर्व प्रवाहित होने लगता है । किन्तु दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा इस समय भी दक्षिणी गोलार्द्ध में 5 द. अक्षांश के दक्षिण में ही प्रवाहित होती रहती है । स्मरण रहे कि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के समय इस धारा की तीव्रता में वृद्धि हो जाती है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून की अवधि में भूमध्यरेखीय प्रतिधारा का लोप हो जाता है । उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु में अफ्रीका के पूर्वी तट के सहारे द. भूमध्य रेखीय धारा की एक शाखा 10° द० अक्षांश के निकट उत्तर की ओर मुड़ जाती है जिसका कुछ भाग भूमध्य रेखा को पार कर जाता है । ज्ञातव्य है कि ये धारायें महासागर की सबसे ऊपरी परतों को ही प्रभावित करती हैं । दक्षिणी पश्चिमी मानसून प्रवाह की शाखायें ग्रीष्मकालीन मानसून के साथ अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करती हैं। इन दोनों समुद्रों में धाराओं का प्रवाह न्यूनाधिक मात्रा में घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप होता है।

### 11.4.1.3 सोमाली धारा (Somali Current)

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून की अवधि में उत्तरी हिन्द महासागर में पूर्वी अफ्रीका के तट के समानान्तर सतह से लगभग 200 मीटर की गहराई तक एक सशक्त धारा की उत्पत्ति होती है जो उत्तर पूर्व की ओर चलती है। इस धारा की चौड़ाई लगभग 250 किलोमीटर होती है । यह धारा सोमालिया के तट के निकट प्रवाहित होती है । शरदऋतु में जब उत्तरी हिन्द महासागर के ऊपर उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक पवनों का चलना प्रारम्भ हो जाता है, तब इस धारा की दिशा में परिवर्तन हो जाता है और इसका प्रवाह दक्षिण पश्चिम की ओर हो जाता है । शीतकालीन मानसून की अपेक्षा ग्रीष्मकालीन मानसून में सोमाली धारा अधिक शक्तिशाली होती है । ग्रीष्मकालीन मानसून की अवधि में यह धारा 7° द. अक्षांश तक चलकर भूमध्यरेखीय प्रतिधारा में विलीन हो जाती है।

### 11.4.2 दक्षिणी हिन्द महासागर की धारायें (Currents of the South Indian Ocean)

भूमध्य रेखा के दक्षिण में हिन्द महासागर की धाराओं में स्थिरता पाई जाती है । यहाँ धाराओं की दिशा में कोई परिवर्तन नहीं होता । इस भाग की धाराओं का क्रम दक्षिणी अटलांटिक महासागर के धारा-क्रम के समान होता है । दक्षिणी हिन्द महासागर की धाराओं में दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा, अगुलहास धारा, पछुवा पवन प्रवाह (West Wind Drift) तथा पश्चिमी आस्ट्रेलियाई धारा विशेष उल्लेखनीय हैं । इन धाराओं के द्वारा दक्षिणी हिन्द महासागर में वामावर्त संचार प्रणाली (anticlockwise circulation system) का विकास होता है।

#### 11.4.2.1 दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा (South Equatorial Current)

यह गर्म धारा द. पू. व्यापारिक पवनों के प्रभाव से 20° अक्षांश के उत्तर-पूरब से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है । ग्रीष्मकालीन मानसून के समय इसका वेग सर्वाधिक होता है । इस अवधि में प्रशान्त महासागर का जल आस्ट्रेलिया के उत्तर से होकर हिन्द महासागर में प्रवेश करता है, किन्तु शीतकालीन मानसून के समय आस्ट्रेलिया के उत्तर में जल प्रवाह उलटा हो जाता है।

दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा पश्चिम में मेडागास्कर द्वीप के कारण दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। इस द्वीप के पूर्वी तट के सहारे दक्षिण की ओर आगे बढ़ने वाली शाखा को **मेडागास्कर धारा** कहते हैं।

जबकि दूसरी शाखा मेडागास्कर के पश्चिमी तट और अफ्रीका के पूर्वी तट के बीच मोजम्बीक चैनल से होकर दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है जहाँ इसे **मोजम्बीक धारा** कहा जाता है।

मेडागास्कर के दक्षिण में 30° द. अक्षांश के निकट इन दोनों शाखाओं के मिल जाने से **अगुलहास धारा** का सृजन होता है। अगुलहास धारा की चौड़ाई मात्र 100 किलोमीटर है, जो महाद्वीप के दक्षिण में अगुलहास अन्तरीप के निकट पछुवा हवाओं के फलस्वरूप पूरब की ओर चलने लगती है और पछुवा पवन प्रवाह में विलीन हो जाती है। ज्ञातव्य है कि इस धारा के जल का कुछ भाग अफ्रीका के दक्षिण में पश्चिम की ओर प्रवाहित होकर अटलान्टिक महासागर में चला जाता है जहाँ विशाल भँवरों का निर्माण होता है।

### 11.4.2.2 पछुवा पवन प्रवाह (West Wind Drift)

दक्षिणी अटलांटिक अथवा प्रशान्त महासागर की तरह दक्षिणी हिन्द महासागर भी स्थायी रूप से एक ठण्डी धारा पश्चिम से पूरब की ओर चलती है। पछुवा पवनों की पेटी में चलने वाली इस परिध्रुवीय धारा (circumpolar current) को पछुवा पवन प्रवाह (West Wind Drift) कहते हैं। महाद्वीपों की उपस्थिति अथवा ऋतुओं में परिवर्तन परिणामस्वरूप इसके प्रवाह में थोड़ा बहुत विक्षेपण (deflection) भी होता है। दक्षिणी गोलार्द्ध की पछुवा प्रवाह मुख्य रूप आस्ट्रेलिया के दक्षिण में प्रवाहित होता दक्षिणी प्रशांत महासागर की ओर चला जाता है। इस ऋतु में इस धारा से केवल छोटी-मोटी शाखायें पश्चिमी आस्ट्रेलिया ओर प्रवाहित होती हैं। किन्तु ग्रीष्मकाल आस्ट्रेलिया के तट पहुँचने से पहले इस धारा की एक मुख्य शाखा उत्तर की ओर मुड़कर पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया पश्चिमी तट के सहारे ठण्डी धारा रूप में प्रवाहित होती है। इस प्रकार दक्षिणी महासागर में धाराओं का प्रवाह घड़ी की सुइयों के विपरीत (anticlockwise) होता जिसके निर्माण में दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा, अगुलहास धारा, पछुवा पवन तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया की धारा का योगदान होता है। ज्ञातव्य है कि संचार प्रणाली के बीच वाले भाग में किसी स्थायी धारा का अभाव पाया जाता है जहाँ केवल महासागरीय जल की भंवरें (eddies) ही दिखाई देती हैं।

### 11.4.2.3 पश्चिमी आस्ट्रेलिया की ठंडी धारा (West Australian Current)

जैसा कि पहले बताया गया है कि पछुवा पवन प्रवाह एक मुख्य शाखा के उत्तर ओर मुड़ जाने से इस ठंडी धारा का निर्माण होता है। आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के समानान्तर बहती हुई धारा आगे चल कर मकर निकट दक्षिणी रेखीय धारा में मिल जाती है। तापमान तथा लवणता की दृष्टि से इस धारा में वही विशेषतायें पाई जाती हैं जो हम्बोल्ट धारा अथवा बेंगुला धारा में पाई जाती हैं। स्मरण रहे कि यह एक क्षीण धारा है जो ग्रीष्म तथा शीत दोनों ऋतुओं में दिखाई देती है।

## 11.5 निष्कर्ष

विभिन्न महासागर में धाराओं का एक सुनियोजित एवं व्यवस्थित प्रतिरूप पाया जाता है जिसकी तुलना वायुमंडलीय परिसंचरण से की जा सकती है। ग्रहीय पवनो तथा पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण यह सुव्यवस्थित क्रम पर्याप्त जटिलता लिए हुए है। अंतर-महासागरीय सम्बद्धता के बावजूद प्रत्येक महासागर में पर्याप्त रूप से स्वतंत्र जलधारा क्रम विकसित हुआ है जिसका विस्तृत एवं सकारण विवरण इस इकाई में दिया गया है।

## अभ्यास प्रश्न

1. उत्तरी अटलान्टिक महासागर की मुख्य धाराओं का वर्णन कीजिये।
2. दक्षिणी अटलान्टिक महासागर की मुख्य धाराओं का वर्णन कीजिये।
3. गल्फ-स्ट्रीम धारा प्रणाली को समझाइए।
4. मध्य-प्रशांत महासागर की धाराओं का वर्णन कीजिये।
5. उत्तरी-प्रशांत महासागर की धाराओं का वर्णन कीजिये।
6. दक्षिणी-प्रशांत महासागर की धाराओं का वर्णन कीजिये।
7. क्यूरोशिवो धारा प्रणाली को समझ सकेंगे।
8. हिन्द महासागर की धाराओं का वर्णन कर सकेंगे।

## सन्दर्भ ग्रन्थ


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 12

# ज्वार भाटा की उत्पत्ति के कारण तथा विशेषताएँ

---

## इकाई की रूपरेखा


| | |
|---|---|
| 12.0 | प्रस्तावना |
| 12.1 | उद्देश्य |
| 12.2 | ज्वार-भाटा की विशेषताएं |
| 12.3 | ज्वार की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी बल |
| 12.4 | सारांश |
| | अभ्यास प्रश्न |
| | सन्दर्भ ग्रन्थ |

# इकाई 12

# ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के कारण तथा विशेषताएँ

## 12.0 प्रस्तावना

महासागरों तथा समुद्रों का जल सदैव गतिमान रहता है। उनमें सदैव विभिन्न प्रकार की गतियाँ पाई जाती हैं। महासागरीय जल में उत्पन्न गतियों को मुख्यत: तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है: प्रथम, ज्वार-भाटा, द्वितीय, धारायें (currents) तथा तृतीय, लहरें (waves)। ज्वार भाटा से तात्पर्य समुद्रों के जल के आवर्ती चढ़ाव तथा उतार (periodic rise and fall) से है। धारायें महासागरों में सरिता प्रवाह की भाँति होती हैं, जिनमें स्पष्ट किनारों के मध्य जलराशि आगे की ओर प्रवाहित होती है। लहरें महासागरीय जल में दोलनात्मक गति (oscillatory movement) का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनकी उत्पत्ति पवनों के कारण होती है। महासागरीय गतियों में ज्वार- भाटा बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इनसे सागर की सतह तल से लेकर सागरीय नितल तक का जल प्रभावित होता है। प्राचीन काल से ही समुद्र तट के निवासी तथा नाविक समुद्र के जलस्तर में दिन में दो बार ऊपर रूप उठने तथा उतने ही बार नीचे गिरने की प्रक्रिया का अवलोकन करते रहे हैं। उन्हें अपने अनुभवों के आधार पर यह भी विश्वास था कि जल के स्तर में इस प्रकार के उतार-चढ़ाव का सम्बन्ध निश्चित से चन्द्रमा एवं सूर्य से है। किन्तु सूर्य, चन्द्रमा और ज्वार-भाटा के मध्य किस प्रकार का संबन्ध है यह उनके लिए एक पहेली बन कर रह गया। सन 1687 ई. में सर आइज़क न्यूटन ने अपने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त द्वारा प्रथम बार यह स्पष्ट किया कि सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी की पारस्परिक आकर्षण शक्ति ही ज्वार की उत्पत्ति का मूल कारण है।

सूर्य एवं चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने (rise) एवं नीचे आने (fall) को ज्वार-भाटा कहते हैं। इससे उत्पन्न तरंगों को 'ज्वारीय तरंग' कहते हैं। सागरीय जल के ऊपर उठकर आगे (तट की ओर) बढ़ने को 'ज्वार' (tide) तथा उस समय निर्मित उच्च जलतल को उच्च ज्वार (high tide) तथा सागरीय जल के नीचे गिरकर (सागर की ओर) पीछे लौटने को भाटा (ebb) तथा उससे निर्मित निम्न जल को निम्न ज्वार (low tide} कहते हैं। औसत सागर तल (mean sea level)

इन दो तलों के बीच रहता है। विभिन्न स्थानों पर ज्वार-भाटा की ऊंचाई में पर्याप्त भिन्नता होती है। यह भिन्नता सागर में जल की गहराई, सागरीय तट की रूपरेखा तथा सागर के खुले होने या बन्द होने पर आधारित होती है।

ज्वार उत्पादक बलों की विवेचना से पूर्व ज्वार-भाटा से सम्बंधित कुछ तकनीकी शब्दावली या पारिभाषिक शब्दों से परिचित होना समाचीन होगा। ज्वार और भाटा समुद्री जल की लम्बवत् गतियों के द्योतक हैं। जब सूर्य तथा चन्द्रमा की आकर्षणशक्ति के फलस्वरूप जल ऊपर उठता है, तब उसे ज्वार (Tide) की संज्ञा प्रदान की जाती है। इसके विपरीत, जब समुद्र का जल नीचे उतरता है, तब उसे भाटा (ebb) कहते हैं। इस प्रकार ज्वार और भाटा एक प्रकार की लहर है, जिसमें जल के कण आगे बढ़ने के बजाय ऊपर और नीचे (to and fro) गतिशील होते हैं। ज्वार और भाटे के कारण समुद्र के जल के स्तर में जो अन्तर होता है, उसे ज्वारीय परिसर (tidal range) कहते हैं। दो ज्वारों (high tides) के समयान्तराल को ज्वारीय अन्तराल (tidal interval) कहा जाता है। अगर किसी खाड़ी में ज्वार-भाटा के फलस्वरूप क्षैतिज धारायें उत्पन्न हो जाती हैं, तब उन्हें ज्वारीय धारायें (tidal currents) कहते हैं। तट की ओर अग्रसर होने वाली ज्वारीय धाराओं को flood tide तथा समुद्र की ओर लौटने वाली धाराओं को ebb tide कहा जाता है।

खुले हुए महासागर में ज्वार-भाटा से उत्पन्न जल के स्तरों की ऊँचाइयों का अन्तर बहुत कम (30-60 सेमी तक) होता है। किन्तु उथले तटवर्ती सागरों में यह अन्तर 10 मीटर तक हो सकता है। कहीं-कहीं ज्वारीय इस्चुअरी (estuary) में 13 मीटर तक का अन्तर पाया जाता है। सबसे अधिक ज्वारीय परिसर (tidal range) फण्डी की खाड़ी (कनाडा के उत्तरीपूर्वी तट) में अंकित किया जाता है। इस खाड़ी के मुहाने पर ज्वारीय परिसर लगभग 2.5 मीटर, तथा खाड़ी के शीर्षभाग पर 15 मीटर तक रिकार्ड किया गया है। इसके विपरीत, भूमध्य सागर तथा वाल्टिक सागर जैसे आंशिक रूप से स्थल से घिरे समुद्रों में ज्वारीय परिसर बहुत कम होता है।

अटलांटिक महासागर के अधिकांश भागों में चौबीस घण्टे की अवधि में 12 घं. 26 मि. के अन्तर पर दो बार ज्वार-भाटा उत्पन्न होता है, जिनकी ऊँचाइयों में समानता पाई जाती है। इन्हें अर्द्ध दैनिक ज्वार (semi-diurnal tides) कहते हैं । प्रशान्त तथा हिन्द महासागर में प्रतिदिन दो ज्वार-भाटा, आते हैं,

किन्तु उनके आयामों (amplitudes) में विभिन्नता होती है। कभी ज्वारों की ऊँचाइयों में अन्तर होता है और भाटे का जल-स्तर स्थिर होता है। इसके विपरीत, कभी ज्वारों की ऊँचाइयाँ समान होती हैं, किन्तु भाटे का जल स्तर भिन्न-भिन्न होता है। ऐसे ज्वार भाटे का जल स्तर भिन्न-भिन्न होता है। ऐसे ज्वार-भाटे को मिश्रित ज्वार (mixed tides) कहते हैं। इनके अतिरिक्त, कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे, मैक्सिको की खाड़ी, फिलीपीन्स द्वीपसमूह के समीपवर्ती सागर, अलास्का के तटवर्ती सागर तथा चीन के समीपवर्ती कुछ समुद्री क्षेत्रों आदि में चौबीस घण्टे में केवल एक ज्वार भाटा उत्पन्न होता है, जिसे दैनिक ज्वार (diurnal tides) की संज्ञा प्रदान की जाती है। उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के ज्वार भाटे की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या करना कठिन है, क्योंकि इनको उत्पन्न करने वाले बल सम्पूर्ण पृथ्वी पर लगभग समान होने चाहिए। अतः इन विभिन्न प्रकार के ज्वारों की उत्पत्ति के लिये महासागरों अथवा सागरों के आकार, उनके समीपवर्ती स्थलखण्डों की स्थिति तथा किनारे के उथले समुद्रों की प्रकृति आदि कारकों को उत्तरदायी माना जाता है। इन तीनों प्रकार के ज्वारों के अतिरिक्त कहीं कहीं ज्वार भाटा में ऐसी विसंगतियाँ पाई जाती हैं, जिनकी व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य है। उदाहरणार्थ, साउदम्पटन के निकट समुद्र में दो घण्टों के अन्तराल में दो उच्च ज्वार उत्पन्न होते हैं, जिनके जल-स्तरों में मात्र 30 से 60 सेमी का अन्तर होता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ज्वारीय परिसर तथा ज्वार-भाटे की प्रकृति में सर्वत्र समानता नहीं पाई जाती। अतः ज्वार उत्पन्न करने वाले बलों तथा महासागरों की अन्तर्क्रिया के संबन्ध में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

## 12.1 उद्देश्य

इकाई 12, "ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के कारण तथा विशेषताएं" के अध्ययन के उपरांत आप:

1. ज्वार-भाटा की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
2. ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के कारण समझकर लिख सकेंगे।

## 12.2 ज्वार-भाटा की विशेषताएं

महासागरीय ज्वारों की प्रमुख विशेषतायें नीचे वर्णित हैं:

i. ज्वार एकल तरंग है जो उपरी सतह से लेकर नितल तक समस्त महासागरीय बेसिन को प्रभावित करते हैं। ज्वारीय तरंगों के अग्र भाग में महासागरीय बेसिन का जल ऊपर उठता है जबकि ज्वारीय तरंगों के पृष्ठ भाग में जल की अधः गति (downward movement) के कारण सागर तल में गिरावट होती है।

ii. ज्वार कम गहराई वाली जल तरंग होते हैं परन्तु इनकी तरंग लम्बाई (wavelength) (यहां तक कि गहरे सागर में भी) बहुत अधिक होती है।

iii. ज्वारों की उत्पत्ति सूर्य एवं चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण होती है जबकि सामान्य समुद्री लहरें पवनो के वेग की शक्ति द्वारा उत्पन्न होती हैं।

iv. ज्वारीय तरंगें कम ऊंची होती हैं परन्तु उनकी ऊर्जा बहुत अधिक होती है जबकि सागरीय लहरें काफी ऊंची होती हैं परन्तु उनकी ऊर्जा कम होती है।

v. अधिकांश रूप से सागरीय तरंगो की प्रकृति स्थानीय होती ही जबकि ज्वारीय तरंगे सर्वव्यापी परिघटना हैं।

vi. उच्च ज्वार जल तथा निम्न ज्वार तल के बीच लम्बवत दूरी को ज्वार तरंग की ऊंचाई या ज्वार परिसर कहते हैं। यह ऊंचाई साधारणतया 2 मीटर से 4 मीटर के बीच होती है।

vii. सामान्यत: पृथ्वी की सतह पर सागरीय जल के तटवर्ती भागों के प्रत्येक स्थान पर दिन में दो बार ज्वार तथा दो बार भाटा आते हैं।

viii. उच्च एवं निम्न ज्वारों की ऊंचाई में सदा परिवर्तन होता रहता है। दूसरे शब्दों में किन्हीं भी दो उच्च ज्वार या दो निम्न ज्वार की ऊंचाई कभी भी समान नहीं होती है।

ix. ज्वारीय परिसर के मासिक चक्रों में भी परिवर्तन होता रहता है क्योंकि यह पृथ्वी से चन्द्रमा एवं सूर्य की बदलती दूरी पर आधारित होता है। क्योंकि पृथ्वी की परिभ्रमण कक्षा (revolution orbit) की आकृति अण्डाकार (elliptical) है अत: स्वाभाविक तौर पर पृथ्वी की सूर्य तथा चन्द्रमा से दूरी (चन्द्रमा के परिभ्रमण पथ के कारण) परिवर्तनशील है तथा उसी के अनुरूप ज्वार-भाटा के मासिक चक्र भी परिवर्तनशील हैं।

## 12.3 ज्वार की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी बल

समुद्री ज्वार की उत्पत्ति मुख्य रूप से सूर्य एवं चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बलों से सम्बंधित है। स्मरण है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन करती है साथ ही साथ अंडाकार पथ में सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी तरह चन्द्रमा भी पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन करता है तथा अण्डाकार कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है, जिस कारण पृथ्वी एवं चन्द्रमा के बीच की दूरी बदलती रहती है । पृथ्वी और चन्द्रमा की सर्वाधिक दूरी (407,000 किमी०) की स्थिति को अपभू (apogee) तथा न्यूनतम दूरी (356,000 किमी०) की स्थिति को उपभू (perigeo) कहते हैं।

ज्वार की उत्पत्ति चन्द्रमा तथा सूर्य के आकर्षण बलों द्वारा होती है। पृथ्वी का व्यास 12,800 किमी० है, परिणामस्वरूप पृथ्वी की सतह, पृथ्वी के केन्द्र की अपेक्षा चन्द्रमा की सतह से 6,400 किमी० नजदीक है। चन्द्रमा का केन्द्र, पृथ्वी के केन्द्र से 3,84,800 किमी० दूर है तथा पृथ्वी की सतह, चन्द्रमा की सतह से 3,77,600 किमी० दूर है । स्पष्ट है कि पृथ्वी की सतह का चंद्रमा के सामने वाला भाग 3,77,600 किमी० दूर होगा जबकि पृथ्वी की सतह पीछे वाला भाग चन्द्रमा की सतह से 3,90,400 किमी० दूर स्थित होगा। अतः चन्द्रमा के सामने स्थित भाग (पृथ्वी का सबसे नजदीक स्थित भाग) में चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति का सर्वाधिक प्रभाव होता है जबकि उसके पीछे स्थित भाग पर न्यूनतम । परिणामस्वरूप चन्द्रमा के सामने स्थित पृथ्वी का जल ऊपर खिंच जाता है, जिस कारण उच्च ज्वार अनुभव किया जाता है । इस स्थान के ठीक पीछे भी निम्न ज्वार का अनुभव किया जाता है, क्योंकि चन्द्रमा के केन्द्रोन्मुख (centrepetal) गुरुत्वाकर्षण बल की प्रतिक्रिया परिणामस्वरूप उत्पन्न केन्द्रापसारित (centrifugal) बल के कारण जल का बाहर की ओर उभार हो जाता है। इस कारण 24 घण्टे में बार प्रत्येक स्थान पर दो बार ज्वार तथा दो बार भाटा आता है।

जब सूर्य तथा चन्द्रमा एक सीधी रेखा में होते हैं तो दोनों की आकर्षण शक्ति मिलकर एक साथ कार्य करती है तथा उच्च ज्वार अनुभव किया जाता है। यह स्थिति पूर्णमांसी तथा अमावस्या को होती है। इसके विपरीत जब सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा मिलकर समकोण बनाते हैं तो सूर्य तथा चन्द्रमा के आकर्षण बल एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं, जिस कारण निम्न ज्वार अनुभव किया जाता है। यह स्थिति प्रत्येक महीने के कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष की अष्टमी को होती है।

दो ब्रह्माण्डीय वस्तुओं (celestial bodies) के मध्य गुरुत्वाकर्षण की शक्ति निम्न 2 नियमों से निर्धारित होती है :

1. गुरुत्वाकर्षण किसी वस्तु के द्रव्यमान (mass) के समानुपातिक (proportional) होता है । अर्थात् जिस वस्तु का द्रव्यमान जितना अधिक होगा, उसका गुरुत्वाकर्षण भी उतना ही अधिक होगा । इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी वस्तु के द्रव्यमान बढ़ने पर उसका गुरुत्वाकर्षण बढ़ता है तथा द्रव्यमान घटने पर गुरुत्वाकर्षण घटता है।
2. गुरुत्वाकर्षण दो अन्तर्क्रियाशील वस्तुओं के मध्य दूरी के वर्ग के विलोम समानुपातिक (inversely proportional) होता है। सरल रूप में यह व्यक्त किया जा सकता है कि विभिन्न द्रव्यमान वाली दो वस्तुओं के बीच जितनी अधिक दूरी होगी, गुरुत्वाकर्षण बल उतना ही कम होगा, जबकि दूरी कम होने पर गुरुत्वाकर्षण बल अधिक होगा।

स्मरणीय है कि गुरुत्वाकर्षण बल एवं ज्वार उत्पन्न करने वाले बल मैं थोड़ा अन्तर होता है। उदाहरण के लिए ज्वारोत्पादक बल पृथ्वी की सतह के प्रत्येक विन्दु तथा ज्वारोत्पादक वस्तु (चन्द्रमा एवं सूर्य) के केन्द्र के बीच की दूरी के घन (cube) के विलोम समानुपातिक होता है जबकि गुरुत्वाकर्षण बल दूरी के वर्ग के विलोम समानुपातिक होता है । स्मरण रहे कि यद्यपि सूर्य का द्रव्यमान (mass) चन्द्रमा के द्रव्यमान से 10 मिलियन गुना अधिक है परन्तु पृथ्वी के सन्दर्भ में चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल की शक्ति सूर्य की तुलना में 2 गुना अधिक है क्योंकि सूर्य की तुलना में चन्द्रमा पृथ्वी से 390 गुना करीब है। यही कारण है कि सूर्य की तुलना में पृथ्वी की सतह पर चन्द्रमा का ज्वार उत्पादक बल 2 गुना अधिक है। इस प्रकार चन्द्रमा का ज्वार उत्पादक बल (tide-gener- ating force) पृथ्वी की सतह पर एक ही साथ 2 चन्द्र ज्वार बल्ज (lunar tidal bulge) उत्पन्न करता है। एक बल्ज चन्द्रमा के सामने स्थित पृथ्वी की सागरीय सतह पर उत्पन्न होता है। इसे जेनिथ कहते हैं। दूसरा बल्ज पृथ्वी की सागरीय सतह के विपरीत साइड वाली सागरीय सतह पर उत्पन्न होता है । इस बल्ज को नादिर कहते हैं। जेनिथ चन्द्र बल्ज चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा उत्पन्न होता है जबकि नादिर चन्द्र बल्ज पृथ्वी एवं चन्द्रमा के घूर्णन से उत्पन्न केन्द्रत्यागी बल (centrifugal force) अर्थात् प्रत्युत्पन्न बल (resultant force) के कारण

उत्पन्न होता है। इस प्रकार 24 घण्टे में पृथ्वी की सागरीय सतह के प्रत्येक स्थान पर 2 बार ज्वार तथा 2 बार भाटा (ebb) आता है।

ज्ञातव्य है कि पृथ्वी अपनी कल्पित धुरी पर 24 घण्टे में एक चक्कर पूरा कर लेती है, जिसे दैनिक परिभ्रमण (diurnal rotation) कहते हैं। पृथ्वी के इस दैनिक परिभ्रमण के कारण उसकी सतह पर स्थित प्रत्येक विन्दु चौबीस घण्टे की अवधि में महासागरीय जल के उपर्युक्त दोनों उभारों से होकर गुजरता है। अतः प्रत्येक स्थान पर प्रतिदिन दो ज्वार और दो भाटा उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर 12 घण्टे के अन्तर पर ज्वार की उत्पत्ति होनी चाहिए। किन्तु पृथ्वी और चन्द्रमा की सापेक्ष स्थितियों में अन्तर के परिणामस्वरूप प्रत्येक ज्वार 12 घण्टे 26 मिनट पर आता है। इस प्रकार प्रत्येक 24 घं. 52 मिनट पर दो ज्वार और दो भाटा उत्पन्न होते हैं। दो ज्वारों के आने के समय में उपर्युक्त विसंगति का कारण पृथ्वी का घूर्णन (rotation) तथा चन्द्रमा का पृथ्वी के चारो ओर परिक्रमण (revolution) है। चौबीस घण्टे में जब पृथ्वी अपना एक चक्कर पूरा कर लेती है, तब इसी अवधि में चन्द्रमा भी अपने परिक्रमा पथ (orbit) पर थोड़ी दूर आगे निकल जाता है। अतः पृथ्वी के किसी देशान्तर को पुनः चन्द्रमा के ठीक सामने आने के लिये थोड़ी और दूरी तय करनी पड़ती है। ऐसा होने में 52 मिनट का अतिरक्त समय लगता है।

## 12. 4 सारांश

जल की दैनिक गतियों में ज्वार-भाटा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सूर्य एवं चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने (rise) एवं नीचे आने (fall) को ज्वार-भाटा कहते हैं। इससे उत्पन्न तरंगों को 'ज्वारीय तरंग' कहते हैं। प्रतिदिन पृथ्वी की सागरीय सतह के प्रत्येक स्थान पर 2 बार ज्वार तथा 2 बार भाटा की उत्पत्ति होती है। इनकी उत्पत्ति में सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल का अधिक महत्त्व है।

**अभ्यास प्रश्न**

1. ज्वार-भाटा की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या कीजिये।

**सन्दर्भ सूची**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 13

# ज्वार-भाटा के प्रकार, ज्वार-भाटा के प्रभाव

## इकाई की रूपरेखा


| | |
|---|---|
| 13.0 | प्रस्तावना |
| 13.1 | उद्देश्य |
| 13.2 | ज्वार-भाटे के प्रकार |
| 13.2.1 | दीर्घ ज्वार |
| 13.2.2 | लघु ज्वार |
| 13.2.3 | अपभू ज्वार एवं उपभू ज्वार |
| 13.2.4 | क्रान्तिक ज्वार |
| 13.2.5 | अर्द्ध- दैनिक ज्वार |
| 13.2.6 | दैनिक ज्वार |
| 13.2.7 | मिश्रित ज्वार |
| 13.3 | ज्वार-भाटा के प्रभाव |
| 13.3.1 | ज्वार-भाटा का भौतिक वातावरण एवं समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव |
| 13.3.2 | ज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर प्रभाव |
| 13.3.2.1 | ज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर सकारात्मक प्रभाव |
| 13.3.2.2 | ज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर नकारात्मक प्रभाव |
| 13.4 | सारांश |
| | अभ्यास प्रश्न |
| | सन्दर्भ ग्रन्थ |

# इकाई 13: ज्वार-भाटा के प्रकार, ज्वार-भाटा के प्रभाव

## 13.0 प्रस्तावना

महासागरीय जल में उत्पन्न गतियों में ज्वार-भाटा बेहद महत्वपूर्ण है। सन 1687 ई. में सर आइज़क न्यूटन ने अपने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त द्वारा प्रथम बार यह स्पष्ट किया कि सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी की पारस्परिक आकर्षण शक्ति ही ज्वार की उत्पत्ति का मूल कारण है । सूर्य एवं चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने (rise) एवं नीचे आने (fall) को ज्वार-भाटा कहते हैं। इससे उत्पन्न तरंगों को 'ज्वारीय तरंग' कहते हैं। इस प्रकार ज्वार और भाटा एक प्रकार की लहर है, जिसमें जल के कण आगे बढ़ने के बजाय ऊपर और नीचे गतिशील होते हैं।

ज्वार एकल तरंग है जो उपरी सतह से लेकर नितल तक समस्त महासागरीय बेसिन को प्रभावित करते हैं । ज्वारीय तरंगों के अग्र भाग में महासागरीय बेसिन का जल ऊपर उठता है जबकि ज्वारीय तरंगों के पृष्ठ भाग में जल की अधः गति (downward movement) के कारण सागर तल में गिरावट होती है। सामान्यत: पृथ्वी की सतह पर सागरीय जल के तटवर्ती भागों के प्रत्येक स्थान पर दिन में दो बार ज्वार तथा दो बार भाटा आते हैं। ज्वारीय परिसर के मासिक चक्रों में भी परिवर्तन होता रहता है क्योंकि यह पृथ्वी से चन्द्रमा एवं सूर्य की बदलती दूरी पर आधारित होता है। क्योंकि पृथ्वी की परिभ्रमण कक्षा (revolution orbit) की आकृति अण्डाकार (elliptical) है अत: स्वाभाविक तौर पर पृथ्वी की सूर्य तथा चन्द्रमा से दूरी (चन्द्रमा के परिभ्रमण पथ के कारण) परिवर्तनशील है तथा उसी के अनुरूप ज्वार-भाटा की के मासिक चक्र भी परिवर्तनशील हैं। इन समस्त विशिष्टाओं को ध्यान में रखते हुए ज्वार भाटा के प्रकारों के अध्ययन किया जाना चाहिए।

## 13.1 उद्देश्य

इकाई 13, "ज्वार-भाटा के प्रकार एवं प्रभाव" के अध्ययन के उपरांत आप:

3. ज्वार-भाटा के भिन्न प्रकारों के बीच अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

4. ज्वार-भाटा के विभिन्न प्रकारों की उत्पत्ति कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।

5. ज्वार-भाटा के प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे।

## 13.2 ज्वार-भाटे के प्रकार (Types of Tides)

पृथ्वी, चन्द्रमा तथा सूर्य की सापेक्ष स्थितियों में अन्तर के कारण ज्वारोत्पादक बलों में विभिन्नता पाई जाती है। अतः पृथ्वी पर विभिन्न महासागरों तथा उनके भिन्न-भिन्न भागों में उत्पन्न होने वाले ज्वार-भाटे में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। अतः ज्वार-भाटा विभिन्न प्रकार के होते हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

### 13.2.1 दीर्घ ज्वार (Spring Tide)

पृथ्वी अपने इस एकाकी उपग्रह चन्द्रमा के साथ सूर्य का परिक्रमण करती है जिसके कारण सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा की सापेक्ष स्थिति लगातार बदलती रहती है। अमावस्या (New Moon) तथा पूर्णिमा (Full Moon) को सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी एक सीध में होते हैं। ऐसी स्थिति को सिजिगी (Syzygy) अथवा युति-विद्युति (conjunction and opposition) कहते हैं। युति की स्थिति में चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी के बीच में स्थित होता है, और वियुति की स्थिति में पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के बीच में स्थित होती है। ऐसी स्थितियों में चन्द्रमा और सूर्य के ज्वारोत्पादक बल (tide-producing forces) एक साथ मिल जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप स्र्वाधिक ऊंचाई वाले ज्वारा उत्पन्न होते हैं। उच्च ज्वार साधारण ज्वार से ऊँचा तथा भाटा सामान्य से अधिक नीचा हो जाता है। ऐसे ज्वार-भाटा को वृहत् ज्वार अथवा दीर्घ ज्वार (spring tides) कहते हैं। ऐसे ज्वार प्रत्येक पन्द्रहवें दिन अर्थात अमावस्या तथा पूर्णिमा को उत्पन्न होते हैं।

### 13.2.2 लघु ज्वार (Neap Tides)

अमावस्या तथा पूर्णिमा के अतिरिक्त अन्य तिथियों को सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की सापेक्ष स्थितियों में अन्तर आ जाने के कारण वे एक सीध में नहीं होते। इसके फलस्वरूप ज्वारों की ऊंचाइयों में कमी होने

लगती है। प्रत्येक महीने में दो पक्ष होते हैं- कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष प्रत्येक माह की सप्तमी अथवा अष्टमी को सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति ऐसी हो जाती है कि पृथ्वी के केन्द्र पर इन्हें मिलाने वाली रेखायें 90° का कोण बनाती है। इस स्थिति को चन्द्र समकोण स्थिति (quadrature of moon) कहते हैं। ऐसी स्थिति में स्पष्टतः सूर्य और चन्द्रमा के ज्वारोत्पादक बल परस्पर विपरीत दिशा में कार्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप उत्पन्न ज्वार की ऊँचाई सामान्य ज्वार से कम होती है। स्मरण रहे कि इन तिथियों को भाटा भी सामान्य से कम नीचा होता है। इस प्रकार लघु ज्वार के उत्पन्न होने पर ज्वार और भाटे के जल-स्तरों का अन्तर भी न्यूनतम होता है ।

### 13.2.3 अपभू ज्वार एवं उपभू ज्वार (Apogean Tide and Perigean Tide)

चन्द्रमा दीर्घवृत्तीय कक्षा (elliptical orbit) में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अतः वह पृथ्वी के निकट, तो कभी उससे दूर स्थित होता है। जब चन्द्रमा पृथ्वी से निकटतम दूरी पर होता है, तो उस स्थिति को उपभू कहते हैं, और जब वह पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर होता है, तब उसे अपभू स्थिति कहा जाता है। चूंकि ज्वार उत्पादक बल, दूरी के घन का व्युत्क्रमानुपाती होता है। अतः उपभू स्थिति में उत्पन्न ज्वार जिसे उपभू ज्वार कहते हैं, सामान्य ज्वारों की अपेक्षा 20 प्रतिशत अधिक ऊँचा होता है। इसके विपरीत, चन्द्रमा की अपभू स्थिति में उत्पन्न ज्वारों की ऊँचाई सामान्य से 20 प्रतिशत कम होती है। यदि संयोगवश दीर्घज्वार के साथ-साथ उपभू ज्वार भी आ जाता है, तो ऐसी स्थिति में ज्वार की ऊँचाई में असाधारण वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार जब अपभू ज्वार एवं लघु ज्वार साथ-साथ उत्पन्न होते हैं, तब ज्वार की ऊंचाई में असाधारण कमी हो जाती है ।

### 13.2.4 क्रान्तिक ज्वार (Declinational Tides)

क्रान्तिक ज्वारों की उत्पत्ति का कारण सूर्य और चन्द्रमा का भूमध्य रेखा से उत्तर तथा दक्षिण की ओर झुकाव होता है। जैसा कि हमें मालूम है, सूर्य कभी उत्तरायण तो कभी दक्षिणायन हो जाता है। कभी सूर्य भूमध्य रेखा के ठीक ऊपर चमकता है। ऐसी स्थिति वर्ष में दो बार होती है जिसे बसन्त विषुव तथा शरद विषुव (Vernal Equinox and Autumnal Equinox) कहते हैं। किन्तु चन्द्रमा प्रत्येक मास में कभी कर्क रेखा, तो कभी मकर रेखा के निकट स्थित होता है, और इस प्रकार प्रत्येक पक्ष में चन्द्रमा की स्थिति

एक बार भूमध्य रेखा के ठीक ऊपर होती है। अतः चन्द्रमा एक युतिमास (synodic month) में कर्क से मकर रेखा की यात्रा पूरी करता है। जब चन्द्रमा का उत्तर की ओर दिक्पात (declination) अधिकतम होता है, तब कर्क रेखा पर उत्पन्न उच्च ज्वार की ऊँचाई सामान्य से अधिक होती है। जब चन्द्रमा का दक्षिण की ओर दिक्पात अधिकतम होता है तब मकर रेखा के निकट असाधारण उच्च ज्वार उत्पन्न होता है। ज्ञातव्य है कि सूर्य और चन्द्रमा की भूमध्य रेखा से परिवर्तनशील दूरी को ही इन आकाशीय पिण्डों का दिक्पात अथवा क्रान्ति (declination) कहते हैं। कर्क और मकर रेखाओं के निकट उत्पन्न असाधारण ऊँचाई वाले इन ज्वारों को अपवृत्तीय ज्वार (Tropical tides) कहा जाता है।

### 13.2.5 अर्द्ध- दैनिक ज्वार (Semi-diurnal Tides)

प्रतिदिन समान ऊँचाई वाले दो उच्च ज्वार तथा दो निम्न ज्वार उत्पन्न होते हैं। चन्द्रमा के किसी स्थान विशेष के ठीक ऊपर से गुजर जाने के उपरान्त बराबर समयान्तराल पर उच्च ज्वार की उत्पत्ति होती है। एक उच्च ज्वार के 12 घण्टे 26 मिनट बाद दूसरे उच्च ज्वार की उत्पत्ति होती है। अटलांटिक महासागर में अर्द्ध दैनिक ज्वार प्रमुख रूप से उत्पन्न होते हैं।

### 13.2.6 दैनिक ज्वार (Diurnal Tides)

जब दिन में केवल एक ही उच्च ज्वार उत्पन्न होता है, तब उसे दैनिक ज्वार कहते हैं। ऐसे ज्वार 24 घण्टे 52 मिनट के अन्तराल पर उत्पन्न होते हैं।

जब चन्द्रमा भूमध्य रेखा के ठीक ऊपर स्थित होता है, तब वहाँ उत्पन्न दोनों उच्च ज्वारों तथा दोनों निम्न ज्वारों की ऊंचाइयों में समानता पाई जाती है। इन ज्वारों को भूमध्य रेखीय ज्वार (Equatorial tides) कहते हैं। यह दैनिक ज्वार का ही एक विशिष्ट प्रकार है।

### 13.2.7 मिश्रित ज्वार (Mixed Tides)

जब एक दिन में असमान ऊँचाई वाले दो उच्च ज्वार उत्पन्न होते हैं, तब उन्हें मिश्रित ज्वार कहा जाता है। इनके आने के समय में भी असमानता पायी जाती है। ऐसी स्थिति चन्द्रमा के भूमध्य रेखा के ऊपर आने के समय होती है। कभी-कभी चन्द्रमा के अधिकतम दिक्पात (declination) के उपरान्त दिन में केवल

एक ही उच्च ज्वार उत्पन्न होता है। मैक्सिको की खाड़ी, दक्षिणी चीन सागर, स्याम की खाड़ी, टानकिंग की खाड़ी, बोर्नियो तथा जावा सागर, बेरिंग सागर तथा ओखोटस्क सागर आदि में ऐसे ज्वारों की प्रधानता होती है। ज्ञातव्य है कि इन समुद्रों में दैनिक ज्वार की प्रमुखता वाले मिश्रित ज्वार प्रायः उत्पन्न होते हैं। प्रशान्त महासागर के तटवर्ती सागरों में अर्द्ध दैनिक ज्वारों की वाले प्रधानता वाले मिश्रित ज्वार उत्पन्न होते हैं। हिन्द महासगर में मध्यम ऊँचाई वाले मिश्रित ज्वार देखे जाते हैं।

## 13.3 ज्वार-भाटा के प्रभाव

ज्वार-भाटा महासागरीय जल की एक ऐसी गति है, जिसका प्रभाव समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र तथा मानवीय क्रियाकलापों दोनों पर पड़ता है। विशेषरूप से समुद्र के समीपवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोग ज्वार-भाटा के समय लहरों के उतार चदाव की सीमा तथा उनके प्रभाव दोनों से परिचित होते हैं। तथा ज्वार-भाटा उनके क्रियाकलापों जैसे मत्स्यन तथा नौकायन की समयावधि को भी प्रभावित करता है। प्रस्तुत अध्याय में ज्वार-भाटा के भौतिक वातावरण, समुद्री इकोसिस्टम तथा मानवीय क्रियाकलापों को बिन्दुवार प्रस्तुत किया गया है।

### 13.3.1 ज्वार-भाटा का भौतिक वातावरण एवं समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव:

ज्वार भाटा के भौतिक वातावरण एवं समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर स्थानीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव होते हैं। इनमें से कुछ प्रभाव निम्नवत हैं:

- ज्वार समुद्री पारिस्थितिक तंत्र में पोषक तत्वों के चक्रण में एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे पोषक तत्वों को गहरे समुद्र से सतह पर लाते हैं।
- ज्वार कार्बन प्रच्छादन में एक भूमिका निभा सकते हैं, क्योंकि वे कार्बन युक्त तलछट को तट से गहरे समुद्र में ले जा सकते हैं।
- ज्वार समुद्र तटों पर तलछट जमा कर सकता है, जो उन्हें पोषण और सुरक्षा में मदद कर सकता है।
- ज्वार तटीय क्षेत्रों में पानी की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है, जिससे लवणता, तापमान और ऑक्सीजन के स्तर में परिवर्तन हो सकता है।

- ज्वार भाटा का तटों के आकार-प्रकार पर भी प्रभाव पड़ता है। ज्वारीय धारायें एवं तरंगे अपरदन, परिवहन तथा निक्षेपण की क्रियाओं द्वारा तटों के स्वरूप परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। ज्वारीय धाराएँ तलछट को चारों ओर ले जाकर और कटाव से बचाकर तटरेखाओं को स्थिर करने में मदद कर सकती हैं।
- स्थानीय स्तर ज्वारीय तरंगें जलवायु एवं मौसम के विनियमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, क्योंकि वे महासागरीय ताप ऊर्जा को तटों की ओर वितरित करने में मदद करती हैं। हालाँकि ज्वारीय तरंगों का प्रभाव महासागरीय धाराओं की तुलना में सीमित होता है तथा स्थान विशेष पर सीमित होता है।
- ज्वार समुद्री पारिस्थितिक तंत्र में जैविक उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं, क्योंकि वे पोषक तत्वों को सतह पर लाते हैं जहां प्रकाश संश्लेषक जीवों द्वारा उनका उपयोग किया जा सकता है।
- ज्वार मछलियों के प्रवासन पैटर्न को प्रभावित करते हैं तथा तटीय क्षेत्रों में उनके वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- कभी-कभी ज्वारीय तरंगें समुद्री जीवन के आवासों को नष्ट कर सकती हैं, जिससे प्रभावित क्षेत्रों में जैव विविधता का नुकसान हो सकता है।

### 13.3.2 ज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर प्रभाव:

मनुष्य ने समुद्रो के साथ दीर्घ साहचर्य के दौरान उनकी गतियों के प्रति एक अद्भुत समझ विकसित की है। अपनी इसी समझ का लाभ उठाते हुए वह ज्वारीय लहरों का उपयोग करते हुए अनेक प्रकार से लाभान्वित होता है। हालाँकि ज्वारीय लहरों के मात्र सकारात्मक प्रभाव नहीं हैं कभी कभार इन लहरों के नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिल सकते हैं।

#### 13.3.2.1 ज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर सकारात्मक प्रभाव:

- समुद्री जीवों जैसे मूंगा एवं मोती कृषि में ज्वार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे समुद्री जीवों के आहार की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए निम्न ज्वार के समय पोषक तत्व तली पर दिखाई देने लगते हैं जिससे उन्हें इकट्ठा करना आसान हो जाता है। इसी

तरह, उच्च ज्वार पोषक तत्वों से भरपूर पानी और तलछट को किनारे पर ला सकते हैं, जिससे इन जीवों की कृषि में लाभ होता है।

- ज्वार एक्वाकल्चर संचालन को प्रभावित कर सकता है, क्योंकि समुद्री जल की उपलब्धता तथा उसकी गुणवत्ता में परिवर्तन एक्वाकल्चर की प्रजातियों के विकास और स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।
- ज्वार-भाटा मत्स्य उद्योग को भी प्रभावित करता है। ज्वारीय तरंगें विभिन्न प्रकार के प्लॅक्टनों के वितरण द्वारा मछलियों के लिये भोजन की आपूर्ति करने में सहायक होती हैं जिनसे उनकी संख्या में वृद्धि होती है।
- ज्वार मछली पकड़ने के संचालन को प्रभावित कर सकता है, क्योंकि जल स्तर और धाराओं में परिवर्तन मछली के वितरण को प्रभावित कर सकता है। समुद्री क्षेत्रों में मछुआरों को अपने पूर्व अनुभव से इन स्थानीय तथ्यों का ज्ञान होता है जिसका प्रयोग वे मत्स्यन के दौरान करते हैं।
- ज्वार जलमार्गों की गहराई और प्रवाह को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे नावों और जहाजों को नेविगेट करना आसान या अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाता है। कुछ बंदरगाह और बंदरगाह केवल उच्च ज्वार के दौरान ही सुलभ होते हैं जब जल स्तर बड़े जहाजों को समायोजित करने के लिए पर्याप्त गहरा होता है। ज्वार-भाटे से सर्वाधिक लाभ संसार के उन बड़े बड़े बन्दरगाहों को होता है जो समुद्र से कुछ दूर नदियों के किनारे बनाये गये हैं। कलकत्ता, लन्दन एवं अन्य ऐसे बन्दरगाहों तक बड़े मालवाही पोतों को ज्वार के समय जल-स्तर ऊँचा होने पर पहुँचाया जाता है। ज्वारों के अभाव में ऐसे जहाजों को दूर समुद्र में खड़ा रहना पड़ता तथा माल की ढुलाई में काफी व्यय होता।
- ज्वारीय तरंगों से बन्दरगाहों में जमा होने वाले मलवे की सफाई होती रहती है। ज्वार-भाटे के अभाव में तलछट के जमाव से जल की गहराई कम होने की सम्भावना बनी रहती है। अतः ज्वार के कारण बन्दरगाहों की प्राकृतिक ढंग से सफाई होती रहती है।
- ज्वारीय तरंगों की ऊँचाई का लाभ उठाते हुये आधुनिक तकनीकी के अनुप्रयोग द्वारा विद्युत् उत्पादन किया जा सकता है। ज्वारीय ऊर्जा, नवीकरणीय ऊर्जा का एक रूप, ज्वारीय धाराओं

की गतिज ऊर्जा का दोहन करके उत्पन्न की जाती है। ज्वारीय ऊर्जा में स्वच्छ ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत प्रदान करने की क्षमता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ तटों पर ज्वारीय तरंगों से विद्युत् उत्पादन की विशाल सम्भावनायें पायी जाती हैं। किन्तु अभी इस दिशा में सीमित प्रयास ही किये गये हैं।

- अनेक तटों पर ज्वार-भाटे के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के छोटे-छोटे समुद्री जीव तथा शंख, सीप तथा अनेक ऐसे पदार्थ विखेर दिये जाते हैं। इन्हें चुनकर लोग अपना जीविकोपार्जन करते हैं।
- ज्वारीय द्वार और अन्य संरचनाओं का उपयोग तटीय क्षेत्रों में बाढ़ को नियंत्रित करने, क्षति और जीवन की हानि को रोकने के लिए किया जा सकता है।
- ज्वार समुद्र तट की स्थितियों को प्रभावित कर सकता है, जैसे किनारे का आकार और आकृति, पानी का तापमान और ज्वार पूल की उपलब्धता। तैराकी, सर्फिंग और टाइडपूलिंग जैसी कई मनोरंजक गतिविधियाँ ज्वार से प्रभावित होती हैं। इसके अतिरिक्त, कई पर्यटन स्थल जैसे कि तटीय सैरगाह, परिभ्रमण, और वन्य जीवन देखने वाले पर्यटन स्वस्थ ज्वार-निर्भर पारिस्थितिक तंत्र की उपस्थिति पर निर्भर करते हैं।

### 13.3.2.2 sज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर नकारात्मक प्रभाव:

- कहीं कहीं ज्वारीय तरंगों के द्वारा पोताश्रयों एवं पत्तनों में भारी मात्रा में मलवे का निक्षेपण किया जाता है जिसे साफ करने के लिये काफी धन भी खर्च करना पड़ता है।
- कभी कभी ज्वार से तटीय समुदायों और बुनियादी ढांचे जैसे घरों, सड़कों और उपयोगिताओं को नुकसान या विनाश का खतरा हो सकता है।
- समुद्रों के तट पर स्थित महासागरों से निकलने वाले कचरे को प्रायः सागर-जल में डाल दिया जाता है जिससे पर्यावरण प्रदूषण का खतरा बढ़ जाता है। ज्वार-भाटा के द्वारा इस कचरे को बहाकर दूर समुद्र में पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार कचरे के निस्तारण में ज्वार-भाटे से बड़ी सहायता मिलती है। हालाँकि इससे तटीय क्षेत्रों का अपशिष्ट अधिक दूर तक फ़ैल जाता है

जिससे समुद्री जीवन को खतरा भी बढ़ता है और इसका निस्तारण और अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

- ज्वारीय लहरें तटीय क्षेत्रों को महत्वपूर्ण नुकसान पहुंचा सकती हैं, जिससे समुद्र तटों और अन्य तटीय सुविधाओं का क्षरण हो सकता है।
- कहीं कभी ज्वारीय परिवर्तन बंदरगाहों और बंदरगाहों में नेविगेशन को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे जहाजों को प्रवेश करना और छोड़ना अधिक कठिन हो जाता है।

## 13.4 सारांश

महासागरीय सामान्य रूप से एक सुनिश्चित समयबद्ध तरीके से उत्पन्न होते हैं। लेकिन सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा की सापेक्षिक स्थिति में परिवर्तन के कारण एवं उसके कारण ज्वारोत्पदक बल में आने वाले अंतर के कारण ज्वार की प्रकृति लगातार परिवर्तनशील है। इसी प्रकार स्थानीय कारण भी ज्वार की उत्पत्ति को कई प्रकार से प्रभावित करते हैं। ये सभी कारक विश्व भर ज्वार की असमानता के रूप में परिलक्षित होते हैं जो उनके वर्गीकरण में भी दिखाई देती है।

ज्वार-भाटा महासागरीय जल की एक ऐसी गति है, जिसका प्रभाव समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र तथा मानव दोनों पर पड़ता है। ज्वार का मानव जीवन पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हो सकते हैं। सतत विकास और संरक्षण के लिए उनके प्रभावों को समझना और आवश्यकतानुसार उसमे समायोजन करना बेहद महत्वपूर्ण है।

## अभ्यास प्रश्न

1. ज्वार-भाटा के भिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
2. ज्वार-भाटा के विभिन्न प्रकारों की उत्पत्ति कारणों की व्याख्या कीजिये।
3. ज्वार-भाटा के प्रभावों का वर्णन कीजिये।
4. ज्वार-भाटा का मानवीय क्रियाकलापों पर प्रभावों का वर्णन कीजिये।

## सन्दर्भ सूची


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 14

# ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के सिद्धांत, ज्वार-भाटा से ऊर्जा उत्पादन

**इकाई की रूपरेखा**


14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 न्यूटन का संतुलन साध्य सिद्धांत

14.2.1 संतुलन साध्य सिद्धांत की आलोचना

14.3 विलियम ह्वेवेल का प्रगामी तरंग सिद्धान्त

14.3.1 प्रगामी तरंग सिद्धान्त आलोचना

14.4 आर. ए. हैरिस का अप्रगामी तरंग सिद्धान्त

14.5 ज्वारीय-ऊर्जा

14.6 ज्वारीय ऊर्जा की उत्पादन तकनीकी

14.7 ज्वारीय ऊर्जा की क्षमता तथा वास्तविक उत्पादन

14.8 ज्वारीय ऊर्जा के उत्पादन की चुनौतियाँ

14.9 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 14

# ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के सिद्धांत, ज्वार-भाटा से ऊर्जा उत्पादन

## 14.0 प्रस्तावना

ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theory of Ocean Tides) ज्वार-भाटा को उत्पन्न करने वाले बलों को निर्धारित करना वास्तव में खगोलीय समस्या (astronomical problem) है, जिसकी विवेचना ऊपर की जा चुकी है। ज्ञातव्य है कि इस समस्या का समाधान अत्यधिक जटिल गणितीय समीकरणों की सहायता से की जाती है और इस कार्य के लिये वैज्ञानिकों ने भौतिकी एवं द्रव्यगतिविज्ञान (hydrodynamics) के नियमों से सहायता ली है। किन्तु इन ज्वारोत्पादक बलों का महासागरों अथवा समुद्रों के जल पर पड़ने वाला प्रभाव निरीक्षण द्वारा निश्चित किया जाता है। महासागरों में उत्पन्न होने वाले ज्वारों की ऊँचाइयों में अन्तर, उनके प्रकार तथा उनमें पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की असमानतायें, खुले महासागरों में उनके प्रसार की गति आदि अनेक ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर ढूँढ पाने का वैज्ञानिकों द्वारा प्रयास निरन्तर जारी है। वस्तुतः ज्वारोत्पादक बलों की क्रियाविधि को निर्धारित करना ही महासागरीय ज्वारों की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों की प्रमुख समस्या है। न्यूटन द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से मार्ग निर्देशन प्राप्त करके अनेक गणितज्ञों, जैसे, बर्नोली (D. Bernoulli), लाप्लास (P.S. Laplace), एयरी (G.B. Airy), प्वाँकरे (H. Poincare) आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किये। गणितीय जटिलताओं को दूर करने की दृष्टि से महासागरों की वास्तविक रूपरेखा से अलग ऐसे आदर्श महासागरों की कल्पना की गई जिनके ज्यामितीय आकार (geometrical shapes) अत्यन्त साधारण थे। किन्तु ऐसे काल्पनिक महासागरों के विषय में किये गए प्रयोगों से प्राप्त परिणाम वास्तविक सागरों में उत्पन्न होने वाले ज्वार-भाटा की समस्याओं का समाधान कर पाने में विफल रहे। पिछले कुछ दशकों में ज्वार-भाटा विषयक जटिलताओं को सुलझाने के लिये भूभौतिकी के नियमों पर आधारित कई महत्वपूर्ण अभिनव प्रयास किये गए। इन वैज्ञानिकों में स्टर्नक (A. Von Sterneck). प्राउडमैन (J. Proudman), देफा (A. Defant), पोरेड (H. Thorade) तथा हन्सेन (W. Hansen) आदि के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

ज्वार भाटा की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों में सन्तुलन सिद्धान्त, गत्यात्मक सिद्धान्त, प्रगतिशील तरंग सिद्धान्त तथा स्थायी तरंग सिद्धान्त विशेष उल्लेखनीय है। इन सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। किन्तु स्मरण रहे कि कोई भी सिद्धान्त ज्वार भाटा की जटिलता को सुलझाने में पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो सका है।

## 14.1 उद्देश्य

इकाई 14 "ज्वार-भाटा की उत्पत्ति के सिद्धान्त तथा ज्वार-भाटा से ऊर्जा उत्पादन" के अध्ययन के उपरान्त आप:

1. न्यूटन का संतुलन साध्य सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
2. विलियम वेवेल का प्रगामी तरंग सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे।
3. हैरिस का अप्रगामी तरंग सिद्धान्त को समझा सकेंगे।
4. ज्वारीय-ऊर्जा पर निबंध लिख सकेंगे।

## 14.2 न्यूटन का संतुलन साध्य सिद्धांत (Equilibrium Theory)

सन1687 ई. में ज्वार-भाटा की उत्पत्ति की व्याख्या करने हेतु सर आइजक न्यूटन ने संतुलन साध्य को प्रतिपादित किया। इन्होंने पहली बार यह बतलाया कि प्रत्येक आकाशीय पिण्ड परस्पर आकर्षण प्रत्याकर्षण के द्वारा अपने स्थान पर टिका हुआ है। सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा भी इसी आकर्षण चल से अपनी-अपनी कक्षाओं में निरन्तर गतिशील हैं। न्यूटन ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जलमण्डल से घिरा हुआ मान कर उसमें सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण बलों से उत्पन्न होने वाले ज्वार की कल्पना की। सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा पृथ्वी के अधिक निकट स्थित होने के कारण उसका आकर्षण बल ज्वारोत्पत्ति में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैसा कि ज्वारोत्पादक बलों के सम्बन्ध में बताया जा चुका है, पृथ्वी और चन्द्रमा दोनों एक ही केन्द्र के चतुर्दिक् परिक्रमण करते हैं तथा उनमें केन्द्राभिमुखी तथा केन्द्रापसारी दो बलों की उत्पत्ति होती है। अब पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की दूरी नियत और स्थिर होने से यह स्पष्ट हो जाता है। कि पृथ्वी के केन्द्र पर चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति और उसका केन्द्रापसारी बल पृथ्वी के सभी भागों में समान होता है, जब कि इसके विपरीत, चन्द्रमा का आकर्षण बल पृथ्वी के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न होता है। अतः पृथ्वी का

जो भाग चन्द्रमा के ठीक सामने पड़ता है, वहाँ निकटता के कारण आकर्षण वल सर्वाधिक होता है, जब कि पृथ्वी के विपरीत भाग पर, जो चन्द्रमा से अधिकतम दूरी पर होता है, आकर्षण बल अपेक्षाकृत कम होता है। दूसरी ओर, पृथ्वी के उस भाग पर जो चन्द्रमा की ओर होता है, केन्द्रपसारी बल आकर्षण बल से कम होता है, अतः वहाँ आकर्षण बल की अधिकता से उत्पन्न होने वाले परिणामी वल (resultant force) के कारण जलमण्डल में उभार उत्पन्न हो जाता है। जिसे प्रत्यक्ष ज्वार कहते हैं। इसके विपरीत, पृथ्वी के उस भाग पर जो चन्द्रमा से विमुख होता है केन्द्रापसारी बल आकर्षण बल से अधिक होता है। अतः उपर्युक्त दोनों बलों के अन्तर से उत्पन्न परिणामी वल के द्वारा चन्द्रमा से विमुख पृथ्वी के जलीय आवरण में उभार उत्पन्न हो जाता है, जिसे अप्रत्यक्ष उच्च ज्वार की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस प्रकार एक ही समय पर पृथ्वी के जलीय आवरण में दो उच्च ज्वारों की उत्पत्ति होती है, जिनकी स्थिति में 180° देशान्तर का अन्तर पाया जाता है। इन दोनों उच्च ज्वारों की ओर जल का खिचाव होने के कारण इनके मध्य भाग में अर्थात् 90° देशान्तर की दूरी पर महासागरों अथवा समुद्रों का जल स्तर नीचा हो जाता है, जिसे निम्न ज्वार अथवा भाता कहा जाता है।

इस प्रकार इस आवर्तनशील पृथ्वी पर जलमण्डल के प्रत्येक विन्दु पर चौबीस घण्टे की अवधि में दो उम्र तथा दो निम्न चार उत्पन्न होते हैं। किन्तु वास्तव में इन ज्वारों का समयान्तर 12 घण्टे के बजाय 12 घण्टे 26 मिनट होता है। इसका कारण चन्द्रमा का परिक्रमण है, जिसकी विवेचना ज्वारोत्पादक बलों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में इससे पहले की जा चुकी है।

स्मरण रहे कि ज्वारोत्पादक बलों में ऊर्ध्वाधर (vertical) तथा क्षैतिज (horizontal) दो घटक होते हैं। वस्तुतः ज्यारोत्पादक बल का क्षजित घटक ही महासागरों में ज्वार उत्पन्न करने में सक्षम है। यहाँ इस भ्रान्ति का निवारण आवश्यक है कि चन्द्रमा अपनी आकर्षण शक्ति से समुद्रों के जल को ऊपर खींच कर उनमें ज्वार उत्पन्न करता है। ज्ञातव्य है कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल चन्द्रमा की अपेक्षा कई गुना अधिक है और इसलिये यह मान लेना भारी भूल होगी कि चन्द्रमा के आकर्षण बल से जल ऊपर उठ जाता है। अतः ऊपर वर्णित ज्वारोत्पादित बल के क्षैतिज घटक (horizontal component) द्वारा ही महासागरों के जलकणों का आकर्षित होना सम्भव है। इस बात की पुष्टि के लिये इतना ही पर्याप्त है कि

जब किसी देशान्तर के ठीक ऊपर चन्द्रमा स्थित होता है, तव वहाँ ज्वार उत्पन्न नहीं होता । वस्तुतः ज्वार का समय चन्द्रमा की उपर्युक्त स्थिति के कुछ पहले अथवा बाद का होता है।

### 14.2.1 संतुलन साध्य सिद्धांत की आलोचना

न्यूटन का सन्तुलन सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि सम्पूर्ण पृथ्वी जल से घिरी हुई है और ज्वारोत्पादक बलों के प्रभाव के फलस्वरूप समुद्रों की सतह सदैव सन्तुलन की स्थिति में रहता है। दूसरे शब्दों में, महासागरों अथवा समुद्रों की सतह तत्काल समतल पृष्ठ की आकृति धारण कर लेता है। किन्तु वास्तव में ऐसा सम्भव नहीं है। समस्थिति (equilibrium position) प्राप्त करने के लिये भारी मात्रा में महासागरीय जल राशियों का स्थानान्तरण आवश्यक है, जो ज्वारीय तरंगों की तीव्र गति को देखते हुए सम्भव नहीं है।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी स्थान पर ज्वार उत्पन्न होने का समय चन्द्रमा का उस स्थान के ठीक ऊपर होना माना जाना चाहिए। निरीक्षण के आधार पर ऐसा नहीं पाया जाता। वास्तव में किसी देशान्तर के ऊपर से चन्द्रमा के गुजरने के कुछ समय बाद वहाँ उच्च ज्वार उत्पन्न होता देखा जाता है। कहीं-कहीं ज्वार उत्पन्न होने तथा चन्द्रमा के उन स्थानों के ठीक ऊपर से गुजरने के बीच घण्टों का अन्तर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, दो समीपवर्ती स्थानों में ज्वार के समय में भी कई घण्टे का अन्तर होता है। इस प्रकार एक ही देशान्तर पर स्थित विभिन्न स्थानों पर ज्वार आने के समय में अन्तर संतुलन सिद्धान्त से मेल नहीं खाता।

विभिन्न स्थानों पर, जो एक ही देशान्तर पर स्थित हैं, ज्वार परिसर की विभिन्नता भी इस सिद्धान्त के विपरीत है। संतुलन की परिकल्पना सम्पूर्ण पृथ्वी को जल से आच्छादित मान कर की गई थी, जब कि पृथ्वी पर महाद्वीपों तथा महासागरों का वितरण असमान रूप से पाया जाता है। महाद्वीपों की उपस्थिति के फलस्वरूप ज्वारीय तरंगों की प्रगति में बाधा पड़ती है। वास्तव में विभिन्न महासागरों एवं समूद्रों की गहराई, उनके नितल की बनावट तथा तटों की रूपरेखा आदि में भारी अन्तर पाया जाता है, जिनके कारण ज्वारीय तरंगें बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित होती है। प्रस्तुत साध्य की उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद इसके ऐतिहासिक महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः ज्वारोत्पत्ति विषयक अन्य साध्यों के लिये न्यूटन के संतुलन साध्य को आधारशिला माना जाता है।

## 14.3 विलियम ह्वेवेल का प्रगामी तरंग सिद्धान्त (Progressive Wave Theory)

ज्वार-भाटा की अनेक जटिलताओं एवं विसंगतियों के समाधान हेतु सन् 1833 में विलियम डेवेल ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसे 'प्रगामी तरंग सिद्धान्त' कहा गया । इस सिद्धान्त के अनुसार ज्वारोत्पादक बलों के कारण दक्षिणी महासागर में, जहाँ स्थल खण्डों का पूर्ण रूप से अभाव हैं, दो विशाल ज्वारीय तरंगों की उत्पत्ति होती है । इनमें से एक तरंग पृथ्वी के आवर्तन के कारण चन्द्रमा के साथ-साथ, किन्तु उससे थोड़ा पीछे, पूरब से पश्चिम की ओर अग्रसर होती है । दूसरी तरंग पृथ्वी के ठीक दूसरी ओर उत्पन्न होकर पूरब से पश्चिम की ओर आगे बढ़ती है । इन्हें प्राथमिक तरंगें (Primary waves) कहते हैं । पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर पूरा करने में इन तरंगों को 24 घण्टे 52 मिनट, तथा आधा चक्कर पूरा करने में 12 घण्टे 26 मिनट का समय लगता है । इन तरंगों के शिखरों (crests) को उच्च ज्वार तथा इनकी द्रोणियों (troughs) को निम्न ज्वार कहते हैं ।

इनके शिखरों के मध्य की दूरी को ही इन तरंगों की लम्बाई कहते हैं । किसी विशेष अक्षांश में इन तरंगों की लम्बाई उस अक्षांश पर पृथ्वी की परिधि की आधी होती है । ध्यान रहे कि ज्वारीय तरंगें अन्य महासागरीय तरंगों की तरह अपनी स्वतंत्र गति से आगे बढ़ती हैं । इन पर सूर्य और चन्द्रमा का प्रभाव नहीं पड़ता । महासागरों की गहराइयों की तुलना में इन तरंगों की लम्बाई बहुत अधिक होने के कारण इनकी गति गहराई से नियंत्रित होती है । तरंग का वेग (velocity) गुरुत्वबल तथा गहराई के गुणनफल के वर्गमूल के बराबर होता है ।

इसका सूत्र इस प्रकार है:

$c = Vgd$

जब $c$ = वेग $g$ = गुरुत्व बल तथा $d$ = गहराई ।

भूमध्य रेखा के निकट इन तरंगों का वेग सूर्य तथा चन्द्रमा के तथाकथित वेग से कम होता है । इस सन्दर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि ज्वारीय तरंगों के स्वाभाविक वेग तथा सूर्य एवं चन्द्रमा के आकर्षण बल से उत्पन्न होने वाले इन तरंगों के वेग का अन्तर अनेक जटिलतायें उत्पन्न करता है । दक्षिणी महासागर में उत्पन्न ज्वारीय तरंगें जब पूरब से पश्चिम की ओर आगे बढ़ती हैं, तब इनके मार्ग में पड़ने

वाले महाद्वीपों तथा अन्य स्थल खण्डों से बाधा पड़ जाती है। अतः इन प्राथमिक तरंगों से उत्पन्न गौण तरंगें (secondary waves) अटलांटिक, हिन्द तथा प्रशान्त महासागरों में उत्तर की ओर चल पड़ती है। उत्तर की ओर आगे बढ़ने पर इन गौण तरंगों से निकली हुई शाखा-तरंगें महासागरों के पार्श्ववर्ती सागरों (marginal seas) तथा खाड़ियों में ज्वार उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार तरंगों के विस्थापन तथा उनकी निरन्तर प्रगति की दृष्टि से अटलांटिक, प्रशान्त एवं हिन्द महासागरों को दक्षिणी महासागर (Southern Ocean) की खाड़ियों के सदृश मान लेना चाहिए। ये गौण तरंगें जब विभिन्न महासागरों में दक्षिण से उत्तर की ओर अग्रसर होती हैं, तब क्रमशः इनकी शक्ति क्षीण होती जाती है। वैज्ञानिकों के मतानुसार ज्वारीय तरंगों की उत्पत्ति के लिये आवश्यक संवेग दक्षिणी महासागर में उत्पन्न प्राथमिक तरंगों से प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सभी तरंगें मूलतः दक्षिणी महासागर में निरंतर उत्तर की और गतिशील होती हैं। उत्तर की ओर गतिशील तरंगों के शिखरों से उच्च ज्वारों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न स्थानों पर एक ही समय पर उत्पन्न होने वाले ज्वारों को प्रदर्शित करने वाली रेखाओं को सज्वारीय रेखायें (co-tidal lines) कहते हैं। जब किसी तट के निकट इन तरंगों का शिखर स्थित होता है, तब यहाँ उच्च ज्वार की उत्पत्ति होती है तथा जब द्रोणी तट के पास पहुँचती है, तब उसे भाटा की संज्ञा प्रदान की जाती है।

### 14.3.1 प्रगामी तरंग सिद्धान्त आलोचना

प्रगामी तरंग सिद्धान्त के अनुसार ज्वारीय तरंग दक्षिणी महासागर में पृथ्वी के चारों ओर पूरब से पश्चिम की ओर गतिशील होती है। इसी प्राथमिक तरंग की विभिन्न शाखायें प्रशान्त महासागर, हिन्द महासागर तथा अटलान्टिक महासागर में उत्तर की ओर अग्रसर होती हैं। अतः स्वाभाविक है कि उत्तर की ओर दूरी बढ़ने के साथ ही इनके पहुँचने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगे। एक ही देशान्तर पर दक्षिण में स्थित स्थान की अपेक्षा उत्तर में स्थित स्थान पर ज्वार देर में उत्पन्न होना चाहिए। किन्तु निरीक्षण के द्वारा देखा जाता है कि पश्चिमी अटलान्टिक महासागर में हार्न अन्तरीप (Cape Horn) तथा फेयरवेल अन्तरीप (ग्रीन लैंड) दोनों के ज्वारों का समय लगभग समान है। अतः इस सिद्धान्त की प्रामाणिकता सन्देह से परे नहीं कही जा सकती।

इसके अतिरिक्त, सर्वत्र एक ही प्रकार का ज्वार नहीं पाया जाता। उदाहरणार्थ, अटलान्टिक महासागर में उत्पन्न अर्द्ध-दैनिक ज्वारों में दैनिक असमानता बहुत कम पाई जाती है, जब कि केलीफोर्नियां के तट के समीप उत्पन्न ज्वारों में दैनिक असमानता की मात्रा बहुत अधिक होती है। ताहिती (Tahiti) के निकट प्रायः प्रतिदिन उच्च ज्वार दोपहर और मध्य रात्रि के आसपास उत्पन्न होता है। इन तथ्यों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि दक्षिणी महासागर की भाँति अन्य महासागरों में भी ज्वारों की उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से होती है। अतः यह मान लेना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता कि अलग-अलग महासागरों में प्राथमिक तरंग से उत्पन्न शाखाओं द्वारा ज्वार-भाटा की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार प्रगामी तरंग सिद्धान्त से उपर्युक्त विसंगतियों का निराकरण नहीं होता।

### 14.4 आर. ए. हैरिस का अप्रगामी तरंग सिद्धान्त (Stationary Wave Theory):

अप्रगामी तरंग सिद्धान्त का प्रतिपादन आर. ए. हैरिस नामक अमेरिकी वैज्ञानिक ने उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में किया। इसका मूल उद्देश्य ज्वार भाटा में निरीक्षण के आधार पर पाई जाने वाली जटिलताओं एवं विसंगतियों का समाधान करना था। ह्वेबेल द्वारा प्रतिपादित प्रगामी तरंग सिद्धान्त मुख्यतः सैद्धान्तिक था, जो ज्वार-भाटा की वास्तविकता से दूर था। कारण कि प्रगामी तरंग की कल्पना एक असीमित लम्बाई की जलराशि के सन्दर्भ में की गई थी। निश्चित सीमाओं से आबद्ध महासागरों में प्रगामी तरंग की उत्पत्ति असम्भव है। अतः हैरिस ने एक दूसरे प्रकार की तरंग की कल्पना की जिससे ज्वारीय विश्लेषण में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती थी। इस तरंग को अप्रगामी अथवा स्थिर तरंग नाम दिया गया, जिसकी उत्पत्ति सीमित लम्बाई वाले महासागरों में सम्भव है। अतः इस वैज्ञानिक ने ज्वार को विश्वव्यापी घटना मानने से इन्कार कर दिया और उसे स्थानीय घटना (local phenomenon) के रूप में स्वीकार किया। हैरिस ने महासागरों को दोलन-क्षेत्रों (oscillation areas) में विभाजित किया। यदि ये क्षेत्र ठोस सीमाओं से घिरे हुये हों, तो उनमें मुक्त दोलन की अवधि (period of free oscillation) लगभग 12 अथवा 24 घण्टे होगी। ऐसे क्षेत्रों का चयन किया गया जिनके दोनों छोर पर उत्पन्न होने वाले उच्च ज्वारों के समय का अन्तर लगभग 6 अथवा 12 घण्टे हो। प्रत्येक ऐसे क्षेत्र में एक या एक से अधिक निस्पन्द रेखाओं (nodal lines) की कल्पना की गई। इन्हीं रेखाओं के सहारे जल आन्दोलित होता है। हैरिस ने अपने सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिये एक प्रयोग किया। उन्होंने दिखाया कि यदि

जल से आंशिक रूप से भरे हुए एक छिछले आयताकार बेसिन को धक्का दिया जाए अथवा उसके एक सिरे को थोड़ा ऊपर उठा दिया जाए, तब हम देखेंगे कि उस पात्र में भरे हुए जल में दोलन क्रिया प्रारम्भ हो जायेगी जिसके फलस्वरूप पात्र के एक सिरे की ओर जल की सतह ऊपर उठ आएगी और दूसरे सिरे का जल स्तर नीचा हो जाएगा। किन्तु पात्र के केन्द्र भाग में जल के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होगा। वस्तुतः पात्र में भरे हुए जल का विस्थापन एक सीधी रेखा के सहारे होता है। पात्र के किनारों पर जल की ऊँचाई और उसका निचलापन सर्वाधिक होता है। यह एकपातीय दोलन प्रणाली (unimodal system) कही जाती है। इसके विपरीत, द्विपातीय दोलन प्रणाली (bimodal system) में दो सीधी रेखाओं के सहारे जल में दोलन होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत जल की सर्वाधिक ऊँचाई पात्र के मध्य भाग में तथा दोनों सिरों पर जल-स्तर सबसे नीचा होता है। इस प्रकार विभिन्न आकार वाले पात्रों में स्थिर तरंगों को एकपातीय अथवा द्विपातीय दोलन प्रणाली के अन्तर्गत उत्पन्न किया जा सकता है। स्मरण रहे कि इन तरंगों की दिशा और इनकी गतिशीलता पात्र में लगाये जाने वाले धक्के की प्रकृति पर निर्भर करता है। तरंग का दोलन उस पात्र की लम्बाई, गहराई तथा लगाये गए बल पर निर्भर होता है। पात्र में उत्पन्न स्थिर तरंगों का अस्तित्व उसमें लगाये गए बल के समाप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि किसी समुद्र में लगने वाले आवेग (impulse) की निरन्तरता बनी रहे, तब उसमें नियमित रूप से स्थिर तरंगें उत्पन्न होती रहेंगी। उपर्युक्त उदाहरण से सहज ही समझा जा सकता है कि भूतल पर स्थित विभिन्न महासागरों में सूर्य और चन्द्रमा के ज्वारोत्पादक बलों के लगते रहने से दोलन क्रिया होती रहती है। जैसा कि हम जानते हैं, पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा का आकर्षण बल निरन्तर लगता रहता है, जिसके फलस्वरूप समुद्रों में दोलन क्रिया चलती रहती है। दोलन क्रिया से उत्पन्न तरंगों पर समुद्रों के नितल की बनावट, उनकी गहराई तथा पृथ्वी के दैनिक आवर्तन का निश्चित प्रभाव पड़ता है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि महासागरों में उत्पन्न दोलन की अवधि और सूर्य एवं चन्द्रमा की परिवर्तनशील स्थितियों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार अप्रगामी तरंगों का सर्वाधिक विकास तभी होता है, जब ज्वारोत्पादक बल का परिमाण अधिकतम होता है।

अब देखना है कि पृथ्वी के दैनिक आवर्तन का इन स्थिर तरंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? पृथ्वी के घूर्णन के प्रभाव से ये स्थिर तरंगें एक सीधी रेखा में चलने के बजाय एक विन्दु के चारों ओर वृत्ताकार गति से चलने लगती हैं, जिसे उभयगामी अथवा भवंर बिन्दु (amphidromic point) कहते हैं। किसी समुद्र के

नितल की बनावट के अनुसार उसमें अनेक भँवर बिन्दुओं का निर्माण हो सकता है जिसके चतुर्दिक सागरीय जल की दोलन क्रिया सम्पादित होती है जिससे चारो ओर तरंगे उत्पन्न होती हैं। हैरिस के मतानुसार इन भँवर बिन्दुओं की संख्या एवं उनकी स्थिति सम्बद्ध महासागर अथवा सागर के विस्तार पर निर्भर करती है।

घर्षण बल के कारण ज्वारों की ऊँचाई प्रभावित होती है। घर्षण बल का सम्बन्ध सागर की गहराई से होता है। उथले समुद्रों की अपेक्षा गहरे समुद्रों में तरंगों का आयाम (amplitude) अधिक होता है। इसी कारण से उथली खाड़ियों में घर्षण अधिक होने से स्थिर तरंगों की ऊँचाई खुले समुद्रों की अपेक्षा कम होती है। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक महासागर अथवा समुद्र में निस्पन्द बिन्दु (nodal point ) पर तरंगों के आयाम और उनकी गति शून्य होती है। इन तरंगों के शिखर और द्रोणी क्रमशः ज्वार और भाटे का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोलन से उत्पन्न तरंगों की दिशा और उनके वेग के अनुसार ज्वार का समय एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर आगे बढ़ता जाता है। हैरिस के अप्रगामी तरंग सिद्धान्त से विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार के ज्वार उत्पन्न होने की समस्या का बहुत कुछ अंशों में समाधान हो जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रस्तुत सिद्धान्त के अनुसार ज्वार-भाटा विश्व स्तर की घटना नहीं मानी जानी चाहिये। महासागरों के कुछ ऐसे भाग हैं जिनके आकार- विस्तार के अनुकूल होने के कारण वहाँ सूर्य और चन्द्रमा के ज्वारोत्पादक बल स्थिर तरंगों को उत्पन्न कर देते हैं, जिनके कारण विभिन्न महासागरों में ज्वार भाटा की उत्पत्ति होती है।

### 14.5 ज्वारीय-ऊर्जा

ज्वारीय-ऊर्जा एक गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत है। गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत ऊर्जा के ऐसे रूप हैं जो नवीकरणीय और टिकाऊ होते हैं, और जो जीवाश्म ईंधन या अन्य परिमित संसाधनों पर निर्भर नहीं होते हैं। गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के अन्य उदाहरण सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जलीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा तथा महासागरीय ऊर्जा ये गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं क्योंकि हम जीवाश्म ईंधन पर अपनी निर्भरता को कम करना चाहते हैं और जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करना चाहते हैं। वे पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के लिए एक स्थायी और नवीकरणीय विकल्प प्रदान करते हैं, और कार्बन उत्सर्जन को कम करने और पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देने में मदद कर सकते हैं।

ज्वारीय ऊर्जा एक प्रकार की नवीकरणीय ऊर्जा है जो समुद्री ज्वार की शक्ति का उपयोग करके उत्पन्न की जाती है। ज्वार चंद्रमा और सूर्य के गुरुत्वाकर्षण खिंचाव के कारण होते हैं, और वे ऊर्जा का एक पूर्वानुमानित और विश्वसनीय स्रोत उत्पन्न करते हैं जिसे ज्वारीय टर्बाइनों का उपयोग करके दोहन किया जा सकता है। ज्वारीय टर्बाइन पवन टर्बाइनों के समान काम करते हैं, लेकिन उन्हें पानी के नीचे संचालित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। वे आम तौर पर मजबूत ज्वारीय धाराओं वाले क्षेत्रों में स्थापित होते हैं, जैसे संकीर्ण जलडमरूमध्य या चैनल, और वे रोटर से जुड़े ब्लेड को मोड़ने के लिए पानी के बल का उपयोग करते हैं। इस घूर्णन गति का उपयोग करके ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है।

## 14.6 ज्वारीय ऊर्जा की उत्पादन तकनीकी

ज्वारीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियां दो मुख्य प्रकार की हैं: ज्वारीय रेंज प्रौद्योगिकियां, जो बिजली उत्पन्न करने के लिए उच्च और निम्न ज्वार के बीच ऊंचाई के अंतर पर निर्भर करती हैं; और ज्वारीय धारा प्रौद्योगिकियां, जो चलते पानी की गतिज ऊर्जा का दोहन करती हैं।

ज्वारीय ऊर्जा का उत्पादन ज्वारीय धाराओं की गतिज ऊर्जा और उच्च और निम्न ज्वार के बीच ऊंचाई में अंतर की संभावित ऊर्जा का उपयोग करके किया जाता है। ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन के तंत्र में ज्वारीय टर्बाइनों का उपयोग शामिल है, जो पवन टर्बाइनों के समान हैं लेकिन पानी के नीचे संचालित करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।

ज्वारीय टर्बाइन आमतौर पर मजबूत ज्वारीय धाराओं वाले क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं, जैसे संकीर्ण चैनल या जलडमरूमध्य, जहां ज्वारीय तरंगों के दौरान पानी एक संकरे क्षेत्र में प्रवेश करता है, जिससे उसकी गति में वृद्धि हो जाती हैं। टर्बाइन ब्लेड को इस प्रकार डिज़ाइन किया गया है जिससे वह ज्वारीय धाराओं की गति के प्रभाव में घूमने लगते हैं। टर्बाइन ब्लेड के घूमने से एक जनरेटर चलता है, जो ज्वारीय धाराओं की गतिज ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करता है। टर्बाइन द्वारा उत्पन्न बिजली को ग्रिड में डाला जा सकता है और इसका उपयोग घरों और व्यवसायों को बिजली देने के लिए किया जा सकता है।

ज्वारीय टर्बाइनों के अलावा, ज्वारीय ऊर्जा का उपयोग करने के लिए उपयोग की जाने वाली अन्य तकनीकों में ज्वारीय बैराज और ज्वारीय लैगून शामिल हैं। टाइडल बैराज टर्बाइनों को चलाने के लिए

उच्च और निम्न ज्वार के बीच ऊंचाई में अंतर की संभावित ऊर्जा का उपयोग करके काम करते हैं। जबकि ज्वारीय लैगून के खुले वातावरण में ज्वार टर्बाइनों समान तंत्र का ही उपयोग करते हैं।

टाइडल बैराज और टाइडल टर्बाइन दोनों में महत्वपूर्ण मात्रा में अक्षय ऊर्जा का उत्पादन करने की क्षमता है, लेकिन वे उच्च निर्माण लागत और पर्यावरणीय प्रभावों जैसी चुनौतियों का सामना करते हैं। हालाँकि अनुसंधान के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान करने और एक स्थायी ऊर्जा स्रोत के रूप में ज्वारीय ऊर्जा को अधिक व्यवहार्य बनाने पर केंद्रित किया जा रहा है।

**14.7 ज्वारीय ऊर्जा की क्षमता तथा वास्तविक उत्पादन**

ज्वारीय ऊर्जा एक प्रकार की नवीकरणीय ऊर्जा है जो ज्वार की गति से उत्पन्न होती है। इसमें स्वच्छ और टिकाऊ ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत होने की क्षमता है, विशेष रूप से तटीय क्षेत्रों में जो बड़े ज्वारीय क्षेत्रों का अनुभव करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (IEA) के अनुसार, ज्वारीय ऊर्जा की वैश्विक क्षमता प्रति वर्ष 750 और 800 टेरावाट प्रति घंटे (TWh) के बीच होने का अनुमान है। यह दुनिया की बिजली की मांग के लगभग 3% के बराबर है। यूनाइटेड किंगडम, कनाडा और फ्रांस जैसे कुछ देशों ने पहले ही बड़े पैमाने पर ज्वारीय ऊर्जा संयंत्रों के माध्यम से ज्वारीय ऊर्जा का उपयोग करना शुरू कर दिया है।

ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन का एक उदाहरण स्कॉटलैंड के पेंटलैंड फर्थ में स्थित मेजेन परियोजना है। यह परियोजना 398 मेगावाट की क्षमता वाला विश्व का सबसे बड़ा ज्वारीय ऊर्जा संयंत्र है। मेजेन परियोजना ज्वार टर्बाइनों का उपयोग करती है, जो पवन टर्बाइनों के समान हैं, लेकिन ज्वार की गतिज ऊर्जा को पकड़ने के लिए पानी के नीचे रखा जाता है। ये टरबाइन सीबेड से जुड़े हुए हैं और पेंटलैंड फर्थ जैसे मजबूत ज्वारीय धाराओं वाले क्षेत्रों में स्थित हैं। ज्वार भाटा और प्रवाह के रूप में, टर्बाइन घूमते हैं और बिजली उत्पन्न करते हैं, जो बाद में उप-केबलों के माध्यम से तटवर्ती ग्रिड को प्रेषित की जाती है। मेजेन परियोजना से 175,000 घरों को बिजली देने के लिए पर्याप्त बिजली पैदा करने की उम्मीद है, और इसमें भविष्य में और भी अधिक बिजली पैदा करने और विस्तार करने की क्षमता है।

भारत के पास विशाल समुद्री तटरेखा है, जो ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण क्षमता प्रदान करती है। देश में उच्च ज्वारीय श्रेणियों वाले कई क्षेत्र भी हैं, जिनमें गुजरात में कच्छ की खाड़ी और कैम्बे की खाड़ी, पश्चिम बंगाल में सुंदरबन और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह शामिल हैं। अनुमान

के अनुसार, भारत में संभावित ज्वारीय ऊर्जा क्षमता लगभग 12,455 मेगावाट है। हालाँकि, अब तक, देश ने अभी तक महत्वपूर्ण मात्रा में ज्वारीय ऊर्जा का दोहन नहीं किया है। भारत सरकार ने ज्वारीय ऊर्जा की क्षमता को पहचाना है और इसके विकास को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाए हैं। नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (एमएनआरई) ने ज्वारीय ऊर्जा विकास के लिए संभावित स्थलों की पहचान की है, और राष्ट्रीय महासागर प्रौद्योगिकी संस्थान (एनआईओटी) ने अध्ययन किया है और ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी विकसित की है।

कच्छ की खाड़ी में 7,500 मेगावाट ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन की क्षमता के साथ दुनिया की सबसे ऊंची ज्वारीय श्रृंखला है। भारत में ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन का एक उदाहरण कच्छ ज्वारीय ऊर्जा परियोजना की प्रस्तावित खाड़ी है, जिसे गुजरात पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड (GPCL) द्वारा विकसित किया जा रहा है। यह परियोजना गुजरात के तट से दूर कच्छ की खाड़ी में स्थित है और इसकी क्षमता 50 मेगावाट होने की उम्मीद है। GPCL समुद्र तल पर टाइडल टर्बाइन स्थापित करने की योजना बना रही है, जो पानी के नीचे केबल के माध्यम से एक तटवर्ती सबस्टेशन से जुड़ा होगा। इस परियोजना से स्वच्छ और विश्वसनीय बिजली उत्पन्न होने की उम्मीद है, और यह जीवाश्म ईंधन पर भारत की निर्भरता को कम करने में भी मदद कर सकती है। कुल मिलाकर, जबकि ज्वारीय ऊर्जा में एक महत्वपूर्ण योगदान देने की क्षमता है, इसका विकास तकनीकी प्रगति, लागत प्रतिस्पर्धात्मकता और नियामक ढांचे जैसे विभिन्न कारकों पर निर्भर करेगा।

## 14.8 ज्वारीय ऊर्जा के उत्पादन की चुनौतियाँ

1. **उच्च प्रारंभिक लागत:** उनके निर्माण के लिए आवश्यक विशेष उपकरण और इंजीनियरिंग के कारण ज्वारीय बिजली संयंत्रों के निर्माण की लागत अधिक है।
2. **सीमित उपलब्धता:** ज्वारीय ऊर्जा केवल उन्हीं क्षेत्रों में उत्पन्न की जा सकती है जहां उच्च और निम्न ज्वार के बीच जल स्तर में महत्वपूर्ण अंतर होता है। यह ज्वारीय विद्युत संयंत्रों के लिए उपयुक्त स्थानों की संख्या को सीमित करता है।

3. **पर्यावरणीय प्रभाव:** ज्वारीय ऊर्जा प्रणालियाँ जल प्रवाह को बदलकर और मछली और अन्य समुद्री जानवरों के प्रवासन पैटर्न को प्रभावित करके समुद्री पारिस्थितिक तंत्र को बाधित कर सकती हैं।
4. **रखरखाव:** ज्वारीय बिजली संयंत्रों को कठोर समुद्री वातावरण के संपर्क में लाया जाता है और उपकरणों को क्षरण और क्षति को रोकने के लिए नियमित रखरखाव की आवश्यकता होती है।
5. आंतरायिक बिजली उत्पादन: ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन ज्वार सक्रिय होने पर निर्भर है, जो कहीं पर भी लगातार सक्रिय नहीं रहते। इसका मतलब है कि ज्वारीय बिजली संयंत्र हमेशा जरूरत पड़ने पर बिजली पैदा नहीं कर सकते हैं, और बैकअप बिजली स्रोतों की आवश्यकता होती है।
6. **विनियामक और अनुमति सम्बन्धी चुनौतियाँ:** ज्वारीय ऊर्जा परियोजनाओं को नियामक निकायों की एक शृंखला से अनुमोदन की आवश्यकता होती है, जो ज्वारीय ऊर्जा के उत्पादन समय और लागत को बढ़ा देती है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरणीय प्रभावों सम्बन्धी चिंताओं के चलते स्थानीय समुदाय और पर्यावरण समूह ज्वारीय ऊर्जा परियोजनाओं के विकास का विरोध कर सकते हैं।

## 14.9 सारांश

ज्वार-भाटा की उत्पत्ति में अनेक जटिलतायें हैं जिनको विभिन्न सिद्धांत अपने अपने ढंग से सुलझाने का प्रयास करते हैं। इन सिद्धांतों में तीन प्रमुख सिद्धांत, न्यूटन का संतुलन साध्य सिद्धांत, विलियम डेवेल का प्रगामी तरंग सिद्धान्त, आर. ए. हैरिस का अप्रगामी तरंग सिद्धान्त है। हालाँकि स्थानीय कारकों के प्रभाव ज्वार-भाटा के किसी भी सरलीकृत सिद्धांत की परिधि से बाहर चले जाते हैं।

ज्वारीय ऊर्जा एक दीर्घकालीन ऊर्जा विकल्प है जिसकी संभाव्य क्षमता अधिक और वास्तविक उत्पादन सीमित है। लेकिन विश्व की बढती ऊर्जा माँग और सिकुड़ते ऊर्जा संसाधनों के चलते ज्वारीय ऊर्जा भविष्य में एक विकल्प के रूप में उभर सकती है। हालाँकि इसके लिए भी इसे अधिक परिचालन लगत एवं पर्यावरण सम्बन्धी चिंताओं का समाधान करना होगा।

**अभ्यास प्रश्न**

1. न्यूटन का संतुलन साध्य सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

2. विलियम ह्वेवेल का प्रगामी तरंग सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

3. हैरिस का अप्रगामी तरंग सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

4. ज्वारीय-ऊर्जा पर निबंध लिखिए।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई 15

# प्रवाल भित्तियां: प्रवाल भित्तियों के निर्माण के लिए निर्माण की आवश्यक दशाएं, प्रवाल के प्रकार, प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांत, प्रवाल विरंजन

## इकाई की रूपरेखा


| | | | |
|---|---|---|---|
| 15.0 | | | प्रस्तावना |
| 15.1 | | | उद्देश्य |
| 15.2 | | | प्रवाल भित्तियों के घटक |
| | 15.2.1 | | प्रवाल जन्तु |
| | 15.2.2 | | कोरलाइट |
| | 15.2.3 | | प्रवाल भित्ति |
| 15.3 | | | प्रवाल भित्तियों के विकास की दशायें |
| | 15.3.1 | | सागरीय जल का तापमान |
| | 15.3.2 | | सागरीय जल की गहराई |
| | 15.3.3 | | सागरीय जल का गंदलापन |
| | 15.3.4 | | सागरीय जल की लवणता |
| | 15.3.5 | | ताजे जल की आपूर्ति |
| | 15.3.6 | | महासागरीय धारायें तथा तरंगें |
| | 15.3.7 | | अन्तःसागरीय चबूतरे |
| 15.4 | | | प्रवाल भित्तियों के प्रकार |
| | 15.4.1 | | तटीय प्रवाल भित्ति |
| | 15.4.2 | | अवरोधक प्रवाल भित्ति |
| | 15.4.3 | | प्रवाल द्वीप वलय या एटॉल |
| 15.5 | | | प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांत |
| | 15.5.1 | | डार्विन का भू-अवतलन सिद्धान्त |
| | | 15.5.1.1 | डार्विन के सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण |
| | | 15.5.1.2 | डार्विन के सिद्धांत की आलोचना |

15.5.2 सर जॉन मरे का स्थिर स्थल सिद्धान्त

15.5.2.1 मरे के सिद्धांत के पक्ष में प्रमाण

15.5.2.2 मरे के सिद्धांत की आलोचना

15.5.3 डेली का हिमानी नियंत्रण सिद्धान्त

15.5.3.1 डेली के सिद्धांत की आलोचना

15.5.4 डेविस की संकल्पना

15.6 प्रवाल विरंजन

15.7 विरंजन के स्तर

15.8 प्रवाल विरंजन के कारण

15.8.1 भूमण्डलीय ऊष्मन

15.8.2 एल निनो दक्षिणी दोलन

15.8.3 रोगों का फैलना

15.8.4 स्थानीय कारक

15.8.5 प्रवाल पुनर्जीवन

15.9 सारांश

अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई 15

# प्रवाल भित्तियां: प्रवाल भित्तियों के निर्माण के लिए निर्माण की आवश्यक दशाएं, प्रवाल के प्रकार, प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांत, प्रवाल विरंजन

## 15.0 प्रस्तावना

प्रवाल भित्तियाँ तथा एटॉल उष्ण कटिबंध की महत्वपूर्ण अन्तः सागरीय विशेषता हैं जिनका निर्माण सागरीय जीव मूंगे तथा प्रवाल कीटों के अस्थिपंजरों के समेकन तथा संयोजन द्वारा होता है। कोरल उष्ण कटिबन्धीय महासागरों में 25° उ0 से 25° द० अक्षांशों के मध्य पाये जाते हैं। कोरल चूने की संरचना पर निर्वाह करते हैं जहाँ एक स्थान पर असंख्य मूंगे एक साथ समूह में रहते हैं तथा अपने चारों ओर चूने की खोल बनाते हैं। मूंगा मर जाता है तो उसकी खोल के ऊपर दूसरा मूंगा अपनी खोल बनाने लग जाता है। इस क्रिया के कारण एक लम्बे समय में मूंगे की चट्टानों की एक विस्तृत दीवाल या भित्ति बन जाती है, जिसे प्रवाल भित्ति (coral reef) कहते हैं। प्रवाल भित्ति का निर्माण किसी द्वीप या तट के सहारे या यथोचित गहराई पर स्थित अन्तः सागरीय चबूतरों पर होता है। प्रवाल (मूंगा) जल के बाहर जीवित नहीं रह सकता है, अतः प्रवाल भित्ति सदैव या तो सागर तल के नीचे या सागर तल तक ही पायी जाती है। प्रवाल की एक मिलियन (दस लाख) से अधिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इस रूप में देखा जाये तो प्रवाल में उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वर्षा वनों की से भी अधिक वैविध्य विद्यमान है जिसके कारण बहुधा इनको 'समुद्रों के वर्षा वन' की संज्ञा भी दी जाती है।

हिन्द महासागर एवं प्रशांत महासागर की अवस्थिति के कारण इनमें बहुतायत में प्रवाल भित्तियां पाई जाती हैं। अटलांटिक महासागर में भी पश्चिमी द्वीप समूहों के निकटवर्ती सागरीय क्षेत्रों में भी प्रवाल भित्तियों का विकास हुआ है। उष्ण कटिबन्धीय छिछले सागरीय क्षेत्रों से इतर गहरे या ठंडे सागरीय क्षेत्रों में प्रवाल भित्तियों का विकास संभव नहीं होता है।

## 15.1 उद्देश्य

इकाई 15 "प्रवाल भित्तियों के निर्माण के लिए निर्माण की आवश्यक दशाएं, प्रवाल के प्रकार, प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांत, प्रवाल-विरंजन" के अध्ययन के उपरान्त आप:

1. प्रवाल भित्तियों के निर्माण के लिए निर्माण की आवश्यक दशाएं को समझा सकेंगे।
2. प्रवाल भित्तियों के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे।
4. प्रवाल-विरंजन की घटना के महत्व को रेखांकित कर लिख सकेंगे।

## 15.2 प्रवाल भित्तियों के घटक

वास्तव में प्रवाल भित्तियां जैव निर्मित होती हैं जिनके संघटन में कैलसियम कार्बोनेट (CaCO3) की मात्रा अधिक होती है। इस कैलसियम कार्बोनेट की 50 प्रतिशत से अधिक मात्रा जुक्सान्थलाई नामक शैवाल (algae) से प्राप्त होती है। प्रवाल भित्ति के संघटक तीन प्रमुख संघटक होते हैं: प्रथम, जीवित जीव, जिसे कोरल पालिप अथवा प्रवाल या मूंगा कहते हैं। द्वितीय, कोरलाइट अर्थात प्रवालों का बाहरी ढांचा या खोल तथा  भित्ति (reef), कैलसियम कार्बोनेट की संघटित कठोर संरचना।  इनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है:

### 15.2.1 प्रवाल जन्तु

जन्तु प्रवाल, जिसे पालिप कहते हैं, अपने द्वारा बनायी गयी चूने की खोल में रहता है। इसके शरीर के बाहरी तन्तुओं में एक प्रकार की पादप शैवाल रहती है जिसे जुक्सान्थलाई शैवाल कहते हैं। यह शैवाल प्रकाश संश्लेषण विधि से भोजन बनाती है जिससे अपना विकास करती है तथा सम्बन्धित प्रवाल, जिसके शरीर में वह वासित है, की सकल भोजन मांग के 60 प्रतिशत भाग की आपूर्ति करती है। प्रवाल शेष 40 प्रतिशत आहार की अपने मुंह के टेण्टिकिल्स द्वारा छोटे-छोटे जन्तुप्लैंकटन का शिकार करके आपूर्ति करते हैं। अगर सागरीय तापमान में वृद्धि हो जाती है। तो प्रवाल इन शैवालों को अपने शरीर से निष्कासित कर देते हैं, परिणामस्वरूप प्रवालों को आहार नहीं मिल पाता है तथा वे मर जाते हैं। शैवाल के निकल जाने के कारण प्रवाल श्वेत रंग के हो जाते हैं। इसे प्रवाल विरंजन (coral bleaching) कहते हैं।

### 15.2.2 कोरलाइट

प्रवाल जन्तु की बाहरी खोल को कोरलाइट या प्रवाल का घर कहते हैं। वास्तव में प्रवाल जन्तु अपने लिए कैलसियम कार्बोनेट की कड़ी खोल वाला घरौंदा बनाते हैं जिसके अन्दर वे शिकारियों (predators) से सुरक्षित रहते हैं। इस तरह कोरलाइट जीवित प्रवाल जन्तुओं के शरीर होते हैं। इन कोरलाइट को एक्सोस्केलेटन कहते हैं जिसकी रचना सघन तथा दृढ़ कैलसियम कार्बोनेट द्वारा होती है। कोरलाइट के निचले भाग में कई लम्बवत प्रखण्ड (compartments) होते हैं जिन्हें सेप्टा कहते हैं। इन्हीं कोरलाइट से प्रवाल भित्तियों (coral reefs) का निर्माण होता है।

### 15.2.3 प्रवाल भित्ति (Reefs)

मृत प्रवाल जन्तुओं के कोरलाइट या कैलसियम कार्बोनेट युक्त खोल (घरौंदा) के संग्रह तथा संयोजन (cementation) द्वारा निर्मित दृढ़ संरचना को प्रवाल भित्ति कहते हैं। जैसे-जैसे प्रवाल जन्तु मरते जाते हैं वैसे-वैसे उनके अस्थिपंजर एक के ऊपर एक जमा होते जाते हैं। धीरे-धीरे ये कैलसियम कार्बोनेट के अस्थिपंजर आपस में संघटित हो जाते हैं तथा प्रवाल भित्ति का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। कालांतर में एक वृहदाकार भित्ति का निर्माण हो जाता है।

## 15.3 प्रवाल भित्तियों के विकास की दशायें

प्रवाल जन्तुओं की वृद्धि के लिए कतिपय अनुकूल दशायें आवश्यक होती हैं। इन आवश्यक दशाओं के अभाव में प्रवाल भित्तियों का निर्माण संभव नहीं है। प्रवाल जन्तुओं की वृद्धि तथा प्रवाल भित्तियों के विकास के लिए निम्नलिखित अनुकूल दशाओं की आवश्यकता होती है:

**15.3.1 सागरीय जल का तापमान:** प्रवाल मुख्य रूप से उष्ण कटिबन्धीय महासागरों में पाये जाते हैं, क्योंकि इनको जीवित रहने के लिए उच्च तापक्रम आवश्यक होता है। 20° सेल्सियस से कम तापमान पर प्रवाल जीवों का जीवन संभव नहीं है। परन्तु प्रवाल न तो अति उष्ण जल और न अति ठंडे जल में पनप पाते हैं। यही कारण है कि गल्फ-स्ट्रीम गर्म जलधारा से प्रभावित उष्णकटिबंधीय सागरों में प्रवाल भित्तियां नहीं पाई जाती है। इसी तरह उष्णकटिबंध में भी महाद्वीपों के पूर्वी किनारों पर जहाँ ठंडी समुद्री जलधाराओं का क्षेत्र है वहाँ भी वाल भित्तियां नहीं पाई जाती है।

**15.3.2 सागरीय जल की गहराई :** प्रवाल कम गहराई तक ही पाये जाते हैं। 200 से 250 फीट (60-77 मीटर) से अधिक गहराई में प्रवाल मर जाते हैं, क्योंकि इसके बाद सूर्य प्रकाश प्रविष्ट नहीं हो पाता है और

प्रवाल के लिए यथोचित आक्सीजन नहीं मिल पाती है। समुद्र में गहराई बढ़ने के साथ प्रवाल की मात्रा कम होने लगती है।

**15.3.3 सागरीय जल का गंदलापन:** प्रवाल के विकास के लिए स्वच्छ जल (अवसाद मुक्त) होना चाहिए, क्योंकि अवसादों के कारण प्रवाल का मुख बन्द हो जाता है और वह मर जाते हैं । स्मरणीय है कि जहाँ पर अवसाद का जल के साथ मिश्रण नियमित रूप में होता रहता है, वहाँ पर प्रवाल का विकास हो सकता है, परन्तु जहाँ पर अचानक अवसाद लाया जाता है और जल गंदला हो जाता है, वहाँ पर प्रवाल मर जाते हैं। इसी कारण नदियों के मुहाने पर प्रवाल नहीं पाए जाते हैं।

**15.3.4 सागरीय जल की लवणता:** अत्यधिक सागरीय लवणता भी प्रवाल के विकास के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि इसमें चूने के कार्बोनेट की कमी होती है, जबकि चूना प्रवाल का प्रमुख भोजन है। प्रवाल के समुचित विकास के लिए औसत सागरीय लवणता 2700 से 3000 मिलीग्राम प्रति लीटर (27% से 30 %) होनी चाहिए।

**15.3.5 ताजे जल की आपूर्ति:** पूर्ण स्वच्छ जल भी प्रवाल के लिए हानिकर होता है। यही कारण है कि नदियों के मुहानों के पास प्रवाल कम पाये जाते हैं क्योंकि स्वच्छ जल में प्रवाल के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की कमी होती है। नदियों के मुहाने पर जल का खारापन कम होता है इसलिए भी वहाँ प्रवाल भित्तियाँ नहीं पाई जाती हैं।

**15.3.6 महासागरीय धारायें तथा तरंगें** सागरीय तरंगें तथा धाराएं प्रवालों के लिए लाभदायक होती हैं, क्योंकि इनके द्वारा प्रवालों के लिए भोजन लाया जाता है। यही कारण है कि बन्द सागरों में कम प्रवाल पाये जाते हैं। लैगून में (स्थल तथा प्रवाल भित्ति के बीच) जीवित प्रवाल नहीं मिलते हैं, परन्तु सागर की ओर इनका विकास तेजी से होता है।प्रवाल भित्तियों के निर्माण की आदर्श दशाएं उन समुद्री भागों में पाई जाती हैं जहाँ समुद्री धाराओं के द्वारा एक स्थान पर स्थायी रूप से रहने वाले प्रवाल कीटों को निरंतर खाद्य पदार्थो की आपूर्ति होती है।

तरंगें तथा धाराएं प्रवाल भित्तियों के आकार निर्धारण में भी सहयोग करती हैं। इनके द्वारा गोलाकार प्रवाल भित्तियों का निर्माण होता है जबकि प्रवाल भित्ति तथा स्थल के बीच स्थित गतिहीन सागरीय भाग में इनका आकार बाहर की ओर निकली लम्बी-लम्बी शाखाओं के रूप में होता है।

**15.3.7 अन्तःसागरीय चबूतरे:** प्रवाल के विकास के लिए अन्तः सागरीय चबूतरों की आवश्यकता होती है, जिनके ऊपर प्रवाल अपना घरौंदा बनाते हैं। इन अन्त:सागरीय चबूतरों की स्थिति सागर तल से ऊपर 50 फैदम (300 फीट) तक होनी चाहिए। इन चबूतरों पर प्रवाल का विकास दो रूपों में होता है। प्रवाल ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं तथा यह विकास तब स्थगित होता है, जबकि प्रवाल सागर तल के ऊपर हो जाते हैं। दूसरे रूप में प्रवाल बाहर की ओर विकसित होते हैं ।

## 15.4 प्रवाल भित्तियों के प्रकार

आकृति और उत्पत्ति के आधार पर प्रवाल भित्तियों के तीन प्रकार पाए जाते हैं:

**15.4.1 तटीय प्रवाल भित्ति:** महाद्वीपीय किनारे या द्वीप के किनारे निर्मित होने वाली प्रवाल भित्ति को तटीय प्रवाल भित्ति कहते हैं । इसका सागरवर्ती भाग खड़ा एवं तीव्र ढाल वाला होता है, जबकि स्थलोन्मुख भाग मन्द ढाल वाला होता है। ऊपरी सतह असमान तथा ऊबड़-खाबड़ होती है। भित्तियाँ यद्यपि स्थलीय भाग से सटी रहती हैं, परन्तु कभी-कभी इनके तथा स्थलभाग के बीच अन्तराल हो जाने के कारण उनमें छोटी लैगून का निर्माण हो जाता है, जिन्हे बोट चैनेल कहा जाता है । इस प्रकार की प्रवाल भित्तियाँ प्रायः कम चौड़ी तथा संकरी होती है। जहाँ कहीं भी नदी सागर में गिरती है, वहाँ पर तटीय प्रवाल भित्तियों का क्रम भंग हो जाता है। इस तरह की प्रवाल भित्तियां दक्षिणी फ्लोरिडा तट तथा मलेशिया द्वीप के सहारे पायी जाती है।

**15.4.2 अवरोधक प्रवाल भित्ति:** सागरीय तट से कुछ दूर किन्तु उसके समानान्तर स्थित वृहदाकार प्रवाल भित्ति को अवरोधक प्रवाल भित्ति कहा जाता। है। ये सभी प्रकार की भित्तियों से लम्बी, विस्तृत, चौड़ी तथा ऊँची होती हैं। इनका ढाल 45° तक होता है, परन्तु कुछ ढाल 15°-25° तक ही होता है। जब कभी तट एवं प्रवाल भित्तियों के मध्य स्थित लैगून अपेक्षाकृत अधिक गहरा एवं चौड़ा होता है, तथा प्रवाल भित्तियों का निर्माण तट से दूर होता है, तब इन्हें 'प्रवाल रोधिका' कहा जाता है । अवरोधक भित्तियाँ लगातार अविच्छिन्न रूप में नहीं मिलती है, वरन् स्थान-स्थान पर ये टूटी होती है, जिस कारण लैगून का सम्बन्ध खुले सागर से बना रहता है। इन अन्तरालों (gaps) को ज्वारीय प्रवेश मार्ग (tidal inlet) कहते हैं, जिनसे होकर जलयान भी आ जाते हैं । इन भित्तियों का आधार अधिक गहराई में मिलता है। कभी-कभी तो आधार इतना गहरा होता है कि वह प्रवाल के विकास की सीमा (300 फीट)

से अधिक हो जाती है। यह गहराई अवरोधक प्रवाल भित्तियों के उदभव के सिद्धांतों के सामने एक विकट समस्या पैदा कर देती है। इनके समाधान के विषय में बताया जाता है कि अवरोधक प्रवाल भित्तियों के बन जाने के बाद उनके आधार में अवतलन हुआ होगा।

विश्व की सर्वप्रमुख अवरोधक प्रवाल भित्ति ग्रेट बैरियर रीफ है, जो आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के सहारे 9° द० से 22° द० अक्षांशों के मध्य 1200 मील (1920 किमी०) की लम्बाई में सागर पायी जाती है। इसका उत्तरी सिरा तट से 80 मील (128 किमी०) तथा दक्षिणी सिरा 7 मील (11 किमी०) दूर है। इस तरह प्रवाल भित्ति की तट से दूरी 20 से 30 मील (32 से 48 किमी०) के बीच पायी जाती है। तट तथा भित्ति के बीच स्थित लैगून की औसत गहराई 40 फैदम (240 फीट) तथा चौड़ाई 7 से 80 मील (11 से 128 किमी०) है। जगह-जगह पर भित्ति टूटी है, जिस कारण लैगून का सम्बन्ध खुले प्रशान्त महासागर से हो जाता है।

**15.4.3 प्रवाल द्वीप वलय या एटॉल:** वृत्ताकार, दीर्घ वृत्ताकार या घोड़े की नाल अथवा मुद्रिका के आकार वाली प्रवाल भिति को एटॉल कहा जाता है। इसकी स्थिति प्रायः द्वीप के चारों ओर होती है: इसका कोई न कोई भाग खुला अवश्य रहता है। इसके बीच में लैगून होती है, जिसकी गहराई 40 से 70 फैदम (240 से 420 फीट) तक होती है। एटॉल प्राय: तीन प्रकार के होते हैं (i) वे एटॉल जिनके – बीच में द्वीप नहीं पाया जाता है। केवल प्रवाल की बलायाकार श्रेणियाँ ही पायी जाती हैं, (ii) वे एटॉल जिनके मध्य में द्वीप पाया जाता है, तथा (iii) वे एटॉल जिनके मध्य में पहले से द्वीप तो नहीं रहता, परन्तु बाद में सागरीय तरंगों द्वारा अपरदन एवं निक्षेपण द्वारा उनके ऊपर द्वीप जैसा बन जाता है। इन्हें प्रवाल द्वीप या एटॉल द्वीप कहा जाता है। अधिकतर प्रवाल द्वीप, कम ऊँचाई वाले बालू के टीले होते हैं जिनका आधार प्रवाल भित्ति चबूतरा होता है। केवल विशेष परिस्थितियों में ही जबकि द्वीप बनने के बाद उत्थान हुआ हो तो प्रवाल द्वीप अधिक ऊँचाई को प्राप्त कर लेते हैं। एटॉल एण्टीलीज सागर, लाल सागर, इण्डोनेशिया सागर, चीन सागर तथा आस्ट्रेलिया सागर में अधिकता से पाये जाते हैं। फुराफुटी एटॉल एवं बिकनी द्वीप एटॉल के लोकप्रिय उदाहरण हैं।

## 15.5 प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सिद्धांत

प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति एक जटिल समस्या है, जिसके समाधान के लिए परस्पर विरोधाभासी सिद्धांत अस्तित्व में हैं। इन  विरोधाभासी सिद्धांतों का प्रतिपादन दो प्रमुख आधारों पर किया गया है: प्रथम, प्लीस्टोसीन सागर तल में परिवर्तन तथा स्थलखण्ड में स्थिरता । स्थल खण्ड की स्थिरता की तीन दशाएं संभव हैं- प्रथम, स्थिर स्थलखण्ड, द्वितीय, अवतलित होता हुआ स्थलखण्ड तथा तृतीय, उत्थित होता स्थलखण्ड। यदि इन सिद्धान्तों का विश्लेषण किया जाय तो इनको दो समूहों में समाहित किया जा सकता है। प्रथम अवतलन सिद्धांत जिसमें डार्विन का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है एवं द्वितीय, स्थिर स्थल सिद्धान्त जिसमें मरे, अगासीज, डेली आदि के सिद्धान्त प्रमुख हैं। प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति से सम्बंधित एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि तटीय प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति एवं उनकी निर्माण प्रकिया में कोई विवाद नहीं है। परन्तु अवरोधक प्रवाल भित्ति तथा वलयाकार प्रवाल भित्तियों की व्याख्या हेतु परस्पर विरोधी सिद्धांत अस्तित्व में हैं।

### 15.5.1 डार्विन का भू-अवतलन सिद्धान्त

चार्ल्स डार्विन ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन 1837 में किया, किन्तु 1842 में उसमें संशोधन किया गया। चार्ल्स डार्विन ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन का आधार ताहिती की प्रवाल रोधिका एवं कीलिंग के एटॉल के अध्ययन के उपरांत किया था। डार्विन ने प्रवाल भित्तियों के अध्ययन के बाद पाया कि यद्यपि प्रवाल छिछले सागर में ही जीवित रह सकते हैं तथापि उनसे निर्मित भित्तियाँ अत्यधिक गहराई तक पायी जाती हैं, जहाँ पर प्रवात किसी भी हालत में जीवित नहीं रह सकते। इस विरोधाभास को दूर करने के लिए डार्विन ने बताया कि जिस स्थल या द्वीप के साथ प्रवाल भित्ति बनती है, वह स्थिर नहीं होता है, वरन् उसमें क्रमशः अवतलन होता है। इन्होंने यह भी बताया कि तटीय प्रवाल भित्ति, अवरोधक प्रवाल भित्ति तथा एटॉल, प्रवाल भित्ति की क्रमिक विकासीय अवस्थायें (successive evolutionary stages) हैं।

सर्वप्रथम आदर्श चबूतरे के साथ प्रवाल का आविर्भाव होता है तथा वे ऊपर की ओर बढ़कर सागर तल तक पहुँच जाते हैं, जिस कारण तटीय प्रवाल भित्ति (fringing reef) का निर्माण होता है। जब तक सागर तल और स्थल में कोई परिवर्तन नहीं होता, तब तक तटीय प्रवाल भित्ति का स्वरुप बना रहता है। किन्तु कालांतर में स्थलखण्ड में अवतलन अथवा सागर तल में अभिवृद्धि हो जाती है, जिस कारण

प्रवाल अधिक गहराई में पहुँच जाते हैं। परिणामस्वरूप जीवित रहने के लिए तथा अपने भोजन को एकत्रित करने के लिए इनमें ऊपर तथा बाहर की ओर तेजी से वृद्धि होती है। तट के पास वृद्धि रुक जाती हैं क्योंकि वहाँ भोजन का अभाव होता है। परिणामस्वरूप तट तथा भित्ति के बीच लैगून का निर्माण हो जाता है । पुनः स्थलखण्ड का अवतलन होता है तथा द्वीप पूर्णतया जलमग्न हो जाता है और उसके चारों ओर वलयाकार प्रवाल भित्ति (एटॉल) का निर्माण हो जाता है। स्थलखण्ड के निरन्तर अवतलन के बावजूद लैगून की गहराई बढ़ने नहीं पाती है, क्योंकि उसमें निरन्तर अवसाद का जमाव होता रहता है। प्रस्तुत चित्र डार्विन के अवतलन सिद्धांत में प्रवाल भित्तियों के क्रमिक विकास क्रम की पुष्टि करता है। इससे पता चलता है कि सर्वप्रथम प्रवाल भित्तियों का निर्माण उथले सागर के जलमग्न चबूतरों पर हुआ, जो कालांतर में अवतलन के कारण अधिक गहराई तक निमज्जित हो गए। जीवित रहने के लिए प्रवाल कीट क्रमश: उपर की ओर अपने आवास का विकास करने में जुटे रहे। इस सम्बन्ध में बेहद महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऐसा केवल तभी संभव है जब अवतलन की गति प्रवाल भित्तियों के विकसित होने की गति से कम हो। वस्तुत: डार्विन का क्रमिक विकास एवं अनुकूलन का सिद्धांत प्रवाल भित्तियों के उद्भव एवं सन्दर्भ में भी लागू किया जा सकता है।

**डाना** ने 1849 में भी अध्ययन के उपरान्त डार्विन के सिद्धांत का समर्थन किया। वस्तुत: डाना ने ही सर्वप्रथम बताया कि निमग्न घाटियों (drowned valleys) की उपस्थिति का एकमात्र कारण निमज्जित तटों की घाटियों में समुद्र की भुजाओं का प्रवेश कर जाना है।

### 15.5.1.1 डार्विन के सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण

डार्विन के सिद्धान्त के पक्ष में कई प्रमाण मिलते हैं:

अ. लैगून का निरन्तर छिछला बना रहना स्थलखण्ड के अवतलन की प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। यदि स्थलखण्ड स्थिर रहता तो निरन्तर जमाव के कारण लैगून भर जाती।

आ. प्रशान्त महासागर में जिन भागों के सहारे उत्थित पुलिन (raised beaches) पायी जाती हैं, उनके सहारे प्रवाल भित्तियों (अवरोधक तथा एटॉल) का पूर्णतया अभाव है।

इ. एटॉलयुक्त द्वीपों के ऊपरी भाग अत्यधिक खड़े डाल वाले होते हैं। इस तरह का अत्यन्त तीव्र दाल पर्वतीय शिखर के ऊपरी भाग पर ही मिलता है। इससे स्थलखण्ड का अवतलन प्रमाणित होता है।

ई. प्रवाल भित्ति की मोटाई ऊपर से नीचे की ओर बढ़ती जाती है, जिससे प्रमाणित होता है कि प्रवाल भित्ति का निर्माण अवतलित होते हुए आधार पर हुआ है।

उ. प्रवाल भित्तियों का आधार समुद्र में उतनी गहराई पर मिलता है जहाँ प्रवाल कीट जीवित नहीं रह सकते। मसलन सन 1896 में प्रशांत महासागर के फुनाफुटी एटॉल में की गई ड्रिलिंग से प्रवाल निर्मित चट्टानों की 1114 फीट मोटी परतें मिली। इसी प्रकार बिकनी एटॉल में 2556 फीट की गहराई तक प्रवाल से बनी चट्टानें प्राप्त हुई हैं।

### 15.5.1.2 डार्विन के सिद्धांत की आलोचना

यदि तटीय प्रवाल भित्ति, अवरोधक प्रवाल भित्ति तथा एटॉल, प्रवाल भित्तियों की विकासीय अवस्थाएं हैं तो एक ही द्वीप के सहारे एक और तटीय प्रवाल भित्ति तथा दूसरी ओर अवरोधक प्रवाल भित्ति को साथ-साथ नहीं मिलना चाहिए, परन्तु नयी खोजों के आधार पर इस तरह के अनेक प्रमाण मिले हैं। यदि डार्विन के सिद्धान्त को मान लिया जाय तो अवतलन के कारण प्रशान्त महासागर के अधिकांश द्वीप जलमग्न होकर अदृश्य हो जायेंगे। जो कि संभव प्रतीत नहीं होता है। इसी प्रकार कहीं-कहीं पर उत्थित द्वीप के साथ भी प्रवाल भित्तियाँ पायी जाती हैं। अनेक सर्वेक्षणों से यह भी पता चलता है कि एटॉल का निर्माण केवल उथले चबूतरों पर हुआ है, ना कि गहराई में डूबी हुई पर्वत की चोटियों पर।

### 15.5.2 सर जॉन मरे का स्थिर स्थल सिद्धान्त

स्थिर स्थल सिद्धान्त के अन्तर्गत भी दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत यह माना जाता है कि प्रवाल भित्ति का निर्माण स्थिर सागर तल के साथ अन्तः सागरीय चबूतरों पर होता है। दूसरे वर्ग के अनुसार प्रवाल

भित्ति के निर्माण के लिए आवश्यक स्थल की प्राप्ति सागर तल में गिरावट के कारण होती है परन्तु स्थल स्थिर रहता है। मरे का सिद्धान्त प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आता है।

मरे ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन 1880 में किया। उन्होंने यह बताया कि प्रवाल 30 फैदम (180 फीट) की गहराई तक पनप सकते हैं। सागर तल तथा स्थल (अन्तः सागरीय चबूतरे आदि) स्थिर होते हैं। सागर तल के नीचे अनेक अन्त:सागरीय चबूतरे, ज्वालामुखी शिखर, द्वीप आदि होते हैं, जिनके ऊपर प्रवाल भित्ति का निर्माण होता है। यदि ये स्थल प्रवाल की गहराई (coral depth, जहाँ तक प्रवाल जिन्दा रह सकते हैं) से ऊपर या नीचे होते हैं तो उनको प्रवाल की उत्पत्ति के लिए 30 फैदम (180 फीट) की वांछित गहराई प्राप्ति निम्न रूपों में प्राप्त होती है- (i) यदि ज्वालामुखी शिखर या द्वीप सागर तल में 180 फीट की गहराई से ऊपर है, तो उसका अपरदन तथा घुलन क्रिया द्वारा अवनयन (lowering) हो जाता है और (1) यदि यह प्रवाल तल से नीचे है, अर्थात 180 फीट या 30 फैदम से नीचे है तो उस पर अन्त:सागरीय पेलेजिक जमाव होता है, जिस कारण आवश्यक गहराई (30 फैदम) प्राप्त हो जाती हैं।

30 फैदम की गहराई प्राप्त हो जाने पर ही प्रवाल अपना घरौंदा बनाना प्रारम्भ कर देते हैं तथा प्रारम्भ में तटीय प्रवाल भित्ति (fringing reef) का निर्माण होता है। प्रारम्भ में प्रवाल का विकास ऊपर की ओर तथा आगे चलकर बाहर को और होने लगता है। तटीय प्रवाल में निरन्तर विकास के कारण अवरोधक प्रवाल भित्ति (barrier reer) का निर्माण होता है। स्थल तथा प्रवाल भित्ति के बीच के भाग के घुल जाने के कारण लैगून का निर्माण होता है। अन्तः सागरीय चबूतरों के शीर्ष पर प्रवाल के चतुर्दिक विकास के कारण एटॉल का निर्माण होता है।

### 15.5.2.1 मरे के सिद्धांत के पक्ष में प्रमाण

मरे के सिद्धान्त के पक्ष में निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:

i. अनेक प्रवाल भित्तियां पाई गयीं हैं जिनका उद्भव सागर के जल में डूबे अंत:सागरीय प्लेटफॉर्म य पठारों पर हुई हैं।
ii. ऐसे अनेक एटॉल पाये गये हैं जिनके निर्माण में अवतलन की कोई भूमिका नहीं रही।

iii. अधिकांश प्रवाल भित्तियों की मोटाई 60 मीटर से अधिक नहीं है।

iv. सालोमन द्वीप की प्रवाल भित्तियों का निर्माण एक ऐसे ज्वालामुखी के शिखर पर हुआ है जिसके ऊपर चूना प्रधान ऊज (calcareous ooze) का निक्षेपण हुआ था।

### 15.5.2.2 मरे के सिद्धांत की आलोचना

- मरे के अनुसार प्रवाल भित्ति के निर्माण के लिए अनेक अन्तः सागरीय शिखर तथा चबूतरे होने चाहिए जो कि सम्भव नहीं है।
- मेरे ने एक ही स्थान पर 30 फैदम की गहराई तक अपरदन तथा निक्षेप की दो परस्पर विरोधी सक्रिय प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है जो कि न्याय संगत प्रतीत नहीं होता है। विशेष रूप से सागरीय तरंगों द्वारा अपरदन तथा निक्षेपण की 30 फैदम की गहराई तक की अधिकतम सीमा मान्य नहीं है

  मरे ने लैगून का निर्माण प्रवाल भित्ति तथा स्थल के बीच के भाग के घुल जाने से बताया है। यह मत भी भ्रामक है, क्योंकि यदि घुलन क्रिया इतनी सक्रिय है तो इससे अन्तःसागरीय चबूतरों पर स्थित पेलैजिक जमाव भी घुल सकता है। यदि स्थल स्थिर है तो लैगून जमाव द्वारा भर जायेगी और उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा
- मरे के अनुसार प्रवाल की गहराई 180 फीट (30 फैदम) से अधिक नहीं हो सकती है, परन्तु इससे अधिक गहराई में भी प्रवाल मिलते हैं।

### 15.5.3 डेली का हिमानी नियंत्रण सिद्धान्त (Glacial Control Theory)

डेली ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन 1915 में उस समय किया, जबकि उनको यह विश्वास हो गया कि सागरों में प्रवाल भित्तियों का निर्माण प्लीस्टोसीन हिमकाल के बाद ही हुआ है। प्लीस्टोसीन हिमकाल के समय सागरीय जल के हिम में बदल जाने के कारण सागर तल में 33 से 38 फैदम तक का अवनयन (lowering) हो गया। सागरीय जल के तापमान में गिरावट के कारण जो भी प्रवाल थे, वे मर गये। सागर तल में अवनयन के कारण महाद्वीपीय तटों तथा द्वीपों के सहारे अपरदित चबूतरों तथा सोपानों का

निर्माण हुआ। हिमकाल के अवसान के बाद हिम के जल में परिणत हो जाने के कारण सागर तल पुन: 33 से 38 फैदम तक ऊपर उठ गया। परिणामस्वरूप अपरदित चबूतरे 38 फैदम की गहराई तक डूब गये । जो प्रवाल बचे रह गये थे तथा नये प्रवाल जलमग्न संकरे चबूतरों पर अपना घरौंदा बनाने लगे, जिस कारण तटीय प्रवाल भित्ति का निर्माण हुआ। चौड़े चबूतरों पर अवरोधक प्रवाल भित्ति का निर्माण हुआ। एटॉल का निर्माण एकाकी अन्तः सागरीय पठारों के ऊपर हुआ। प्रवाल भित्ति तथा स्थल के मध्य समान गहराई वाली लैगून का निर्माण हुआ।

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रवाल भित्तियों का सँकरा होना तथा उसके पार्श्व भागों के ढलान की तीव्रता स्वाभाविक है। प्रवाल भित्तियों के ढाल कहीं-कहीं 75° तक पाये जाते हैं। अतः इतने तीव्र ढाल वाली प्रवाल भित्तियाँ कभी भी प्रवाल के विखण्डित टुकड़ों पर निर्मित नहीं हो सकतीं। इसके विपरीत, उनके आधार अवश्य ही ठोस प्रवालों के बने होने चाहिए। प्रवाल भित्तियों के ऊपरी भाग के अपरदन से प्राप्त अवसाद लैगून में पहुँच कर उसका आंशिक रूप से भराव कर देते हैं। अनेक प्रवाल द्वीपों में की गई छेदन क्रिया से आधार तल पर मिले प्रवाल शैलों से समुद्र-तल में हुये परिवर्तन की बात सत्य सिद्ध होती है।

### 15.5.3.1 डेली के सिद्धांत की आलोचना

i. इस सिद्धान्त के अनुसार सभी लैगून की गहराई समान होनी चाहिए, परन्तु डेविस ने बताया है कि सभी लैगून की गहराई भिन्न-भिन्न तो होती ही है, एक ही लैगून के विभिन्न भागों में भी गहराई में अन्तर (120 से 300 फीट) होता है। कहीं-कहीं पर यह गहराई 20 से 600 फीट तक पायी जाती है।

ii. जिन अन्तःसागरीय चबूतरों पर एटॉल का निर्माण हुआ है उनमें से अधिकांश इतने विस्तृत हैं कि हिमयुग में समुद्री अपघर्षण से उनका निर्माण असम्भव है।

iii. समुद्रतल में गिरावट होने पर तरंगों एवं लहरों द्वारा प्रवाल भित्तियों के विकास के लिये उपयुक्त अन्तःसागरीय चबूतरों का निर्माण किया जाना सम्भव नहीं जान पड़ता।

iv. हिमयुग में समुद्र के तापमान में कमी तथा जल का गेंदलापन हिम अपरदित क्षेत्रों से दूर तक पाया जाता रहा हो, इसमें सन्देह है।

v. हिमयुगीन समुद्रों के तटों पर भृगुओं (cliffs) का निर्माण होना चाहिये था, किन्तु प्रवाल भित्तियों से सम्बन्धित तटों पर सामान्यरूप से इनका अभाव पाया जाता है।

vi. यदि हिमकाल के समय 33 से 38 फैदम तक सभी सागरीय भागों का अपरदन हो गया तो तट तथा प्रवाल भित्तियों के बीच द्वीप नहीं मिलने चाहिए अर्थात समुद्री अपरदन के फलवरूप अधिकांश द्वीपों का अस्तित्व मिट जाना चाहिये था, जबकि प्रवाल भित्तियों पर अनेक द्वीप पाए जाते हैं। इन कारणों से अवतलन सिद्धान्त की प्रामाणिकता नहीं सिद्ध होती।

### 15.5.4 डेविस की संकल्पना

अमेरिकी भूआकृतिविज्ञानवेत्ता विलियम मोरिस डेविस ने 1914-18 में प्रवाल भित्तियों के निर्माण सम्बन्धी प्राचीन सिद्धान्त- अवतलन सिद्धान्त को पुनरुज्जीवित किया तथा अनेक भौतिक प्रमाण प्रस्तुत किये। उन्होंने बताया कि प्रवाल का निर्माण अवतलित होते हुए स्थल के साथ ही होता है, क्योंकि उसके सहारे क्लिफ नहीं मिलते हैं। डेविस ने प्लीस्टोसीन हिमकाल के समय सागर तल में परिवर्तन को भी सम्मिलित किया है। इस तरह डेविस ने कोई नया सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित किया है, वरन् डार्विन के पुराने सिद्धान्त को ही नये प्रमाण के आधार पर पुष्ट करने का प्रयास किया है। डेविस ने विश्व के कई स्थानों से प्रवाल भित्तियों के भ्वाकृतिक साक्ष्य प्रस्तुत किया तथा प्रवाल भित्तियों से सम्बन्धित तब तक कई अनुत्तरित समस्याओं का हल भी प्रस्तुत किया। इनके अनुसार प्रवाल का विकास धंसते स्थल के साथ प्रारम्भ होता है। कोरल सागर में टेढ़ी-मेढ़ी तथा कटी-फटी (indented and embayed coast lines) तट रेखा अवतलन (subsidence) तथा स्थल के निमज्जन (submergence) को प्रमाणित करती है। डेविस के अनुसार अधिकांश प्रवाल भित्तियों की लैगून की समान गहराई तथा उनके नितल (bottom) का चपटापन सागर तल में समान गिरावट के कारण न होकर उनमें सागरीय अवसादों के कारण है। लैगूनों का छिछलापन उनमें अवसादों के लगातार निक्षेपण का परिणाम है। यदि जलमग्न अन्तः सागरीय चबूतरों को स्थिर मान लिया जाय तो अवसादों के लगातार निक्षेपण के कारण लैगून भर जायेगी तथा उससे जल का जब बाहर की ओर बहाव होगा। तो प्रवाल मर जायेंगे। दूसरी तरफ यदि स्थल लगातार धंस रहा है तो लैगून में अवसादों की कोई भी मात्रा का समावेश हो जायेगा तथा लैगून में जल की गहराई यथावत बनी

## 15.6 प्रवाल विरंजन (Coral Bleaching)

प्रवाल विरंजन से तात्पर्य प्रवाल जीवों के मर जाने या नष्ट हो जाने से है। प्रवाल विरंजन की प्रक्रिया में प्रवाल जीवों के उपरी खोल में उपस्थित शैवाल (algae) किसी भी कारणवश हरे के स्थान पर श्वेत रंग में बदल जाती है जिसके कारण उनमें प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) की प्रकिया बाधित हो जाती है। ज्ञातव्य है कि प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) की इस प्रक्रिया द्वारा उनको अपने भोजन तथा पोषक तत्वों का अधिकांश भाग प्राप्त होता है। और इसके बाधित होने से कालांतर में प्रवाल जीवों की मृत्यु हो जाती है। प्रवाल विरंजन के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण यहाँ पर वर्णित हैं।

भूमण्डलीय तापन को प्रवाल विरंजन का प्रमुख कारण चिन्हित किया गया है। 1997-98 में महासागरीय जल के तापमान में औसत से 2° सें० की वृद्धि होने से 60 से अधिक देशों के उष्णकटिबन्धी सागरों में भारी स्तर पर प्रवाल विरंजन होने के कारण प्रवालों की सामूहिक मृत्यु होने से प्रवाल विनाश (coral catastrophe) की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यद्यपि प्रवास विरंजन की घटना का अल्फ्रेड मेयर द्वारा 1919 में ही अवलोकन कर लिया गया था परन्तु इस प्रक्रिया तथा घटना के प्रति विश्व के विज्ञानियों का ध्यान 1998 में आकर्षित हुआ जबकि केनिया तट के पास तथा हिन्दमहासागर के द्वीपों (यथा : अण्डमान- मालदीव, लक्षद्वीप आदि) के 70 प्रतिशत से अधिक प्रवालों की मौत हो गयी। जब सागरीय जल के औसत सामान्य तापमान में 1° सें० से अधिक वृद्धि हो जाती है तो शैवाल का रंग सफेद हो जाता है । ज्ञातव्य है कि प्रवाल इन्हीं शैवाल से आहार ग्रहण करते हैं, अतः प्रवाल की वृद्धि शैवालों की समृद्धि, बहुलता एवं प्राप्ति पर निर्भर करती है। हरे रंग के शैवाल प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) की प्रक्रिया द्वारा अपनी वृद्धि करते हैं। जब इनका विरंजन (हरे रंग का सफेद रंग में बदलना) हो जाता है। तो शैवाल समाप्त होने लगते हैं, परिणामस्वरूप प्रचुर आहार अभाव में प्रवाल मरने लगते हैं। इस समस्त प्रक्रिया को प्रवाल विरंजन कहते हैं।

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विश्वव्यापी प्रवाल विरंजन की दो बड़ी घटनायें हुई हैं। सन् 1982-83 में प्रबल एल निनो दक्षिणी दोलन (ENSO) परिघटना के कारण उष्ण कटिबन्धी प्रशान्त महासागर के जल के तापमान में वृद्धि होने से व्यापक प्रवाल विरंजन की घटना हुई, जिस कारण मध्य अमेरिका के पश्चिमी तट के पास 70 प्रतिशत प्रवालों की मृत्यु हो गयी। इस प्रबल एल निनो दक्षिणी दोलन परिघटना के कारण

प्रवाल विरंजन इतना अधिक हुआ कि पनामा के पश्चिमी तट के पास प्रवालों की दो प्रजातियों का विलोपन हो गया। इसी प्रकार 1997-98 में भारत के अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों तथा श्रीलंका के समीपवर्ती भागों में बड़े पैमाने पर प्रवाल विरंजन की घटना हुई थी। पोर्टब्लेयर स्थित 'सोसायटी फार अण्डमान एण्ड निकोबार इकालजी' (SANE) द्वारा किए गए अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार, 1998 में अण्डमान रीफ के चारों ओर प्रवालों का सामूहिक विरंजन (mass bleaching) तथा निकोबार रीफ के चारों ओर 30-70 प्रतिशत तक विरंजन हो गया था। इस विरंजन का प्रमुख कारण 1998 में अण्डमान सागर के तापमान में 20° सें० तक की वृद्धि रही है। गोवा स्थित भारतीय समुद्रविज्ञान संस्थान (NIO) द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार लक्षद्वीप में कावारती तथा कदामत द्वीपों के प्रवालों में बैक्टीरियल रोग तथा सागरीय जल के तापमान में वृद्धि के कारण विरंजन से भारी क्षति हुई है।

## 15.7 विरंजन के स्तर

प्रवाल विरंजन प्रत्येक स्थान पर सामान नहीं होता। प्रवालों के नष्ट होने के प्रतिशत के आधार पर प्रवाल विरंजन के चार स्तर वर्गीकृत किये जा सकते हैं।

1. **चरम प्रवाल विरंजन** जब 70 प्रतिशत या उससे अधिक प्रवाल दुष्प्रभावित हो जाते हैं। 1997-98 में बहरीन, मालदीप, श्रीलंका, सिंगापुर तथा तंजानिया के छिछले सागरों में 95 प्रतिशत तक प्रवालों पर विरंजन का दुष्प्रभाव पड़ा था। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरुप समुद्र के तापमान में वृद्धि के कारण हाल के वर्षों में बड़े स्तर पर कैटास्ट्राफिक प्रवाल विरंजन घटनाएं बढ़ी हैं।
2. **प्रचण्ड प्रवाल विरंजन**- जब 50 से 70 प्रतिशत प्रवाल विरंजन के कारण मर जाते हैं। 1997-98 में केनिया, सेचलीस, अण्डमान निकोबार, थाईलैण्ड तथा वियतनाम के सागरीय भागों में प्रचण्ड प्रवाल विरंजन हुआ था।
3. **मध्यम प्रवाल** विरंजन के अंतर्गत 20 से 50 प्रतिशत प्रवाल विरंजन का शिकार हो जाते हैं। परन्तु इनका शीघ्र ही पुनर्जीवन हो जाता है ।
4. नगण्य विरंजन का प्रभाव भी नगण्य होता है क्योंकि प्रवाल इसे बर्दास्त कर लेते हैं।

## 15.8 प्रवाल विरंजन के कारण

स्थानीय स्तर से लेकर प्रादेशिक एवं भूमण्डलीय स्तरों पर विभिन्न परिस्थितियों में प्रवाल विरंजन के कई कारक जिम्मेदार होते हैं। स्मरणीय रहे कि प्रवाल विरंजन तभी होता है जबकि प्रवास जन्तुओं तथा उनके शरीरों के बाह्य भागों में रहने वाली सहजीवी जुक्सान्थलाई शैवाल एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। आज भी वैज्ञानिक उन कारणों की खोज में लगे हैं जो प्रवाल जन्तुओं को अपने शरीरों से अपने सहजीवी जुक्सान्थलाई शैवालों को निष्कासित करने के लिए बाध्य करते हैं, यद्यपि अब अधिकांश सागर वैज्ञानिक सागरीय जल के औसत तापमान में वृद्धि को ही महत्वपूर्ण कारक मानते हैं। निम्न कारकों को विभिन्न स्तरों पर प्रवाल विरंजन के लिए जिम्मेदार माना जाता है :

**15.8.1 भूमण्डलीय ऊष्मन (Global Warming):** वैज्ञानिक समुदाय ने भूमण्डलीय तापवृद्धि को प्रवाल विरंजन का प्रमुख कारण माना है। 'ग्लोबल कोरल रीफ एलायन्स' (GCRA) के अनुसार जब भी प्रवाल विरंजन हुआ है, ग्रीष्मकाल के सबसे गर्म महीनों का तापमान सामान्य से 1° सें० से अधिक रहा है।

**15.8.2 एल निनो दक्षिणी दोलन (ENSO):** एल निनो घटना का सम्बन्ध प्रवाल विरंजन से जोड़ा गया है। ज्ञातव्य है कि 1998 का वर्ष 20वीं सदी का सबसे गर्म वर्ष रहा। उस समय एल निनो घटना भी प्रबलतम रही जिस कारण प्रशान्त महासागर का तापमान और अधिक बढ़ गया। 1983, 1987 तथा 1998 में भी बड़े पैमाने पर प्रवाल विरंजन सर्वाधिक हुआ जबकि इन्हीं वर्षों एलनिनो का प्रभाव भी सर्वाधिक था। भौगोलिक रूप से एल निनो दक्षिणी दोलन की परिघटना का प्रभाव प्रवाल उत्पत्ति के उष्णकटिबंधीय सागरीय क्षेत्र में पड़ता है। एल निनो दक्षिणी दोलन की परिघटना से औसत सागरीय तापमान में वृद्धि हो जाती है।

**15.8.3 रोगों का फैलना (Outbreak of diseases):** कभी-कभी अचानक संक्रामक रोगों, यथा-ब्लैक बैंड रोग, कोरल प्लेग, एस्परजिलोसिस तथा ह्वाइट बैण्ड रोग, के महामारी रूप ले लेने से प्रवालों में व्यापक स्तर पर मृत्यु होने लगती है।

**15.8.4 स्थानीय कारक (Local Reasons):** स्थानीय कारक सीमित क्षेत्रों में स्थानीय तथा प्रादेशिक स्तरों पर प्रवालों के अवनयन (coral degradation) का कारण बन जाते हैं। इन स्थानीय कारकों में प्रमुख हैं, औद्योगिक प्रदूषण, नगरीय अपशिष्ट, समुद्री खनन, अति मत्स्यन, कोरल खनन आदि प्रमुख है।

**15.8.5 प्रवाल पुनर्जीवन (Coral Recovery):** पृथ्वी के इतिहास के विभिन्न कालों में वृहदस्तरीय जलवायु में परिवर्तनों जैसे हिमकाल का आगमन, सूर्यातप की मात्रा में उतार-चढ़ाव तथा कई बार विषम परिस्थितियों के बावजूद प्रवाल अपना अस्तित्व बनाये रखने एवं पुनर्जीवन करने में सफल रहे हैं । दीर्घकालिक सन्दर्भ में प्रवाल भित्तियों का विलोप (extinction) तो नहीं हो पायेगा परन्तु प्रवास विरंजन की एक घटना के दुष्प्रभावों से प्रवालों को उबरने के लिए 30 से 100 वर्ष का समय लगा सकता है । कोरल पारिस्थितिक तंत्र एक जटिल तंत्र है जो दीर्घकाल में स्वयं को ना केवल पुनर्जीवित कर सकता है बल्कि अपनी संख्या में अभिवृद्धि भी कर सकता है । हालाँकि अतिशय मानवीय हस्तक्षेप से पृथ्वी के अनेक भागों से इनके स्थायी विलोपन का खतरा भी बना हुआ है । डेविस ने अपने मत की पुष्टि के लिए और अधिक साक्ष्य प्रस्तुत किया है ।

## 15.9 सारांश

प्रवाल भित्तियां पृथ्वी के जटिल परिथितिकी तंत्र का एक बेहद संवेदनशील भाग हैं । यह संवेदनशीलता उनकी उत्पत्ति की जटिलताओं से भी जुड़ी हुई है । उनका प्राकृतिक परिवेश मानवीय हस्तक्षेप के कारण खतरे में हैं जिसके कारण पिछले कुछ दशको में प्रवाल विरंजन की घटनाओं में अतिशय वृद्धि हुई हैं । कोरल पारिस्थितिक तंत्र एक जटिल तंत्र है जो दीर्घकाल में स्वयं को ना केवल पुनर्जीवित कर सकता है किन्तु अतिशय मानवीय हस्तक्षेप से पृथ्वी के अनेक भागों से इनके स्थायी विलोपन का खतरा भी बना हुआ है ।

प्रवाल भित्ति की उत्पत्ति के सिद्धांत अनेक प्रकार की जटिलताओं को समाहित किये हुए हैं तथा अनेक बार परस्पर विरोधाभाषी भी प्रतीत होते हैं । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इन सिद्धांतों के विरोधाभाषी होने पर भी ये एक दूसरे के पूरक हैं जो प्रवाल भित्तियों की जटिल उद्भव प्रक्रिया को समझने में सहायता करते हैं ।

## अभ्यास प्रश्न

1. प्रवाल भित्तियों के निर्माण के लिए निर्माण की आवश्यक दशाएं को समझाइए।
2. प्रवाल भित्तियों के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिये ।

3. प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के डार्विन के भू-अवतलन सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
4. प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के जॉन मरे के स्थिर स्थल सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
5. प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के डेली के हिमानी नियन्त्र सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
6. प्रवाल-विरंजन के कारणों पर निबंध लिखिए।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


- सविन्द्र सिंह (2022). समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज.
- डी. एस. लाल (2011). जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.

# इकाई-16

# समुद्री संसाधन, सागरीय ऊर्जा संसाधन, समुद्री प्रदूषण के स्त्रोत

---

**इकाई की रूपरेखा**


16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2 समुद्री संसाधनों के प्रकार

16.2.1 खाद्य संसाधन

16.2.2 रासायनिक संसाधान

16.2.3 खनिज संसाधन

16.2.4 उर्जा संसाधन

16.2.5 अन्य संसाधन

16.3 समुद्री संसाधनों का महत्व

16.4 समुद्री संसाधनों पर नियंत्रण सम्बन्धी कानून

16.5 सागरीय ऊर्जा संसाधन

16.5.1 पम्परागत सागरीय ऊर्जा संसाधन: पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस

16.5.2 गैर पम्परागत सागरीय ऊर्जा संसाधन

16.5.2.1 ज्वारीय ऊर्जा

16.5.2.2 महासागरीय तापीय ऊर्जा

16.5.2.3 महासागरीय तरंग ऊर्जा

16.6 समुद्री प्रदूषण

16.7 समुद्री प्रदूषण के प्रमुख प्रकार

16.7.1 यूट्रोफिकेशन

16.7.2 अम्लीकरण
16.7.3 विषाक्त पदार्थ
16.7.4 प्लास्टिक
16.8 महासागरीय प्रदूषण के सांद्रण क्षेत्र
16.8.1 तटीय जल का प्रदूषण
16.8.2 सागरीय सतह का प्रदूषण
16.8.3 सागरीय न्यूस्टन सतह का प्रदूषण
16.8.4 पाइक्नोक्लाइन परत के सहारे प्रदूषण
16.8.5 सागरीय नितल का प्रदूषण
16.9 प्रमुख सागरीय प्रदूषक
16.9.1 हाइड्रोकार्बन
16.9.2 प्लास्टिक प्रदूषण
16.9.3 नगरीय अपशिष्ट तथा सीवेज प्रदूषक
16.9.4 कृषि रसायन से समुद्री प्रदूषण
16.9.5 सागरीय खनन से उत्पन्न अवसाद
16.9.6 सागरीय डम्पिंग
16.10 विश्व के प्रमुख प्रदूषित सागर एवं महासागर
16.11 महासागरीय प्रदूषण पर नियंत्रण
16.12 निष्कर्ष
अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ

# इकाई-16

# समुद्री संसाधन, सागरीय ऊर्जा संसाधन, समुद्री प्रदूषण के स्त्रोत

## 16.0 प्रस्तावना

हमारे पर्यावरण में उपलब्ध हर वह वस्तु संसाधन कहलाती है जिसका इस्तेमाल हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कर सकते हैं या जिसके समुचित दोहन के लिये हमारे पास प्रौद्योगिकी उपलब्ध है और जिसका इस्तेमाल सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य है । प्रकृति का कोई भी तत्व तभी संसाधन बनता है जब वह मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

भौगोलिक वितरण की दृष्टि से संसाधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है. महाद्वीपीय संसाधन एवं महासागरीय संसाधन । पृथ्वी के स्थल खंड पर पाये जाने वाला संसाधन महाद्वीपीय संसाधन कहलाता है। यही संसाधन आधुनिक विकास एवं औद्योगिक क्रांति का आधार रहा है लेकिन पिछले 300 वर्षों में महाद्वीपीय संसाधनों के तीव्र दोहन के परिणाम स्वरूप उसके समापन का संकट उत्पन्न हो गया है । अतः विकास की तीव्र रफ्तार को बनाये रखने तथा विश्व समुदाय के जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए वैकल्पिक संसाधनों की खोज जरूरी हो गयी है। महासागर, जो कि हमारे पृथ्वी के लगभग 71% भाग पर फैली हुई है, की ओर अब सबकी निगाहें लगी हुई हैं। महासागरीय जल तथा नितल में उपलब्ध समस्त जैविक और अजैविक संसाधनों को महासागरीय या समुद्री संसाधन कहा जाता है । समुद्री खनिज संसाधन खनिज संचय होते हैं जो समुद्र तल पर या उसके नीचे होते हैं और जिनसे धातु, खनिज, तत्व, या समुच्चय को संसाधन के रूप में लिया जा सकता है। महासागरीय जल में भी स्थल भाग वाले समस्त तत्व मिलते है। समुद्री जल एवं इसके नितल में विभिन्न प्रकार के आर्थिक महत्व वाले खनिज संसाधन विद्यमान हैं। प्राचीन ग्रन्थों में भी सागर को अपरिमित शक्ति तथा संसाधनों का स्त्रोत माना गया है।

प्राचीन समय से वर्तमान समय तक मनुष्य की महासागरों के प्रति समझ लगातार परिवर्तित हुई है । मानव जाति की इस परिवर्तित समझ के कारण ही संसाधनों के रूप में महासागरों का महत्व भी बढ़ता चला गया है । हालाँकि तटीय जैविक संसाधनों का भोजन के रूप में उपयोग मानव ने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही सीख लिया था लेकिन मानव के विकास की आरंभिक अवस्था में महासागर तथा सागर हमारे लिए सबसे बड़ा भौतिक अवरोध था । समय के साथ मानव सभ्यता और तकनीकी आगे बढ़ी तो महासागर आवागमन के स्त्रोत के रूप में संचार के सबसे सस्ते और प्रभावशाली संसाधन में बदल गए जिनसे विश्व व्यापार और उपनिवेशवाद दोनों का विस्तार हुआ। विश्व भर में विचारों और सांस्कृतिक सम्प्रेषण में भी उनकी भूमिका सर्पोपरी रही । आज भी समुद्र के नीचे संचार के साधन के रूप में बिछाये जा रहे ऑप्टिकल फाइबर के जाल ने संचार के साधन के रूप में महासागरों के प्रति हमारी समझ को पुन: परिभाषित किया है। इस रूप में महासागर ना केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण संसाधन हैं ।

## 16.1 उद्देश्य

इकाई 16 "समुद्री संसाधन, सागरीय ऊर्जा संसाधन, समुद्री प्रदूषण के स्त्रोत" के अध्ययन के उपरान्त आप:

1. सागरीय संसाधन की व्याख्या कर सकेंगे।
2. सागरीय ऊर्जा संसाधन के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
3. समुद्री प्रदूषण की समस्या का वर्णन कर सकेंगे।

जिन पदार्थों से मनुष्य को घरेलू ईंधन, कृषि, उद्योग तथा परिवहन साधनों हेतु ऊर्जा की प्राप्ति होती है, उन्हें ऊर्जा संसाधन कहा जाता है। प्राचीन काल में मानव ऊर्जा के लिए मानव शक्ति, पशु शक्ति तथा लकड़ी आदि पर निर्भर करता था, परन्तु आज वह जिन पदार्थों से ऊर्जा प्राप्त कर रहा है, उनमें कोयला, खनिज तेल (पेट्रोलियम), प्राकृतिक गैस, पनविद्युत, परमाणु खनिज, सूर्यातप, पवन, भू-गर्भीय ताप, ज्वारीय तरंगें, गन्ने की खोई एवं कूड़ा-कचरा आदि का प्रमुख स्थान है। जैसे-जैसे मनुष्य की ऊर्जा संबधी आवश्यकताओं का विस्तार हुआ है मनुष्य के ऊर्जा प्राप्त करने के स्त्रोत भी बढ़े हैं। पारंपरिक रूप से

मनुष्य अपनी ऊर्जा जरूरतों के लिये जीवाश्म ईंधन पर निर्भर रहा है लेकिन पिछले कुछ दशको में पूरे विश्व में बढ़ती ऊर्जा जरूरतों के लिए गैर-पारंपरिक स्रोत जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, आदि के उपयोग का प्रचलन बढ़ा है। ये गैर पारंपरिक ऊर्जा स्त्रोत अक्षय स्रोत हैं एवं पर्यावरण के अनुकूल भी हैं। महासागर हमें दशको से पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस जैसे अपेक्षाकृत पारम्परिक स्त्रोत उपलब्ध कराते रहे हैं। तथा जब समूचे विश्व की ऊर्जा की समझ में परिवर्तन आया तो एक बार पुन: गैर-परम्परागत स्त्रोतों के लिए भी हम महासागरों की और निहार रहे हैं। अत: समुद्र/महासागर हमारे लिए दोनों किस्म की ऊर्जा का सबसे बड़ा स्त्रोत हैं।

## 16.2 समुद्री संसाधनों के प्रकार

समुद्री संसाधन को चार प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है-:

क- खाद्य संसाधन

ख- रासायनिक संसाधन

ग - खनिज संसाधन एवं

घ- उर्जा संसाधन

ड- अन्य संसाधन

### 16.2.1 खाद्य संसाधन

समुद्री स्त्रोत के कई प्रकार के खाद्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनमें मछली, समुद्री वनस्पति, हिमशिला खंड से प्राप्त स्वच्छ जल तथा मानवीय उपयोग में लाये जा रहे सामान्य नमक प्रमुख हैं। इन प्रदार्थो में मछली का सर्वप्रथम स्थान है। विकासशील देशों में इस प्रकार के प्रदार्थ की आपूर्ति में वृद्धि होने से खाद्य एवं पोषक आहार की समस्या का समाधान हो सकता है। सागरों में करीब 5000 प्रकार की मछलियां पाई जाती है परंतु केवल 500 प्रकार की मछलियों का ही दोहन हो पाता है।

सागरीय मछली को गहनसागरीय (पेलेजिक) और तलमज्जी (डिमरसल) इन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पेलेजिक मछली गहन सागरीय क्षेत्र में पाये जाते हैं। डेरिंग और सारिडिन इसी प्रकार की

मछली है। डियरसल छिछले सागरों में पायी जाती है। कॉड हेलिबुट इस वर्ग की प्रमुख मछलियों हैं। करीब 90 प्रतिशत समुद्री मछली का उत्पादन प्रशांत एवं अटलांटिक महासागरों में होता है । हिन्द्र महासागर से मात्र 10 प्रतिशत मछली की प्राप्ति होती है। मछली उत्पादन की दृष्टि से पांच भौगोलिक प्रदेश विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

i. उत्तरीय पश्चिमी प्रशान्त महासागर :- ताइवान से बेरिंग स्ट्रेट तक विस्तृत इस क्षेत्र में जापान एवं चीन जेसे बड़े उत्पादक देश आते हैं। चीन मछली उत्पादन में एवं जापान व्हेल मछली उत्पान में विश्व में प्रथम हैं।

ii. उत्तरी पूर्वी प्रशान्त महासागर :- इसका विस्तार मैक्सिको तट से लेकर बेरिंग स्ट्रेट तक है मैक्सिको, यू.एस.ए एवं कनाडा इस क्षेत्र के प्रमुख उत्पादक हैं । विश्व में सर्वाधिक हेलीबुट मछली इसी प्रदेश में प्राप्त होता है ।

iii. उत्तरी पश्चिमी अटलांटिक :- न्यूफाउंडलैंड का तटवर्ती क्षेत्र एवं ग्रांड बैंक सहित लगभग 96,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर विस्तृत यह विश्व का वृहद मछली उत्पादक क्षेत्र है । गल्फ स्ट्रीम की गर्म जलधारा एवं लेब्रोडोर की ठंडी धारा के मिलन से इस क्षेत्र में प्लैंकटन के विकास की अनुकूल परिस्थति है।

iv. उत्तरी पूर्वी अटलांटिक :- स्पेन तट से उजला सागर तक विस्तृत यह क्षेत्र कॉड मछली का ( विश्व का 60 प्रतिशत) सबसे बड़ा उत्पादक है । नार्वे एवं डोगर बैंक इस क्षेत्र के प्रमुख मछली उत्पादक हैं ।

v. पेरू का तटवर्ती क्षेत्र - पेरू एवं उत्तरीय चिली तट पर विस्तृत इस क्षेत्र में छिछले सागर की अपेक्षा गहन सागरीय मछलियों की बहुलता है ।

उपरोक्त क्षेत्रों के अलावा हिंद महासागर में भारत एवं दक्षिण अफ्रीका का तटवर्ती क्षेत्र, दक्षिणी चीन सागर, मध्य अमेरिका का तटवर्ती क्षेत्र तथा अर्जेन्टीना एवं ब्राजील के तटवर्ती क्षेत्रों में भी मछली व्यवसाय का तेजी से विकास हो रहा है।

इसके अतिरिक्त जापान में समुद्री घास से भी खाद्य पदार्थ का उत्पादन किया जा रहा है । इन घासों से प्रतिवर्ष 2 लाख टन तक खाद्य पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं । सउदी अरब जैसे देश हिमशिलाखण्डों से स्वच्छ जल प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है। संयुक्त अरब अमीरात एवं कुवैत जैसे देशों में समुद्री जल को साफ कर स्वच्छ जल बनाने का संयंत्र लगाया गया है । समुद्र जल से प्राप्त सामान्य नमक का खाद्य उपयोग विश्व के अधिकतर देशों **में** होता है ।

### 16.2.2 रासायनिक संसाधान

समुद्री जल में करीब 40 प्रकार के रासायनिक तत्व पाये जाते हैं। इनमें से तीन तत्वों का विशेष महत्व है- सामान्य नमक, सोडियम सल्फेट एवं मैग्नेशियम कम्पाउण्डस । सोडियम सल्फेट तथा मैग्नेशियम कम्पाउण्डस का उपयोग कई प्रकार के उद्योगो में प्रमुखता से होता है । मैग्नेशियम कम्पाउण्डस का मुख्यतः उपयोग वायुयान उद्योगों में होता है । इन दोनों ही रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में यू. एस. ए अग्रणी है । इसके अतिरिक्त समुद्री जल में सोडियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, एवं कैल्शियम आदि धनात्मक आयम तथा क्लोराइड, सल्फेट, हाइड्रोकार्बोनेट तथा ब्रोमाइड आदि ऋणात्मक आयन भी प्रचुरता से उपलब्ध है।

### 16.2.3 खनिज संसाधन

समुद्री वातावरण को खनिज संसाधनों का भण्डार गृह माना जाता है । भौगोलिक वितरण की दृष्टि से समुद्री खजिन संसाधनों को दो वर्गो में रखा जाता है, प्रथम; छिछले सागर के खनिज एवं द्वितीय, गहन सागरीय खनिज ।

वर्तमान में अधिकतर समुद्री खनिजों का उत्पादन छिछले सागरों से होता है । इनमे ऊर्जा के संसाधन जैसे पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं । अभी विश्व का करीब 20 प्रतिशत पेट्रोलियम समुद्री स्त्रोतों से प्राप्त होता है । समुद्री क्षेत्र के लगभग 14 प्रतिशत क्षेत्रफल पेट्रोलियम के संचित भंडार होने का अनुमान है । इसी प्रकार प्राकृतिक गैस का संचित भंडार करीब 90,325 हजार मिलियन घन मीटर है । कई देशों में शतप्रतिशत ऊर्जा संसाधन के उत्पादन का आधार समुद्री स्त्रोत ही है । यू.के,

आयरलैंड तथा आइसलैंड इसके उदाहरण हैं। उत्तरी सागर सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा उत्पादन क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण अन्य उत्पादक क्षेत्रों में अरब सागर, मध्यपूर्व का खाड़ी क्षेत्र, भूमध्य सागर, लाल सागर, कैस्पियन सागर, कैलिफोर्निया की खाड़ी, बास स्टेट, दक्षिणी चीन सागर और जापान सागर प्रमुख हैं।

छिछले सागरीय क्षेत्र में और भी कई प्रकार के खनिजों का उत्पादन प्रारंभ हुआ है जैसे मलेशिया द्वारा टीन का उत्पादन, दक्षिण अफ्रीका में हीरा, जापान द्वारा लौह अयस्क तथा यू. एस. ए में कैलिफोर्निया तट पर सोना का उत्पादन आदि।

गहन सागरीय क्षेत्र में वाणिज्यिक रूप से खनिज उत्पादन का कार्य अभी प्रायोगिक स्तर पर ही किया जा रहा है। वस्तुतः गहन सागरीय क्षेत्र का दोहन वर्तमान तकनीक के आधार पर अत्यधिक खर्चीला एवं श्रमसाध्य है। गहन सागरीय क्षेत्र को बहुधात्विकखनिजों का क्षेत्र कहा जाता है। 3500 मीटर से 6000 मीटर की गहराई के बीच इस प्रकार के खनिजों की बहुलता है। सागरों की जटिल रासायनिक प्रक्रिया के कारण संचित भण्डार में लगातार वृद्धि हो रही है । करीब 46 मिलियन वर्ग किमी समुद्री क्षेत्र में वृहद संचित भंडार की संभावना व्यक्त की जा रही है। एक अनुमान के अनुसार इसमें विश्व का 48 प्रतिशत सल्फर, 43 प्रतिशत लोहा और 11 प्रतिशत तांबा यहाँ संचित है; अन्य खनिजों में जिंक, सीसा तथा चांदी प्रमुख हैं; अरब सागर में मैग्जीन और निकेल के भी संचित भंडार का पता चला है;

### 16.2.4 उर्जा संसाधन

एक ओर महासागरों से पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस जैसे ऊर्जा स्त्रोत प्राप्त होते हैं तो दूसरी ओर आधुनिक तकनीकी ने समुद्रों से प्रत्यक्ष ऊर्जा के स्त्रोत भी खोज निकाले हैं। समुद्री स्त्रोत से प्राप्त उर्जा को दो वर्गों में रखते हैं: प्रथम; समुद्री सतह से प्राप्त उर्जा एवं द्वितीय; समुद्री जल से प्राप्त उर्जा । सतह से प्राप्त उर्जा के अंतर्गत पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस आते हैं। समुद्री जल से उर्जा दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है; ज्वारीय उर्जा, एवं भू-तापीय ऊर्जा। अगले अध्याय में ऊर्जा के इन संसाधनों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जायेगा।

### 16.2.5 अन्य संसाधन

उपरोक्त वर्णित संसाधनों के अतिरिक्त समुद्री वातावरण से अन्य कई प्रकार के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संसाधन प्राप्त होते हैं। इन संसाधनों में प्रमुख निम्नांकित हैं-

अ. समुद्री वातावरण से अनेक प्रकार के आकर्षक मूंगा चट्टान प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग सौंदर्य सामग्री के रूप में सीमेंट आदि उद्योगों के लिए कच्चा माल के रूप में होता है।

आ. समुद्रतटीय क्षेत्रों में अनेक प्रकार के ज्वारीय वनस्पति एवं जीव जन्तु प्राप्त होते हैं। सुन्दरवन के क्षेत्र में सुन्दरी आदि वृक्ष कागज उद्योग में उपयोगी है।

इ. तटीय प्रवाल भित्ति न केवल अपनी खुबसूरती के लिए प्रसिद्ध हैं बल्कि ये तटीय अपरदन को रोकन में भी उपयोगी है।

ई. समुद्री तरंगें अपेन साथ शंख, सीप आदि अनेक उपयोगी वस्तुएं तट पर छोड़ जाती है एवं लौटती लहरें अपने साथ तटीय क्षेत्र के कचड़े को अपने साथ वापस समुद्र में ले जाती है। शंख, सीप आदि का उपयोग सीमेन्ट उद्योग में कच्चे माल के रूप में होता है।

उ. समुद्र परिवहन का उत्तम मार्ग प्रस्तुत करता है। आज भी विश्व व्यापार का 80 प्रतिशत से अधिक समुद्री मार्ग से ही संचालित होता है।

ऊ. समुद्री जल अतिरिक्त कार्बनडाइऑक्साइड का शोषण कर पर्यावरण शुद्धीकरण में भी उपयोगी है। जल चक्र किया आदि समुद्री जल से ही संचालित होते हैं। साथ ही समुद्री जल विश्व स्तर पर तटीय वितरण का कार्य भी करते हैं, आदि।

पिछले कुछ वर्षो के दौरान समुद्री संसाधन के उपयोग में तेजी से वृद्धि होने के साथ-साथ समुद्री वातावरण के प्रदूषण की समस्या भी तेजी से बढ़ी है। मानवीय अपशिष्ट, औद्योगिक नगरीय, कृषि आदि गतिविधियों से जनित तरल एवं ठोस कचड़ों को समुद्र में बहाये जाने के कारण अधिकांश क्षेत्रों में तटीय समुद्री वातावरण प्रदूषित को चुका है। समुद्री परिवहन में वृद्धि होने से समुद्री जल में तेल रिसाव की समस्या भी काफी बढ़ चुकी है। उत्तरी अटलांटिक समुद्री मार्ग और उत्तरी मार्ग ओर उत्तरी सागर का जल

इतना अधिक प्रदूषित हो चुका है कि अनेक प्रकार के समुद्री मछलियों, प्रवाल भित्तियां तथा अनेक प्रकार की वनस्पतियां तो लुप्त हो चुकी हैं या फिर विलुप्त होने के कगार पर हैं।

## 16.3 समुद्री संसाधनों का महत्व

समुद्री संसाधनों में महाद्वीपीय जलमग्न सीमा (कॉन्टिनेंटल शेल्फ), समुद्री जल, समुद्री खनिज जैसे बहुरूपी पिंड (पॉलीमेट्रिक नोड्यूल), समुद्री भोजन, समुद्री ऊर्जा जैसे अपतटीय तेल और गैस और ज्वारीय ऊर्जा, समुद्री पर्यटन, समुद्री बंदरगाह, रणनीतिक स्थिति और कई और अधिक शामिल हैं। विश्व भर में तीन अरब से अधिक लोग अपनी आजीविका के लिए समुद्री और तटीय संसाधनों पर निर्भर हैं। भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान विभागकी नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार, भारत के सकल घरेलू उत्पाद का ४.१% सीधे समुद्री संसाधनों से आता है।

महासागर वैश्विक खाद्य सुरक्षा और मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। वे वैश्विक जलवायु के प्राथमिक नियामक भी हैं, ग्रीनहाउस गैसों के लिए एक महत्वपूर्ण सिंक हैं और वे हमें पानी और ऑक्सीजन प्रदान करते हैं जिससे हम सांस लेते हैं। समुद्री संसाधन आर्थिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये जीडीपी की मात्रा और जीवन की गुणवत्ता दोनों को बढ़ाते हैं। अर्थव्यवस्था में समुद्री संसाधनों का योगदान लैंडलॉक और तटीय देशों के विकास के अंतरों में देखा जा सकता है। समुद्री संसाधनों के कारण ही मध्य एशियाई देशों की तुलना में दक्षिणपूर्व एशियाई देश अधिक आर्थिक रूप से विकसित हैं।

बढ़ती मानव आबादी के कारण भूमि संसाधनों पर बोझ दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और कुछ क्षेत्रों में यह निरंतर अरक्षणीय स्तर तक पहुंच गया है; समुद्री संसाधन इन समस्याओं के विकल्प हैं। यह पर्यावरणीय जोखिम को कम करता है और पारिस्थितिक चुनौतियों को कम करता है। विश्व के अनेक देश पोषण सुरक्षा की समस्या से ग्रसित हैं । समुद्री भोजन जैसे मछली, ज़ोप्लांकटन, फाइटोप्लांकटन बहुत सारे भोजन पोषक तत्वों से भरे हुए हैं जो वैश्विक पोषण सुरक्षा समस्या को हल कर सकते हैं; इसी प्रकार विश्व की बढती ऊर्जा जरूरतों का समाधान भी महासागरों में छुपा है। मसलन डेनमार्क एक कृत्रिम ऊर्जा द्वीप का निर्माण कर रहा है, यह स्वच्छ ऊर्जा प्रदान करेगा।

### 16.4 समुद्री संसाधनों पर नियंत्रण सम्बन्धी कानून

महासागर केवल संसाधनों के स्रोत नहीं है। इन संसाधनों पर राष्ट्रों के नियंत्रण से जुड़े सतत संघर्ष भी विश्व राजनीति को लगातार प्रभावित करते रहे हैं। दक्षिण चीन सागर में चीन द्वारा कृत्रिम द्वीपों का निर्माण और इससे जुड़े विवाद कतिपय हमारा ध्यान आकर्षित करते रहते हैं। इन विवादों के सर्वस्वीकृत समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुद्र संबंधी कानून भी अस्तित्व में हैं जिसे संयुक्त राष्ट्र समुद्री कानून संधि (United Nations Convention on the Law of the Sea) के नाम से जाना जाता है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जो विश्व के सागरों और महासागरों पर देशों के अधिकार एवं ज़िम्मेदारियों का निर्धारण करता है तथा समुद्री साधनों के प्रयोग के लिये नियमों की स्थापना करता है। संयुक्त राष्ट्र ने इस कानून को वर्ष 1982 में अपनाया था लेकिन यह 16 नवंबर 1994 में प्रभाव में आया। भारत ने वर्ष 1995 में UNCLOS को अपनाया, इसके तहत समुद्र के संसाधनों को तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है- आंतरिक जल (IW), प्रादेशिक सागर (TS) और अनन्य आर्थिक क्षेत्र (EEZ)।

i. **आंतरिक जल (Internal Waters-IW):** यह बेसलाइन की भूमि के किनारे पर होता है तथा इसमें खाड़ी और छोटे खंड शामिल हैं।

ii. **प्रादेशिक सागर (Territorial Sea-TS):** यह बेसलाइन से 12 समुद्री मील की दूरी तक फैला हुआ होता है। इसके हवाई क्षेत्र, समुद्र, सीबेड और सबसॉइल पर तटीय देशों की संप्रभुता होती है एवं इसमें सभी जीवित और गैर-जीवित संसाधन शामिल हैं। प्रादेशिक समुद्र पर तटीय देशों की संप्रभुता और न्यायाधिकार का क्षेत्र है। लेकिन तटीय देशों के अधिकार प्रादेशिक समुद्र से गुजरने वाले सामुद्रिक मार्गों के मामलों में सीमित होते हैं।

iii. **अनन्य आर्थिक क्षेत्र ( Exclusive Economic Zone-EEZ):** EEZ बेसलाइन से 200 नॉटिकल मील की दूरी तक फैला होता है। इसमें तटीय देशों को सभी प्राकृतिक संसाधनों की खोज, दोहन, संरक्षण और प्रबंधन का संप्रभु अधिकार प्राप्त होता है।

### 16.5 सागरीय ऊर्जा संसाधन

#### 16.5.1 परम्परागत सागरीय ऊर्जा संसाधन: पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस

मानव द्वारा प्रयुक्त पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस दो सर्वप्रमुख ऊर्जा स्रोत है जिनका प्रचुर भंडार महासागरों में निहित हैं। इन ऊर्जा स्रोतों का निर्माण वनस्पतियों और जीवों के भूगर्भ में दबने के कारण हुआ है, इसलिए इन्हें जीवाश्म ऊर्जा स्रोत भी कहा जाता है। ये ईंधन भूगर्भ में करोड़ों वर्षों में बनते हैं तथा इनकी उपलब्धता सीमित स्थानों तक ही है। समुद्री सतह के खनन के द्वारा इनको प्राप्त किया जाता है।

विश्व के कुल कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस का लगभग एक तिहाई हमे महासागरों से प्राप्त होता है। 2015 में 50 से अधिक देशों में 27 मिलियन बैरल से अधिक तेल का अपतटीय उत्पादन किया गया था। वैश्विक अपतटीय उत्पादन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कुछ देशों में केंद्रित है। 2015 में, पांच देशों ने सऊदी अरब, ब्राजील, मैक्सिको, नॉर्वे और संयुक्त राज्य अमेरिका ने कुल अपतटीय तेल उत्पादन का 43% उत्पादन किया था।

पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस महासागर के सबसे मूल्यवान संसाधन हैं। 1980 एवं 1990 दशकों में तेल की वैश्विक मांग में प्रति वर्ष 2% से अधिक की वृद्धि होती रही है। साथ ही साथ २१वीं सदी में भारत एवं चीन जैसी बड़ी अर्थव्यवस्थाओ के उभार ने इस माँग को और भी तीव्र किया है। 2022 में लगभग 90 मिलियन बैरल से अधिक कच्चे तेल का प्रतिदिन औसत उत्पादन हुआ। जिसका एक बड़ा हिस्सा महासागरों से प्राप्त हुआ।

विशाल एवं आसानी से शोषित किये जा सकने वाले नए तेल क्षेत्रो का मिलना लगभग निश्चित रूप से अतीत की बात हैं। अर्थात ना केवल पृथ्वी की सतह पर पर बल्कि महासागरों के भी बड़े तेल क्षेत्रो की खोज हो चुकी है तथा उनका दोहन जारी है। इसके अतिरिक्त महासागरों से तेल एवं गैस का उत्पादन करने हेतु विशिष्ट तकनीकी तथा मशीनरी की आवश्यकता पड़ती है जिससे उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। अपतटीय तेल की ड्रिलिंग जमीन पर भूमि की तुलना में कहीं अधिक महंगा है क्योंकि इसके लिए विशेष ड्रिलिंग उपकरण और परिवहन व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है। वर्तमान में अधिकांश समुद्री तेल अपतटीय प्लेटफॉर्मों से निक्षेपों का दोहन किया जाता है जहाँ जल की औसत गहराई 100 मीटर (330 फीट) से कम है। वर्तमान में, सबसे लंबा और सबसे भारी प्लेटफॉर्म स्टेटफजॉर्ड-बी है 1981 के बाद से शेटलैंड द्वीप समूह के उत्तर-पूर्व में उत्तरी सागर कार्यरत है। हालांकि, तेल की मांग (और

इसलिए कीमत) में वृद्धि जारी है अत: तट से दूर गहरे निक्षेपों का दोहन भी भविष्य में किया जाएगा जिससे उत्पादन लागत में और अधिक वृद्धि की संभावनाएं हैं। ऐसे में अपेक्षाकृत सस्ते वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोतों की और ध्यान जाना स्वाभाविक बात है।

पारम्परिक ऊर्जा स्रोत्रों से प्राप्त ईंधन (ऊर्जा) का उपयोग लम्बे समय से दिन प्रतिदिन के कार्यों के निष्पादन के लिए किया जाता रहा है। चूँकि ये प्राकृतिक संसाधन अनवीकरणीय हैं अतः इनका अति तथा अविवेकपूर्ण उपयोग निकट भविष्य में ही हमें इन संसाधनों से वंचित कर देगा। इसके अतिरिक्त ऊर्जा प्राप्ति के जीवाश्म ईंधन के उपयोग से अनेक प्रकार की गैसें व कणीय पदार्थ उत्सर्जित होते हैं जो पर्यावरण में प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि होना, वायु प्रदूषण, अम्ल वर्षा, तेल रिसाव आदि जीवाश्म ईंधन के उपयोग के दुष्परिणाम हैं, जो पर्यावरण के लिए क्षतिकारक हैं। हमें अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों के उपयोग को सीमित कर देना चाहिए तथा उनके स्थान पर नवीकरणीय अर्थात् असीमित ऊर्जा संसाधनों का उपयोग करना चाहिए। सौभाग्य से समुद्र नवीकरणीय गैर-परंपरागत ऊर्जा स्त्रोतों के भी बड़े स्त्रोत हैं।

### 16.5.2 गैर परम्परागत सागरीय ऊर्जा संसाधन

आज भी ऊर्जा के परम्परागत स्रोत महत्वपूर्ण हैं, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता, तथापि ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोतों अथवा वैकल्पिक स्रोतों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इससे एक ओर जहां ऊर्जा की मांग एवं आपूर्ति के बीच का अन्तर कम हो जाएगा, वहीं दूसरी ओर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का संरक्षण होगा, पर्यावरण पर दबाव कम होगा, प्रदूषण नियंत्रित होगा, ऊर्जा लागत कम होगी और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक जीवन स्तर में भी सुधार हो पाएगा। नवीकरणीय ऊर्जा प्रणाली सूर्य, हवा, गिरते पानी, समुद्र की लहरों, भू-तापीय ताप, या बायोमास से ऊर्जा को गर्मी या बिजली में बदल देती है जिसका मनुष्य उपयोग कर सकता है। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत, जिन्हें अक्सर गैर-पारंपरिक ऊर्जा के रूप में जाना जाता है, ऐसे स्रोत हैं जिन्हें प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा निरंतर आधार पर नवीनीकृत किया जाता है। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैव-ऊर्जा, जल विद्युत, ज्वारीय एवं तरंग ऊर्जा इसके कुछ उदाहरण हैं। सौर एवं पवन ऊर्जा के साथ-साथ सागरीय ऊर्जा के विभिन्न रूप भी भविष्य में ऊर्जा उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे। महासागर दो प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न

कर सकता है: सूर्य की गर्मी से तापीय ऊर्जा, और ज्वार और लहरों से यांत्रिक ऊर्जा। 7515 किलोमीटर लम्बी तटरेखा के साथ भारत में सागरीय ऊर्जा के उत्पादन की अभूतपूर्व संभावनाएं हैं।भारत में गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत विभाग की स्थापना 1982 में की गई थी। आगे महासागरों से प्राप्त ऊर्जा के विभिन्न रूपों को वर्णित किया गया है।

महासागर तापांतर, तरंगों, ज्चार-भाटा और महासागरीय धाराओं के रूप में नवीकरणीय ऊर्जा का स्रोत है, जिससे पर्यावरण-अनुकूल तरीके से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। ज्वारीय ऊर्जा, तरंग ऊर्जा तथा समुद्री तापीय ऊर्जा रूपांतरण तीन बेहद उन्नत प्रविधियां हैं। वर्तमान में व्यापक प्रौद्योगिकीय अन्तराल और सीमित संसाधनों के कारण समुद्र से उर्जा प्राप्त करने की सीमित मात्रा है।

### 16.5.2.1 ज्वारीय ऊर्जा

ज्वारीय शक्ति या ज्वारीय ऊर्जा जल विद्युत का एक रूप है जो ज्वार से प्राप्त ऊर्जा को मुख्य रूप से बिजली के उपयोगी रूपों में परिवर्तित करती है। समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटा की उर्जा को उपयुक्त टर्बाइन लगाकर विद्युत शक्ति में बदल दिया जाता है। इसमें दोनो अवस्थाओं में विद्युत शक्ति पैदा होती है - जब पानी ऊपर चढ़ता है तब भी और जब पानी उतरने लगता है तब भी। इसे ही ज्वारीय ऊर्जा कहते हैं। यह एक अक्षय उर्जा का स्रोत है। ज्वारीय बिजली उत्पादन के लिए आने वाले और बाहर जाने वाले ज्वार को रोकने के लिए एक मुहाना में बैराज का निर्माण आवश्यक है। पनबिजली बांधों की तरह, पानी के शीर्ष का उपयोग टर्बाइनों को चलाने के लिए किया जाता है जो बेसिन में उठे हुए पानी से ऊर्जा पैदा करते हैं। भाटा, बाढ़ या नदी के दोनों किनारों पर बिजली पैदा करने के लिए बैराज बनाए जा सकते हैं। स्थान के आधार पर ज्वार की सीमा 4.5 से 12.4 मीटर तक हो सकती है। हालाँकि लागत प्रभावी संचालन और टर्बाइनों के लिए पानी की पर्याप्त मात्रा के लिए, कम से कम 7 मीटर की ज्वारीय सीमा आवश्यक है।

यूरोप में लोगों ने सबसे पहले 1,000 साल पहले अनाज मिलों को संचालित करने के लिए ज्वारीय ऊर्जा का इस्तेमाल किया था। 1920 में, डेक्सटर कूपर के नाम से एक अमेरिकी इंजीनियर को ज्वार से बिजली बनाने का विचार आया, जिसे उन्होंने कॉब्सकुक और पासमाक्वाडी बे क्रियान्वित करनेकाइरादा किया

जिसकी औसत गहराई लगभग 10 मीटर है। विश्व स्तर पर फ्रांस में स्थित 240 मेगावाट की ला रेंस स्टेशन (1966 में स्थापित) और दक्षिण कोरिया में स्थित 254 मेगावाट की सिहवा संयंत्र (2011 में स्थापित) नामक दो ज्वारीय ऊर्जा परियोजनाओं का विश्व में ज्वारीय ऊर्जा की कुल स्थापित क्षमता में 90% से अधिक का योगदान है।

भारत के सन्दर्भ में दिसंबर 2014 में 'क्रिसिल रिस्क एंड इंफ्रास्ट्रक्चर सॉल्यूशंस लिमिटेड' के सहयोग से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार, देश की ज्वारीय विद्युत क्षमता लगभग 12,455 मेगावाट अनुमानित है। भारत सरकार के अनुमानों के अनुसार, गुजरात में खंभात की खाड़ी तथा कच्छ की खाड़ी और पश्चिम बंगाल के सुंदरबन क्षेत्र में गंगा नदी मुख-भूमि में ज्वारीय ऊर्जा के मुख्य संभाव्य क्षेत्र हैं। सुन्दरबन क्षेत्र के दुर्गादुआनी क्रीक में फरवरी 2008 में पश्चिम बंगाल नवीकरणीय ऊर्जा विकास एजेंसी (डब्ल्यूबीआरईडीए) द्वारा 3.75 मेगावाट क्षमता का ज्वारीय शक्ति प्रोजेक्ट स्थापित किया गया। इस प्रोजेक्ट का मुख्य उद्देश्य पश्चिम बंगाल के दक्षिण में 24 परगना जिले में स्थित गोसाबा और बाली विजयनगर द्वीपों के 11 गांवों में विद्युत आपूर्ति करना है। देश में ज्वारीय विद्युत शक्ति का दोहन करने के पूर्व प्रयास प्रति मेगावाट उच्च पूंजीगत लागत के कारण सीमित रहे हैं। वर्तमान में, बहुत अधिक पूंजीगत लागत के कारण, भारत सरकार ने ज्वारीय ऊर्जा के उत्पादन के लिए कोई नीति या कार्यक्रम लागू नहीं किया है।

### 16.5.2.2 महासागरीय तापीय ऊर्जा

महासागर पृथ्वी की सतह के 70% से अधिक को घेरते हैं, जिससे वे ग्रह पर सबसे बड़े सौर संग्राहक बन जाते हैं। गहरे समुद्र के पानी की तुलना में सूरज ऊपरी पानी को कहीं अधिक गर्म करता है, इस प्रक्रिया में तापीय ऊर्जा का भंडारण करता है। महासागर नवीकरणीय ऊर्जा का स्रोत है, जिससे पर्यावरण-अनुकूल तरीके से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। समुद्री तापीय ऊर्जा रूपांतरण तकनीक (ओटीईसी) ने समुद्र की ऊपरी सतह के तापमान और 1,000 मीटर या अधिक की गहराई के तापमान के बीच तापांतर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए बेहतर काम किया। भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देशों में, यह रणनीति बेहतर तरीके से काम करती है क्योंकि यहां पर समुद्री तापमान 25°C तक हो जाता है।

समुद्र अथवा महासागर की सतह का जल सूर्यताप द्वारा गरम हो जाता है जबकि इनके गहराई वाले भाग का जल अपेक्षाकृत ठंडा होता है । ताप में इस अंतर का उपयोग सागरीय तापीय ऊर्जा रूपांतरण संयंत्र (Ocean Thermal Energy Conversion Plant या OTEC) द्वारा ऊर्जा बनाने के लिए किया जाता है। यह संयंत्र तभी प्रभावशाली ढंग से काम करते हैं जब समुद्र तल से 2 किलोमीटर के अन्दर तापमान में 20 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान का अन्तर हो । ओटीईसी तकनीक के तहत ऊर्जा उत्पादन के लिए अमोनिया जैसे कम क्वथनांक वाले पदार्थ को समुद्र की उपरी गर्म सतह के तापमान का उपयोग तरल पदार्थ को वाष्पीकृत करने के लिए होता है। जैसे जैसे वाष्प फैलती है वह बिजली पैदा करने के लिए जनरेटर से जुड़े टरबाइन को घुमाती है। वाष्प को तब समुद्र की गहरी परत से पंप किये गए ठंडे समुद्री जल द्वारा जिसका तापमान लगभग 5 डिग्री सेल्सियस होता है, ठंडा किया जाता है। यह ठंडा जल अमोनिया को वापस तरल में संघनित करता है, इसलिए इसका पुन: उपयोग किया जा सकता है। यह एक सतत बिजली उत्पादन चक्र है। चक्र की दक्षता तापमान के अंतर से दृढ़ता से निर्धारित होती है। तापमान का अंतर जितना बड़ा होगा, दक्षता उतनी ही अधिक होगी। इसलिए यह प्रौद्योगिकी मुख्य रूप से भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में व्यवहार्य है जहां साल भर तापमान का अंतर कम से कम 20 डिग्री सेल्सियस है।

अमेरिका के हवाई द्वीप में मकाई ओशन इंजीनियरिंग का महासागर तापीय ऊर्जा रूपांतरण (ओटीईसी) बिजली संयंत्र 100kW की वार्षिक बिजली उत्पादन क्षमता के साथ अपनी तरह की दुनिया की सबसे बड़ी परिचालन सुविधा है, जो हवाई में 120 घरों को बिजली देने के लिए पर्याप्त है। वर्ष 2022 से ही राष्ट्रीय महासागर प्रौद्योगिकी संस्थान, गोवा जो कि केंद्रीय पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त संस्थान है लक्षद्वीप की राजधानी कवारत्ती के निकट 65 किलोवाट (kW) की क्षमता के साथ एक महासागर तापीय ऊर्जा रूपांतरण संयंत्र स्थापित कर रहा है।

### 16.5.2.3 महासागरीय तरंग ऊर्जा

तरंग ऊर्जा वह ऊर्जा है जो तरंगों की गति से उत्पन्न होती है। लहरें पानी की सतह पर बहने वाली हवा से पैदा होती हैं। बिजली उत्पन्न करने के लिए तरंगों में निहित गतिज ऊर्जा का उपयोग किया जाता है। तरंग ऊर्जा का एक स्वच्छ स्रोत जो ग्रीनहाउस गैसों या अन्य प्रदूषकों का उत्सर्जन नहीं करता है।

तरंग ऊर्जा के आमतौर पर फ्लोटिंग टर्बाइन का उपयोग किया जाता है जो कि लहरों के उतार-चढ़ाव के साथ उठती और गिरती हैं। तरंगों का उतार-चढ़ाव हाइड्रोलिक पंपों से जुड़े जोड़ों में एक फ्लेक्सिंग मोशन बनाता है जो एक जनरेटर को चलाता है, जिससे बिजली पैदा होती है। बिजली को समुद्र के नीचे एक केबल के माध्यम से किनारे तक ले जाया जाता है। यह ऊर्जा अपतटीय उद्योगों, समुद्री जीवों की कृषि, नेविगेशन में तैनात महासागर सेंसरों जैसी प्रणालियों को स्थानीय रूप से स्रोत ऊर्जा प्रदान कर सकती है। अभी तक तरंग यह ऊर्जा बैटरी आधारित है जिसके कारण उसकी एक सीमित उपयोगिता है।

विश्व का प्रथम क्रियाशील ऑपरेशनल वेव पॉवर जनरेटर पुर्तगाल के अगुकाडोरा के तट पर स्थित है, जो अटलांटिक महासागर की सतह पर तैरने वाले तीन विशाल संयुक्त ट्यूबों से 2.25 मेगावाट तक का उत्पादन करता है । भारत का पहला वेव पावर स्टेशन विझिंजम वेव एनर्जी प्लांट (केरल के तिरुवनंतपुरम शहर में विझिंजम में स्थित है) 1991 में स्थापित किया गया था। यह दुनिया का पहला वेव पावर प्लांट है जो ऑसिलेटिंग वाटर कॉलम (OWC) तकनीक पर काम करता है।

## 16.6 समुद्री प्रदूषण

प्रदूषण को पारिस्थितिकी तंत्र में संदूषण के किसी भी रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो इस पारिस्थितिकी तंत्र मौजूद जीवों पर हानिकारक प्रभाव डालता है । प्रदूषण, वनस्पतियों या पशु प्रजातियों के प्रजनन एवं विकास दर में हस्तक्षेप करता है अथवा मानव जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है । व्यापक अर्थ में, प्रदूषण में भौतिक संशोधन या एक आक्रामक प्रजाति की उपस्थिति भी शामिल है जो पर्यावरण में पारस्परिक ऊर्जा प्रवाह को बदलता है ।

समुद्री प्रदूषण के वैज्ञानिक पहलुओं पर विशेषज्ञ समूह (जीईएसएएमपी) द्वारा समुद्र के कानून पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन 1982 (अनुच्छेद 1.4) के बुनियादी ढांचे में समुद्री प्रदूषण परिभाषित को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "मनुष्य द्वारा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, पदार्थों या ऊर्जा को समुद्री पर्यावरण (नदमुखों सहित) में लाना जिसके परिणामस्वरूप जीवित संसाधनों को नुकसान हो, मानव स्वास्थ्य के लिए खतरे बढ़ें, मछली पकड़ने सहित समुद्री गतिविधियों में बाधा उत्पन्न हो अथवा किसी भी सामान्य उपयोग के लिए प्रयुक्त समुद्री जल की गुणवत्ता में कमी उत्पन्न हो" ।

महासागर प्रदूषण एक जटिल मिश्रण है जो पारे, प्लास्टिक कचरे, निर्मित रसायनों, पेट्रोलियम कचरे, कृषि अपवाह, और जैविक खतरों जैसे हानिकारक शैवाल प्रस्फुटन से बना है। समुद्री प्रदूषण रसायनों और कचरे का एक जटिल संयोजन है, जिनमें से अधिकांश भूमि स्रोतों से बहकर आता है या समुद्रों में जानबूझकर या दुर्घटनावश डाल दिया जाता है । समुद्री प्रदूषण तब होता है जब रसायन, कण, औद्योगिक, कृषि और रिहायशी कचरा, शोर या आक्रामक जीव महासागर में प्रवेश करते हैं और हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। समुद्री प्रदूषण के ज्यादातर स्रोत थल आधारित होते हैं। प्रदूषण अक्सर कृषि अपवाह या वायु प्रवाह से पैदा हुए कचरे जैसे अस्पष्ट स्रोतों से होता है। इस प्रदूषण के परिणामस्वरूप पर्यावरण, सभी जीवों के स्वास्थ्य और दुनिया भर में आर्थिक संरचनाओं को नुकसान होता है।

जब कीटनाशक समुद्री पारिस्थितिक तंत्र में शामिल होते हैं तो वो समुद्री फूड वेब में बहुत जल्दी सोख लिए जाते हैं। एक बार फूड वेब में शामिल होने पर ये कीटनाशक उत्परिवर्तन और बीमारियों को अंजाम दे सकते हैं, जो समुद्री खाद्य शृंखला एवं मनुष्यों के लिए हानिकारक हो सकते हैं । इसी तरह ज़हरीली धातुएं भी समुद्री फूड वेब में शामिल हो सकती हैं। इस तरह समुद्री विषाणु भू-थल जीवों में स्थानांतरित हो जाते हैं और बाद में मांस और अन्य डेरी उत्पादों में पाए जाते हैं। कई बार दूषित समुद्री भोजन खाने से मानव भी इन विषाक्त पदार्थों के संपर्क में आते हैं।

## 16.7 समुद्री प्रदूषण के प्रमुख प्रकार

कम से चार प्रमुख प्रकार के समुद्री प्रदूषण है जिनका व्यापक प्रभाव समुद्रो पर दिखाई देता है ।

### 16.7.1 यूट्रोफिकेशन

जब पानी में पोषक तत्वों मुख्य रूप से नाइट्रेट और फॉस्फेट होता है, तो यह यूट्रोफिकेशन या पोषक तत्व प्रदूषण में मुख्य भूमिका निभाता है। यूट्रोफिकेशन ऑक्सीजन के स्तर और पानी की गुणवत्ता को कम करता है, पानी को मछली के लिए रहने योग्य बनाता है, समुद्री जीवन के अंदर प्रजनन प्रक्रिया को प्रभावित करता है और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की प्राथमिक उत्पादकता को प्रभावित करता है।

### 16.7.2 अम्लीकरण

समुद्र पृथ्वी के वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने के लिए प्राकृतिक जलाशय के रूप में कार्य करते हैं। लेकिन, वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के बढ़ते स्तर के कारण, दुनिया भर के समुद्र प्रकृति में अम्लीय होते जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप, यह समुद्रों के अम्लीकरण का कारण बनता है। यह एक गहन चिंता का विषय है कि अम्लीकरण से कैल्शियम कार्बोनेट संरचनाओं का विघटन हो सकता है, जो कि शेलफिश में शेल के गठन और कोरल को भी प्रभावित कर सकता है।

### 16.7.3 विषाक्त पदार्थ

कुछ बहुत तीव्र विषाक्त पदार्थ होते हैं जो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के साथ शीघ्रता से विघटित या पृथक नहीं होते हैं। कीटनाशकों, डीडीटी, पीसीबी, फरान, टीबीटी, रेडियोधर्मी अपशिष्ट, फिनोल, और डाइऑक्सिन जैसे विषाक्त पदार्थ समुद्री जीवन की ऊतक कोशिकाओं में इकट्ठे हो जाते हैं और जलीय जीवन में बाधा उत्पन्न करने के लिए जैव-संचय होता है और कभी-कभी जलीय जीवन के रूपों में उत्परिवर्तन भी होता है।

### 16.7.4 प्लास्टिक

प्लास्टिक पर मानव आबादी की बढ़ती निर्भरता ने समुद्रों और भूमि को प्रदूषण से भर दिया है, समुद्रों में पाए जाने वाले मलबे का 80 प्रतिशत भाग प्लास्टिक का होता है। समुद्रों में फेंकी और गिराई जाने वाली प्लास्टिक समुद्री जीवन और वन्यजीवन के लिए एक बड़ा खतरा है, क्योंकि यह कभी-कभी वन्य जीवों के लिए परेशानी उत्पन्न करता है और उनकी मृत्यु का एक कारण भी बन जाता है। समुद्रों में डाली जाने वाली प्लास्टिक का बढ़ता हुआ स्तर जलीय जीवन के साथ-साथ, बाहरी जीवन के लिए भी उलझन, दम घुटने जैसी समस्याएं उत्पन्न करके नुकसान पहुँचा रहा है।

## 16.8 महासागरीय प्रदूषण के सांद्रण क्षेत्र

महासागरों या सागरों की विभिन्न परतों या क्षेत्रों में प्रदूषण का स्तर असमान होता है। इसी तरह प्रदूषको के गुणधर्म जैसे के उनके वजन आदि से भी उनके सांद्रण का क्षेत्र बदलता रहता है। अत: महासागरीय प्रदूषण के अध्ययन में उसके सांद्रण क्षेत्रो की समझ भी अनिवार्य है।

### 16.8.1 तटीय जल का प्रदूषण

सागर तटीय जल के क्षेत्र में प्रदूषकों का अधिकतम सान्द्रण होता है क्योंकि प्रदूषकों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत यहीं अवस्थित होते हैं । इसके अलावा बड़ी नदियां भी भारी मात्रा में प्रदूषकों को तटीय जल (coastal water) में डम्प करती हैं।

तटीय प्रदूषण के परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र की भौतिक, रासायनिक और/या जैविक विशेषताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तटीय क्षेत्रों में प्रदूषण मुख्य रूप से उद्योग, शहरीकरण, कृषि, जलीय कृषि और पर्यटन सहित मानवजनित गतिविधियों के कारण होने वाली एक दीर्घकालिक समस्या है। विश्व की जनसँख्या का आधे से अधिक भाग सागर तटीय क्षेत्रों के समीपवर्ती पृष्ठ प्रदेशों में निवासरत है इसी प्रकार विश्व के अधिकांश बड़े नगर भी सागर तट पर विकसित हुए हैं। इन वाणिज्यिक एवं आर्थिक केन्द्रों से भारी मात्रा में प्रदूषकों का उत्सर्जन होता है, जो निकटवर्ती सागर तटीय जल में विसर्जित होते रहते हैं। तटीय प्रदूषण के पारिस्थितिक परिणामों में पर्यावास और जैव विविधता का ह्रास, और पर्यावरणीय कार्यों और प्रक्रियाओं में परिवर्तन शामिल हैं, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र में अवनमन की अधिक संभावना होती है।

### 16.8.2 सागरीय सतह का प्रदूषण

सागरीय सतह का प्रदूषण मुख्य रूप से तेल के रिसाव द्वारा होता है। सागरीय जल की सतह पर खनिज तेल की फैली पतली चादर को आयल स्लिक कहते हैं। समुद्रों में दुर्घटनाग्रस्त तेल वाहक टैंकरों से भारी मात्रा में खनिज तेल सागरीय जल में मिलता है तथा आयल स्लिक का निर्माण करता है । समुद्र की सतह पर फैला तेल फर धारण करने वाले स्तनधारियों जैसे समुद्री ऊदबिलाव की इन्सुलेट क्षमता को नष्ट कर देता है । पानी को पीछे हटाने और ठंडे पानी से स्वयं बचाने की क्षमता के बिना बहुत से पक्षी और स्तनधारी हाइपोथर्मिया से मर जाएंगे। इसी प्रकार समुद्री कछुए भी तेल में फंस सकते हैं और गलती से

इसे भोजन समझ लेते हैं। डॉल्फ़िन और व्हेल तेल वाले पानी में सांस लेती हैं तो उनके फेफड़ों की प्रतिरक्षा क्षमता और प्रजनन शक्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह खनिज तेल तेजी से सागरीय सतह के बड़े क्षेत्र पर फैल जाता है जिससे सागरीय जीव मरने लगते हैं। चूंकि आयल स्लिक का 24 घण्टे से कुछ सप्ताह में जैव विघटन हो जाता है, अतः सागरीय जीव शीघ्र ही रिकवर कर जाते हैं तथा उनमें वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है।

### 16.8.3 सागरीय न्यूस्टन सतह का प्रदूषण

सागरीय जल की ऊपरी सतह के सबसे ऊपरी 0.1 से 10 मिलीमीटर पतली परत को न्यूस्टन परत कहते हैं। यह वायु एवं सागरीय जल की सतह का मिलन क्षेत्र होती है। इस परत को सागरीय माइक्रोपरत भी कहते हैं। इस परत में रसायनों, ठोस पार्टिकुलेट पदार्थों आदि का सान्द्रण होता है जो सूक्ष्म फाइटोप्लैंकटन तथा जन्तु प्लैंकटन के लिए घातक होते हैं। यह सतह प्लास्टिक प्रदूषण से सर्वाधिक प्रभावित होती है।पिछले एक दशक में समुद्र के प्लास्टिक प्रदूषण पर किए गए शोध से पता चलता है कि कैसे उपोष्णकटिबंधीय समुद्री चक्रों के माध्यम से न्यूस्टनपरत में तैरते हुए प्लास्टिक के मलबे सतह से जुड़े पेलाजिक समुदाय को नुकसान पहुंचा सकते हैं। समुद्र की सतह से तैरते हुए प्लास्टिक के मलबे को हटाने से न्यूस्टन सतह पर प्लास्टिक प्रदूषण के संभावित प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है, साथ ही बड़ी मात्रा में सूक्ष्म और नैनोप्लास्टिक्स के गठन को रोका जा सकता है।

### 16.8.4 पाइक्नोक्लाइन परत के सहारे प्रदूषण

सागरीय जल की सतह से 300 से 1000 मीटर गहरी परत को पाइक्नोक्लाइन परत इसलिए कहते हैं कि इसमें सागरीय जल के घनत्व में तेजी से परिवर्तन होता है। वास्तव में पाइक्नोक्लाइन परत विभिन्न घनत्व वाली 2 जलराशियों को अलग करती है। स्थलीय भागों से आने वाली नदियों के साथ लाये गये प्रदूषक इस परत में फंस जाते हैं। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति के कारण ऐसे क्षेत्रों में, जहां पर नदियों द्वारा लाये गये ताजे जल का सागरीय खारे जल से अलगाव हो जाता है प्रदूषकों का सान्द्रण बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति अक्सर एश्चुअरियों में होती है। कुछ प्रदूषक जैसे कि मैंगनीज खनन के दौरान उत्पन्न प्रदूषक नदियों के

साथ बहकर समुद्र तक पहुँच जाते हैं एवं दीर्घ समयावधि तक पाइक्नोक्लाइन परत का हिस्सा बने रहते हैं ।

### 16.8.5 सागरीय नितल का प्रदूषण

ठोस प्रदूषक तथा भारी रसायन नीचे जाकर सागरीय नितल पर बैठते हैं । कुछ नितलस्त (बेन्थिक) सागरीय जीव इन प्रदूषकों का सागर नितल के निक्षेपों से मिश्रण कर देते हैं । प्राचीन मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही कई नौकायें, जलपोत, परिवहन जलयान, युद्धक जलयान आदि डूबकर सागरीय तलियों पर जमा होते रहे हैं । उदाहरण के लिए वृहदाकार टाइटैनिक जलयान 14 अप्रैल सन् 1912 को अटलाण्टिक महासागर में ग्राण्डबैंक के पास (न्यूफाउण्डलैण्ड के दक्षिण में) जलमग्न होकर सागर की तली पर चली गयी । यह जहाज दो भागों में टूट गया तथा उसका मलवा 3844 मीटर की गहराई पर सागर तली पर जमा हो गया । इसी प्रकार 4 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तान की विशालकाय पनडुब्बी पीएनएस गाजी भी बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के दौरान विशाखापत्तनम के तट के समीपवर्ती क्षेत्र में डूबकर समुद्री नितल में चली गयी । परमाणु पनडुब्बियों एवं परमाणु हथियारों से युक्त जलपोतों के मलवे गहरे पेलैजिक तथा तलवासी सागरीय जीवों के लिए प्राणघातक होते हैं ।

## 16.9 प्रमुख सागरीय प्रदूषक

समुद्री पर्यावरण का अस्सी प्रतिशत प्रदूषण भूमि से आता है । सागरीय प्रदूषण के सबसे बड़े स्रोतों में से एक गैर-बिंदु स्रोत प्रदूषण है । नॉन-पॉइंट स्रोत प्रदूषण में कई छोटे स्रोत शामिल हैं, जैसे सेप्टिक टैंक, कार, ट्रक और नाव, साथ ही बड़े स्रोत, जैसे कि खेत और वन क्षेत्र । लाखों मोटर वाहन इंजन प्रतिदिन सड़कों और पार्किंग स्थल पर थोड़ी मात्रा में तेल गिराते हैं । इसका अधिकांश भाग भी अंतत: समुद्र में ही जाता है। कुछ सागरीय प्रदूषण वास्तव में वायु प्रदूषण के रूप में शुरू होता है । जो अंतत: समुद्र की सतह पर जाकर खत्म होता है । गैर-बिंदु स्रोत प्रदूषण नदी और समुद्र के पानी को मनुष्यों और वन्यजीवों के लिए असुरक्षित बना सकता है । कुछ क्षेत्रों में, यह प्रदूषण इतना खराब होता है कि बारिश के तूफान के बाद समुद्र तटों को बंद कर दिया जाता है । गैर बिंदु स्रोत प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों को ठीक करना

महंगा है। गैर-बिंदु स्रोत प्रदूषकों द्वारा क्षतिग्रस्त या खतरे में पड़े क्षेत्रों को बहाल करने और उनकी रक्षा करने के लिए हर साल लाखों डॉलर खर्च किए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त बिंदु-प्रदूषण स्त्रोत जैसे तेल रिफाइनरी, पेपर मिल, और ऑटो प्लांट जो अपनी उत्पादन प्रक्रियाओं के हिस्से के रूप में पानी का उपयोग करते हैं वे या तो प्रत्यक्षत: हानिकारक रासायनिक प्रदूषकों अपशिष्ट को समुद्र में निष्कासित कर देते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से नदियों या झीलों में अपशिष्ट निस्तारण करते हैं जो आखिरकार सागरीय जल से मिल जाता है । नगरपालिका अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र बिंदु-स्रोत प्रदूषण का एक अन्य सामान्य स्रोत हैं। आगे समुद्री जल कुछ प्रमुख प्रदूषको का वर्णन किया गया है।

सागरीय जल का प्रदूषण मुख्य रूप से सागर तटवर्ती भागों में नगरीय एवं औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों के विसर्जन के कारण होता है। सागर तटीय जल में किसी एक तत्व के सान्द्रण में वृद्धि के कारण विकट पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए जापान तट के पास अवस्थित मिनीमाता नगर से पारा युक्त अपशिष्ट पदार्थों के मिनीमाता खाड़ी में अधिक मात्रा में प्रवेश के कारण पारा विषायण (mercury poisoning) के कारण मिनीमाता नगर के कई निवासियों की मृत्यु हो गयी। इस कातिल रोग का इतना भीषण प्रकोप हुआ कि इसका नाम ही मिनीमाता रोग रख दिया गया।

### 16.9.1 हाइड्रोकार्बन

हाइड्रोकार्बन (खनिज तेल) अथवा पेट्रोलियम जैविक यौगिक होने के कारण जैवविघटनशील (biodegradable) होता है क्योंकि वियोजकों जैसे बैक्टीरिया द्वारा हाइड्रोकार्बन का विघटन हो जाता है। महासागरों में पेट्रोलियम कई स्त्रोतों से पहुँचता है । मसलन नदियां अपने साथ भारी मात्रा में औद्योगिक हाइड्रोकार्बन अपशिष्टों को लाकर सागर तटीय जल में विसर्जित करती हैं। सागर में परिवहन करने वाले तेल वाहक टैंकरों के दुर्घटनाग्रस्त होने या इनमें तकनीकी खराबी होने से भारी मात्रा में खनिज तेल का सागरों में रिसाव होता है। इसी प्रकार सागर में तेल एवं प्राकृतिक गैस के उत्खनन से भी खनिज तेल का रिसाव होकर समुद्री जल में मिलने की सम्भावना बनी रहती है।

### 16.9.2 प्लास्टिक प्रदूषण

सागरीय जल की ऊपरी सतह अर्थात न्यूस्टन परत प्लास्टिक प्रदूषण से सर्वाधिक प्रभावित होती है । यह अनुमान लगाया गया है कि 2020 में 24 से 35 मिलियन मीट्रिक टन प्लास्टिक जलीय पारिस्थितिक तंत्र (मीठे पानी और समुद्री वातावरण दोनों) में प्रवेश कर गया। अंतर्राष्ट्रीय शोध जर्नल साइंस में प्रकाशित शोध के निष्कर्ष से पता चलता है कि अगर प्लास्टिक उपयोग में कमी सम्बन्धी वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को पूरा किया जाता है तब भी नदियों, झीलों और समुद्र में प्लास्टिक प्रदूषण का इनपुट 2030 तक सालाना 53 मिलियन मीट्रिक टन तक बढ़ सकता है। प्लास्टिक की यह मात्रा जो प्रति दिन जलीय पारिस्थितिक तंत्र में प्रवेश करता है लगभग एक मालवाहक जहाज के वजन के है। प्लास्टिक को हमारे समुद्र से बाहर रखने के लिए एकल-उपयोग वाले प्लास्टिक पर हमारी निर्भरता को कम करना और अपशिष्ट संग्रह और अपशिष्ट पुनर्चक्रण प्रणालियों में सुधार करना दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।

### 16.9.3 नगरीय अपशिष्ट तथा सीवेज प्रदूषक

शहरीकरण से संबंधित प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं में से एक अपशिष्ट जल और सीवेज का समुद्र में गिरना है। इससे समुद्री जीवन और मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकते हैं। अनुपचारित अपशिष्ट जल और सीवेज में अक्सर प्रदूषक जैसे पोषक तत्व (जैसे नाइट्रोजन और फास्फोरस), रोगजनकों (जैसे बैक्टीरिया और वायरस), और अन्य रसायन (जैसे फार्मास्यूटिकल्स और सौन्दर्य उत्पाद) होते हैं। ये पदार्थ जब समुद्र में छोड़े जाते हैं, यूट्रोफिकेशन जैसी समस्याएं पैदा कर सकते हैं, जहां अतिरिक्त पोषक तत्व हानिकारक शैवालों के खिलने और ऑक्सीजन की कमी का कारण बनते हैं । इन प्रदूषकों से मनुष्यों द्वारा उपभोग किए जाने वाले समुद्री भोजन में संदूषण का तथा समुद्री जल के संपर्क में आने वाले तैराकों के लिए बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।

समुद्र में मिलने वाला सीवेज दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण समस्या है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, दुनिया का लगभग 80% अपशिष्ट जल बिना उपचारित किये पर्यावरण में वापस छोड़ दिया जाता है, जिसमें से अधिकांश समुद्र में छोड़ा जाता है। कुछ क्षेत्रों में, विशेष रूप से घनी आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में समुद्र में सीवेज की मात्रा गंभीर है । उदाहरण के लिए, भारत में, मुंबई शहर प्रतिदिन लगभग 8500 मिलियन लीटर अपशिष्ट जल अरब सागर में बहाता है। इसी तरह अनुमान लगाया गया है कि चीन के तटीय शहरों में केवल 12% अपशिष्ट जल का उपचार किया जाता है, बाकी को समुद्र में छोड़ दिया जाता है। इस

समस्या का समाधान हेतु, अपशिष्ट जल और सीवेज को समुद्र में छोड़ने से पहले उपचारित करना महत्वपूर्ण है। उपचार प्रक्रियाएं अधिकांश दूषित पदार्थों को हटा सकती हैं और पानी को पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित बना सकती हैं। कुल मिलाकर, अपशिष्ट जल और सीवेज का प्रबंधन हमारे महासागरों और उन पर निर्भर रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।

### 16.9.4 कृषि रसायन से समुद्री प्रदूषण

कृषि में उपयोग किए जाने वाले कीटनाशक तथा उर्वरक नदियों में प्रवाहित होकर अंततः समुद्र तक पहुँच जाते  हैं। यह अपवाह हानिकारक रसायनों और पोषक तत्वों को समुद्रों तक लेकर जा सकता है जो समुद्री पर्यावरण को महत्वपूर्ण नुकसान पहुंचा सकता है। जब कृषि रसायन समुद्र में पहुँचते हैं, तो वे कई तरह की समस्याएँ पैदा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, उर्वरकों से अतिरिक्त पोषक तत्व हानिकारक शैवाल के खिलने का कारण बन सकते हैं, जिससे ऑक्सीजन की कमी हो सकती है और समुद्री जीवन को नुकसान पहुंचाने वाले मृत क्षेत्रों का निर्माण हो सकता है। साथ ही साथ कृषि रसायन खाद्य श्रृंखला में शामिल होकर मानव तथा सागरीय जंतुओं स्वास्थ्य एवं जीवन में हानिकारक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं
।

### 16.9.5 सागरीय खनन से उत्पन्न अवसाद

महासागर ड्रिलिंग में समुद्र तल से खनिज निकालने की प्रक्रिया शामिल है। यह समुद्र के तल में गहरी ड्रिलिंग के माध्यम से किया जाता है। कई बार सागरीय ड्रिलिंग का मुख्य उद्देश्य समुद्र तल के भूगर्भीय इतिहास का अध्ययन करना, पृथ्वी के इतिहास के बारे में और जानना और हमारे ग्रह को आकार देने वाली प्रक्रियाओं को समझना है। जबकि महासागर ड्रिलिंग स्वयं प्रत्यक्ष रूप से प्रदूषण का कारण नहीं बनती है, यह अप्रत्यक्ष रूप से इसमें योगदान दे सकती है। उदाहरण के लिए, ड्रिलिंग की प्रक्रिया अवसादों के मलवे को में छोड़ सकती है, जो समुद्री जीवों और उनके आवासों को प्रभावित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, महासागर ड्रिलिंग में उपयोग किए जाने वाले उपकरण समुद्र में तेल और अन्य प्रदूषकों का रिसाव कर सकते हैं, जो समुद्री जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं।

### 16.9.6 सागरीय डम्पिंग

ओशन डंपिंग से तात्पर्य समुद्र में रसायनों, प्लास्टिक और अन्य खतरनाक सामग्रियों सहित अपशिष्ट पदार्थों के निपटान से है। इसके समुद्री जीवन और समुद्र के पारिस्थितिकी तंत्र में गंभीर परिणाम हो सकते हैं। महासागर डंपिंग और प्रदूषण के प्रभाव विनाशकारी हो सकते हैं। वे मछली, डॉल्फ़िन, समुद्री कछुए और पक्षियों सहित समुद्री जीवन को नुकसान पहुँचा सकते हैं, साथ ही प्रवाल भित्तियों और अन्य पानी के नीचे के आवासों को भी नुकसान पहुँचा सकते हैं।

## 16.10 विश्व के प्रमुख प्रदूषित सागर एवं महासागर

विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित समुद्र या महासागर का निर्धारण एक जटिल मुद्दा है, क्योंकि प्रदूषण का स्तर स्थान, प्रदूषकों के प्रकार और अन्य कारकों के आधार पर व्यापक रूप से भिन्न हो सकता है। हालाँकि, कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो विशेष रूप से प्रदूषण से प्रभावित होने के लिए जाने जाते हैं:

**16.10.1 द ग्रेट पैसिफिक गारबेज पैच:** उच्च जनसँख्या एवं नगरीकरण वाले संयुक्त राज्य अमेरिका एवं पूर्वी एशिया के देशों के मध्य अवस्थित उत्तरी प्रशांत महासागर का यह क्षेत्र प्लास्टिक मलबे और अन्य प्रदूषकों की उच्च सांद्रता के लिए जाना जाता है, जो इसे महासागर के सबसे प्रदूषित क्षेत्रों में से एक बनाता है।

**16.10.2 बंगाल की खाड़ी:** हिंद महासागर के उत्तरपूर्वी भाग में स्थित यह समुद्र औद्योगिक कचरे, कृषि अपवाह और सीवेज के कारण प्रदूषण के उच्च स्तर के लिए जाना जाता है। पूर्वी दक्षिण एशिया की सघन जनसँख्या के बहुत बड़े अपशिष्ट का अंतिम निस्तारण बंगाल की खाड़ी में होने के कारण इसमें प्रदूषण का स्तर अधिक है।

**16.10.3 भूमध्य सागर:** एक अर्ध-बंद समुद्र के रूप में अपनी अवस्थिति के कारण, भूमध्यसागर विशेष रूप से शिपिंग यातायात, तेल रिसाव और अन्य स्रोतों से होने वाले प्रदूषण के लिए अतिसंवेदनशील है। क्षेत्र में उच्च जनसंख्या घनत्व भी प्रदूषण के स्तर में योगदान देता है।

**16.10.4 मेक्सिको की खाड़ी:** संयुक्त राज्य अमेरिका और मेक्सिको की सीमा पर अवस्थित यह खाड़ी तेल रिसाव, औद्योगिक अपशिष्ट और कृषि अपवाह सहित कई प्रदूषकों से प्रभावित हुआ है।

**16.10.5 उत्तरी सागर:** ब्रिटेन, नॉर्वे और अन्य उत्तरी यूरोपीय देशों के बीच स्थित यह समुद्र शिपिंग यातायात, तेल और गैस निष्कर्षण और कृषि अपवाह से होने वाले प्रदूषण के उच्च स्तर के लिए जाना जाता है।

**16.10.6 उत्तरी अटलांटिक महासागर:** अटलांटिक महासागर पश्चिमी यूरोप एवं कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के सघन बसे नगरीय क्षेत्रों में उत्सर्जित प्रदूषकों का अंतिम पड़ाव है । अटलांटिक महासागर में प्लास्टिक प्रदूषण एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है एवं उत्तरी अटलांटिक कचरा पैच में 200,000 टन से अधिक प्लास्टिक मलबे होने का अनुमान है। अटलांटिक महासागर में तेल रिसाव भी प्रदूषण का एक प्रमुख स्रोत है। हाल के वर्षों में, कई हाई-प्रोफाइल तेल रिसाव हुए हैं, जिसमें 2010 में मेक्सिको की खाड़ी में डीपवाटर होराइजन तेल रिसाव और 2002 में स्पेन के तट पर प्रेस्टीज तेल रिसाव शामिल है।

## 16.11 महासागरीय प्रदूषण पर नियंत्रण

महासागरीय प्रदूषण का स्तर लगातार बदल रहा है, और दुनिया भर में समुद्र प्रदूषण की समस्या का समाधान करने के प्रयास चल रहे हैं। जैसा कि हम चर्चा कर चुके हैं कि सभी नदियाँ अन्ततः समुद्रों में मिलती हैं। समुद्री प्रदूषण का प्रमुख कारण इन नदियों के द्वारा बहाकर लाया गया दूषित जल एवं अपशिष्ट है। नदियों के माध्यम से औद्योगिक निस्राव के साथ घरेलू दूषित जल बड़ी मात्रा में समुद्रों में मिलता है। अतः स्पष्ट है कि समुद्रों में मिलने से पहले यदि नदी के दूषित जल को स्वच्छ कर लिया जाये तो समुद्रों में होने वाले प्रदूषण को कम किया जा सकता है। इस हेतु औद्योगिक दूषित जल को समुचित उपचार के लिये प्रत्येक औद्योगिक इकाई को दूषित जल उपचार संयंत्र लगाना चाहिए। साथ ही नगरीय निकायों से निकलने वाले घरेलू दूषित जल का भी उचित उपचार किया जाना आवश्यक है। जब तक दूषित जल का स्रोत पर ही उपचार सुनिश्चित नहीं होगा, तब तक प्रदूषण की समस्या पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता। औद्योगिक एवं घरेलू दूषित जल के साथ ही नदियों के माध्यम से बहाकर लाये जाने वाले अन्य अपशिष्टों का भी समुद्र में मिलने से पूर्व पृथक्करण आवश्यक है। समुद्री गतिविधियों पर नजर रखकर भी समुद्री प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है। यथासम्भव, समुद्रों में तेल आदि के रिसाव को रोकना चाहिए। समुद्रों में नाभिकीय कचरा न मिलने पाये इस हेतु भी समुचित प्रबंध किया जाना

चाहिए। समुद्र को डम्पिंग साइट न समझकर, उसे एक जीवित पारिस्थितिकीय तंत्र का अनिवार्य अंग समझते हुए उसमें बाह्य प्रदूषक तत्वों को मिलने से रोककर ही समुद्री प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

## 16.12 निष्कर्ष

महासागर विविध प्रकार के संसाधनों का अपरिमित स्रोत हैं । ये संसाधन विश्व की बढ़ती जनसँख्या के सन्दर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो गये हैं । आज विश्व भविष्य में खाद्य एवं ऊर्जा की आवश्यकताओं के लिए समुद्री संसाधनों की तरफ आशाजनक दृष्टि से देख रहा है । दुर्भाग्य से विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों ने इन पर नियंत्रण के लिए लगातार प्रयास किये हैं । यद्धपि इस सम्बन्ध में एक सशक्त अंतर्राष्ट्रीय कानून अस्तित्व में हैं जिसमे ना केवल राष्ट्रों की समुद्री संसाधन परिभाषित हैं बल्कि विवादों के हल के लिए 'समुद्र के कानून के लिये अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण' हैम्बर्ग, जर्मनी एवं 'अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय' हेग; स्विजरलैंड को मान्यता भी दी गई है । हालाँकि इसके बावजूद समुद्री संसाधनों पर कब्जे के लिए कुछ शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा इन नियमों का उल्लंघन भी लगातार किया जाता है ।

महासागर ऊर्जा संसाधन दो प्रकार के हैं । एक ओर महासागर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों जैसे कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस के विशाल भंडार हैं तो दूसरी ओर वैकल्पिक महासागरीय ऊर्जा की असीम संभावनाएं हैं । जहाँ महासागरीय ऊर्जा का तात्पर्य समुद्र से प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की नवीकरणीय ऊर्जा से है। महासागर ऊर्जा के तीन मुख्य प्रकार हैं: ज्वारीय ऊर्जा और महासागरीय तापीय ऊर्जा एवं तरंग ऊर्जा। महासागर से ऊर्जा के सभी रूप अभी भी व्यावसायीकरण के प्रारंभिक चरण में हैं। लेकिन विश्व में ऊर्जा की बढ़ती माँग और सिकुड़ते ऊर्जा संसाधनों के कारण ये भविष्य में बेहद महत्वपूर्ण हो सकते हैं ।

**अभ्यास प्रश्न**

1. मुख्य सागरीय संसाधन का वर्णन कीजिये।
2. ऊर्जा संसाधन के रूप में सागरीय ऊर्जा के महत्व का वर्णन कीजिए।
3. मानवजन्य समुद्री प्रदूषण की समस्या का वर्णन कीजिये।

## सन्दर्भ सूची

1. सविन्द्र सिंह, (2022) समुद्र विज्ञान, प्रवालिका प्रकाशन, प्रयागराज ।
2. राकेश कुमार एवं संतोष कुमार दास, (2012) समुद्री संसाधन, समुद्रबोध, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा
3. स्मिथ, एच. डी., एवं अन्य (2015). रॉउटलेज हैंडबुक ऑफ़ ओशन रिसोर्स एंड मैनेजमेंट.
4. मारगारिडा नुंस एवं सारा लेसन (2020). कोस्टल पॉल्यूशन: एन ओवरव्यू. पुस्तक 'लाइफ बिलों ओशन' में संकलित, स्प्रिंजर प्रकाशन.

नोट